लोक नीति तत्व

जिसे

लक्ष्मीनाथ शर्म्मा ने

संग्रह किया।

LOKE NITI TATWA

COMPILED BY

LAKSHMI NATH SHARMA.

पटना

बिहार-बन्धु छापाखाना, बांकीपुर।

१८८९।

PREFACE.

The following pages contain a collection of old and new dohas. The Book is divided into eleven chapters. It is called *Loke-niti-Tatwa* or the Rules of Personal Conduct. The subjects treated are mostly of every day and common occurrence. More than half of the Book is devoted to the treatment of such matters as have their truth proved by long experience and repeated observations. The good and evil traits in the character of ancient and modern India will be found easy of detection by reason of their being pourtrayed side by side and in contrast to each other.

Particular care has been taken to eschew the discussion of subjects opposed to our religion; but where they have been found practically and logically beneficial to the interest of mankind, they have not been so left out. When the case is contrary such subjects must be considered as moot points and they demand our most attentive consideration. To persons who obey the authority of our religious books no proof is required. But to those who are not satisfied with such authority, utility of the subjects treated, has been demonstrated by reasoning

based upon practical expediency. But where reasoning also fails the matter must be considered as moot

The chapters have been so named as to admit of additional matter being introduced into them, if available, when the book goes through a second edition. No pains, however, have been spared to make the book complete by itself, but the subject treated in it is of such a vast nature that omissions may be discovered.

The chapters are:—

In the table of contents will be found the number and the name of the subjects treated under

each chapter. From the very nature of the subjects treated of, a lot of extraneous but connected matter has necessarily found its way into the book. It was in contemplation to prepare an exhaustive table of contents but the task had to be postponed for the second edition.

For some time past it has been observed that even among Hindus, all but the English alphabet and nothing which has not a dash of English in it, are looked upon with contempt. For this reason an English preface has been added to the book.

The language employed is throughout either pure Hindi or the Hindi of Brij. A few words of Persian, Arabic and English origin and a few colloquial words, besides a large number of words derived from Sanskrit have been used.

In point of grammar and language, metre and poetical composition, the Book will be found up to the prevailing standard which is not free from defects; if inexpressive and equivocal language or contradictory matters are discovered, they must be put down as being beyond the sphere of our correction, and in such cases our readers would do well to look to the thoughts alone and not the garb in which they may be clothed.

It will be found that quotations, from the great poet Tulsi Das are occasionally used in the Book

in a signification different to that which popular usage attaches to them, the reason for this being attributable to the context where they are so used.

The way in which subjects have been allotted to the different chapters in this Book is susceptible of improvement which we hope to make in the second edition.

On more than half of the subjects treated in the book, opinion does not seem to be divided. But it would be ridiculous to suppose that all men could ever think alike on any given subject. Nevertheless our readers will find plenty of food for thought and reflections in so many subjects collected together.

Books of this description are very rarely published. It is therefore to be hoped that errors or defects which may have crept into the following pages will be kindly brought to our notice so that they may be corrected in the second edition.

BANKIPORE
The 10*th June* 1889.

LAKSHMI NATH SHARMA,

CONTENTS

CHAPTER I.

Invocation to Deity.

No. 1—7.

CHAPTER II.

Man — his nature and conduct, his merits and defects.

No. 8—40.

No. 41—73.

CHAPTER III.

Man's Physical Action

CHAPTER IV.

Man's Mental Action.

No. 291—325.

No. 326—363.

CHAPTER V.

About woman.

No. 364—382.

CHAPTER VI.

Things and objects in general.

No. 383—408.

No. 409—436.

CHAPTER VII.

PLACE.

No. 437—447.

CHAPTER VIII.

TIME.

No. 448—453.

प्रत्येक अध्यायों में कितने और कौन कौन विषय हैं यह सूची पत्र से ज्ञात होगा। इन के अतिरिक्त बहुत से विषयों में सम्बन्ध वश अन्यान्य अनेक विषय अन्तर्गत हो गये हैं। सब विषयों की सूची अकारादि क्रम से बनाने की इच्छा थी पर इस बार न बनी।

थोड़े दिनोंसे देखने में आता है कि हिन्दुओं में भी अंग्रेज़ी आत्मा जन्म लिया करती है कि पूर्व जन्मके संस्कार बस अंग्रेज़ी अक्षर के सिवा दूसरे अक्षर को देखना ही नहीं चाहते और अंग्रेज़ी भाव से मिले बिना कोई भाव ही पसन्द नहीं करते इस लिये अंग्रेज़ी भाषा और अक्षर में भी सूची और भूमिका दी गई।

भाषा इसमें प्राय: हिन्दी और ब्रज भाषा की है। क्वचित शब्द फ़ारसी, अरबी, अंग्रेज़ी, दिहाती और अधिकांश संस्कृतके प्रयोग हुए हैं।

भाषा और कविता की अवस्था, छन्द दोष, व्याकरण का विचार आज कल जैसा हिन्दी कविता में रहा करता है प्राय: वैसा ही है। जटिल द्व्यर्थ बोधक शब्द, और परस्पर विरोधी विषय जो कहीं कहीं आ गये हैं उनका सुधारना हमारा अनाधिकार चर्चा है इस लिये पाठकों को केवल इसके तात्पर्य ही पर मनोयोग करना चाहिये।

कहीं ऐसा भी हुआ है कि कविवर तुलसी दास आदि के दोहे जो उन के कुछ और ही अभिप्राय पर थे, यहां जिस श्रेणी में वह रक्खे गये हैं उन का कुछ और ही अर्थ हो गया है।

जिस रीति से विषय सब श्रेणी बद्ध हुए हैं कुछ और उत्कृष्टता से करना उचित था पर यह बात अन्य संस्करण की अपेक्षा पर रह गई।

यदि विचार करके देखा जाये तो प्राय: अधिकांश विषयों पर इस में एक प्रकार का मत है। यद्यपि यह सम्भव नहीं कि किसी विषय पर सब का एक मत हो परन्तु इतना उपकार इस ग्रन्थ से अवश्य होगा कि पाठकों को चिंता और विचार करने के लिये इतने विषय एकत्र अनायास लाभ होंगे।

सांसारिक व्यवहार सम्बन्धी ग्रन्थ अति बिरल प्रचार होते हैं इस लिये इस विषय की पूर्णता सर्व साधारण का वांछनीय होना सम्भव है इस कारण कृतकर्मा विद्वन्मंडली से यह प्रार्थना,

है कि इस ग्रन्थ के दोष गुण और अभाव को प्रकाश कर पूर्णता के विषय में साहाय्य प्रदान पूर्वक देश हितैषिता प्रदर्शन करावें। इति।

बांकीपुर
सम्वत् १९४६
मिती जेष्ठ कृष्णा पंचमी।

श्री लक्ष्मीनाथ शर्म्मा।

——

सूची पत्र।

पहला अध्याय।

मंगलाचरण।

दूसरा अध्याय।

मनुष्यों के स्वभाव, चरित्र और गुण दोष।

तीसरा अध्याय ।

मनुष्यों के शारीरिक काम ।

चौथा अध्याय ।

मानसिक काम ।

पांचवां अध्याय ।

स्त्रियों का विषय ।

छठां अध्याय।

वस्तुओं का विषय।

सातवां अध्याय ।

स्थान वर्णन ।

आठवां अध्याय।

काल वर्णन।

नवां अध्याय।

देव देवी वर्णन।

लोकनीति तत्व

पहला अध्याय।

मंगलाचरण ।

ईश्वर ॥ १ ॥

प्रकृत विकृतके भेदसे, जग ईश्वर पहचान ।
ब्रह्म रूप ही प्रकृत है, विकृत सोइ जग जान ॥ १ ॥
नित्य अनित्यहु भेद वहि, सत्य असत्यहु भेद ।
जग बिकार ही रूप है, सत सत्ता कहें वेद ॥ २ ॥
कंगन रूप बिकार है, सोना वामें सत्य ।
सोना मिथ्या *मानिये, परमाणू है नित्य ॥ ३ ॥
अणुहूंको जड़ जानिये, अंशी है चैतन्य ।
ब्रह्म रूप जानो वही, भजना करो अनन्य ॥ ४ ॥
तत्त्व ज्ञान जो लाभ हो, कंगन दरशन वाहि ।
ब्रह्म दरस वाको भयो, देइ मुक्ति हो ताहि ॥ ५ ॥

ईश्वरगुण वर्णन ॥ २ ॥

कभी भाफ हो जल कभी, कभी बरफ हो जाव।
निराकार साकार हो, हो जग कबहि दिखाव ॥ १ ॥
ब्रह्मा होकर जोड़ते, विष्णू होय बढ़ाव।
भोला होकर तोड़ते, तोड़हि जोड़ सुभाव ॥ २ ॥
अस्तुतसे रीझत नहीं, नहि निन्दासे खीझ।
रीझत पालत नियम हो, टारत नियम हि खीझ ॥ ३ ॥
रीझत वा खीझत नहीं, प्रेम दियो है गाय।
प्रेम पाय मैं क्या करूं, तेरो भजन सिवाय ॥ ४ ॥
भय, प्रेमहि है एक ही, कारन ईश्वर ज्ञान।
वहि बरते करतव्य हो, पालन, मानव मान ॥ ५ ॥
मानवकी गुण ज्ञान जो, उससे तू पर जान।
जो गुण जो जानत नहीं, व्यर्थ हि बकत अजान ॥ ६ ॥
ईश्वर गुण वर्णन करत, अपन हि गढ़त ख़ियाल।
भेद डारि मत भेद करि, जगहि करत जंजाल ॥ ७ ॥

ईश्वर पूजन ॥ ३ ॥

निराकार पूजा नहीं, नहीं उपासन ध्यान।
साकार हि यह नियम है, वहां योग अरु ज्ञान ॥ १ ॥
क्रिया सकर्मक धातुकी, बिना कर्म नहि होय।
बिना वस्तु साधन क्रिया, कर सकता नहि कोय ॥ २ ॥

पूजन ईश्वरकी करूं, रूप जोड़ साकार।
दीर्घ ग्रन्थ अरु उच्च है, लेय जगह बिस्तार ॥ ३ ॥

ईश्वर नाम कीर्तन ॥ ४ ॥

प्रथम नाम ओंकार है, ज्ञानी जपते ताहि।
ज्ञान बिना माहात्म्यको, जान सकत कोउ नाहि ॥ १ ॥
सच्चा नामहि ले वही, भक्ती जाहि सुभाव।
कोई कीर्तन तब करे, दुख वा होय अभाव ॥ २ ॥
पापी पाप धुपानको, भजते हैं हरि नाम।
निष्पापी अरु शान्ति जन, अकसर जपें न नाम ॥ ३ ॥
बड़ बड़ काम चढ़ाइ मे, नाम जपन की रीत।
भले बुरेका भेद नहिं, राजा चोर डकैत ॥ ४ ॥
ईश्वर नियमों का जिन्हे, पूरा हो जब ज्ञान।
सत प्रथ कारजके सिवा, पूजा रहे न आन ॥ ५ ॥
मालिक चाकरसे जबै, करै काम आदेश।
काम छोड़ अस्तुत करे, दोषी होय विशेश ॥ ६ ॥
धीरज*आलसि होय जो, बोय नरकको बीज।
रात दिवा उनके लिये, नाम जपन बड़ि चीज ॥ ७ ॥

गुरु वन्दन ॥ ५ ॥

सत्ता विकरित रूप हो, माया जाल पसार।
मानवको ठग लेत है, देखो यह संसार ॥ १ ॥

अन्धा सा भटका फिरै, ज्ञान बिना अज्ञान।
तत्त्व बता कर आंख दे, सत गुरु उनको जान ॥ २ ॥
बन्दे गुरको जो सदा, भक्ति सहित अरु मान।
भवसागर वह पार हो, सदा होय कल्यान ॥ ३ ॥

महाजन बन्दन ॥ ६ ॥

सभी बड़े जिनको कहें, महा पुरुष तिहि जान।
सांचा है वह देसके, लोग ढलें तिहि मान ॥ १ ॥
उन्हे नमूना जानिये, चलती उनकी रीत।
भला बुरा जो वह करें, सब ही की परतीत ॥ २ ॥
जैसी होनी होय जब, महा पुरुष तिहि भांत।
अथवा जैसे पुरुष बड़, वैसहि देश गनात ॥ ३ ॥
महाजनों की रीति पर, बिगड़ संवरता देश।
बन्दन उनका उचित है, परजा और नरेश ॥ ४ ॥

राज बन्दन ॥ ७ ॥

जो सुख हम हैं भोगते, राजा मूल अधार।
इस कारण वह बन्दनिय, ज्यों ईश्वर औतार ॥ १ ॥
भला बुरा कैसहु अरे, पदतें राजत राज।
सिंहासन है पूजनिय, नाहिन राजकुराज ॥ २ ॥

इति प्रथम अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय।

मनुष्योंके स्वभाव, चरित्र और गुण दोष।

महापुरुष ॥ ८ ॥

तुलसी* लोहा नाव संग, तरत फिरत जल मांह।
बड़े न डूबन देत हैं, जाकी पकड़ी बांह ॥ १ ॥
बिरले नर पंडित गुणी, बिरले बूझन हार।
दुख खंडन बिरले पुरुष, तुलसी* या संसार ॥ २ ॥
विनय नम्र सहाकसी, साधू रीझै धीर।
हंस भेद कर चीर जल, खर जल पिये घटीर ॥ ३ ॥
ऊंख अग्र सम साधु मन, फीकी आदि दिखाय।
काम पड़त ज्यों जायगी, त्यों त्यों मीठी पाय ॥ ४ ॥
सत्य न्यायका पालड़ा, धीरज डंडी योग।
उसी तुला पर बातको, तुलें महाजन लोग ॥ ५ ॥
मनके तेज रु तप बिना, बड़ा न होता कोय।
कुल अरु ज्ञानहु चाहिये, तभी बड़प्पन होय ॥ ६ ॥
बड़े पूत उनको कहें, जिनका मन है दास।
जो खुद मनको दास है, वही नीच अरु दास ॥ ७ ॥

राजा ॥ ९ ॥

सत्ताहीन प्रजा रहें, तब ही राजा होय।
जब उनकी सत्ता बढ़ी, राजा रहे न कोय ॥ १ ॥

लोकनीति तत्त्व ।

मानव जब तक लूंज है, सेवकका है कार ।
हाथ पैर जब ठीकही, राजा बे दरकार ॥ २ ॥
साधारण शिक्षा जहां, यही नियम वहि देश ।
पहिले भारत थी नहीं, ब्रिटिश कियो प्रवेश ॥ ३ ॥

भला बुरा राजा ॥ १० ॥

पापी राजा होय जो, भावी मंगल देश ।
अलस निरुद्यम तब प्रजा, न्यायी होय नरेश ॥ १ ॥
साधक एका बिपत है, शान्ती फुटमत कार ।
दूर दरशि यह नीत है, सब नहिं बूझनहार ॥ २ ॥

यथा प्रजा, तथा राजा ॥ ११ ॥

जस राजा परजा तथा, इस बाणीका मूल ।
संगत गुण पर जानिये, नहि तो पूरी भूल ॥ १ ॥
सब परजाकी ओरसे, है वह शासन कार ।
जस परजा राजा तथा, यह बाणी है सार ॥ २ ॥
गति परजा जिस भांति हो, राजाकी तस होय ।
ब्रीटन भारत दोउमें, शासनकी गति दोय ॥ ३ ॥
घोड़ा हाकन हारको, चलना हो घुड़ चाल ।
गधे संग चालाक भी, चलता धीमे हाल ॥ ४ ॥
परजाको जब धर्म बल, बाढ़े गो अति जोर ।
राजा तब हो न्याय पर, अथवा हो बेजोर ॥ ५ ॥

जो राजा अन्यायि हो, राज भक्ति मत छोर ।
धर्म रु ज्ञान अभावको, बतलाता है सोर ॥ ६ ॥

अविश्वासी राजा ॥ ९ ॥

परजा पर विश्वास जब, राजा करता नाहि ।
ऐसा राजा तेल सम, अलग सदा जल माहि ॥ १ ॥
अस राजहि की थित कभी, नहिं होती विश्वास ।
बिना दूध गुड़ मेलके, थित आसाहि दुरास ॥ २ ॥
अलग रहे छनमें उड़े, दुर्बल जबही होय ।
सदा अलग रहि तेलको, मिलत सहाय न तोय ॥ ३ ॥
बलसे जब परजा दबो, होय कमानी रूप ।
जबहि दाब कम होय झट, छटके स्प्रिंग स्वरूप ॥ ४ ॥
मुसल्मान, राजा मिले, करत रहे इतवार ।
धर्म जुल्म पर हूं प्रजा, नहि बागी सरकार ॥ ५ ॥
प्रेमाकर्षण बलहि बल, बल नहि है तलवार ।
दुर्बल जो मन देह हो, न हो हाथ से वार ॥ ६ ॥

पण्डित ॥ १३ ॥

पंडित राजामें कभी, बराबरी नहिं होय ।
राजा पूजित देश निज, पंडित सब जग होय ॥ १ ॥
पुस्तक ही विद्या नहीं, विद्या ज्ञान हि जान ।
जो जाने बातें अधिक, वही बड़ा विद्वान ॥ २ ॥

पुस्तक विद्याके बिना, बूझ सके नहिं बात।
याते विद्या पुस्तकी, आदर बहुतर पात ॥ ३ ॥
बहु दरशी यों कहत हैं, जांच बूझ कर जोय।
पढ़े न पंडित होत है, पड़े हि पंडित होय ॥ ४ ॥

गुणी ॥ १४ ॥

पंडित पढ़ि नहिं हो गुणी, पड़े गुणी ही होय।
गुणी कहीं बेकार नहिं, बिरल मिलत है सोय ॥ १ ॥
गुण तो पायो एक है, पायो बहुतर दोस।
ऐसे गुणी गुणी नहीं, फल इसका अफसोस ॥ २ ॥

गुणग्राही ॥ १५ ॥

कर फुलेलको आचमन, मीठो कहत सराह।
रे गन्धी मत अन्ध तू, इतर दिखावत काह ॥ १ ॥
गुणको जो बूझे नहीं, उसको गुण न बताव।
बीन भैंस आगे बजत, वह ठाढ़ी पघुराय ॥ २ ॥
गदहे पर चन्दन लदो, जानत केवल भार।
चन्दन गन्ध न पाय वह, मूढ़ हि गुण बेकार ॥ ३ ॥
गुण गाहक जग बहुत हैं, गुणी हि मिलना भार।
बहु दरशी देखत नहीं, कहीं गुणी बेकार ॥ ४ ॥
मूरख गुण समझे नहीं, तउ न गुणीमें चूक ॥
कहा भयो दिनको विभव, देखे जो न उलूक ॥ ५ ॥

हुनरमन्द ॥ १६ ॥

घरको धन नहिं लेय वह, लेय नहीं वह कर्ज़ ।
चले, हुनर अस जाननों, सब कोईको फ़र्ज़ ॥ १ ॥
रुपया थैली काम पर, लाय सके ततकाल ।
यह शक्ती जिसको मिली, हुनर मन्द वह लाल ॥ २ ॥
विपत उन्हे हरदम अहै, जिनको हुनरहि नाहि ।
कर्ज़ लाभ या घर जमा, खाय न सुख है याहि ॥ ३ ॥
वैद मसउवर ज्योतिषी, संगीती हथकार ।
पेशा इसका नहिं करे, होय महत आधार ॥ ४ ॥
जिनके यह सब हुनर हैं, नहीं सिफ़ारिश काम ।
बड़े जहां नहिं जा सके, वहां घुसें यह आम ॥ ५ ॥

सुकरमी और कुकरमी पुरुष ॥ १७ ॥

सम श्रेनी वा उच्चमें, बढ़े नाम अरु मान ।
धन बल भी बढ़ता रहे, तभी सुकरमी जान ॥ १ ॥
और सुकरमी वह पुरुष, रहे स्वस्थ जिहि काय ।
फल सबा निर्णय वृथा, कूट तर्कको न्याय ॥ २ ॥
जिसकी बदनामी बढ़ी, धन भी होता नाश ।
शत्रु वृद्धि अरु रोगसे, स्वस्थ काय नहि आश ॥ ३ ॥
उलटा कोई तर्क से, दिखलावे परमान ।
सुकरम कभी न होयगो, फल कुकरमको जान ॥ ४ ॥

सत्यभाषी ॥ १८ ॥

सच्चा बोलो तब सही,　　जो प्यारी वह होय ।
रूखा सच्चा बोलके,　　मत डारी सब खोय ॥ १ ॥
मां कहनेसे रीझती,　　नारी गण जग मांह ।
जोरू बाप की कहत ही,　　निश्चै झाड़ू खांह ॥ २ ॥
रूखा सच्चा बोलना,　　कहे खरापन काम ।
बहु दरशी माने नहीं,　　मूढ़ कहे तिहि नाम ॥ ३ ॥

ज्ञानी सुखी ॥ १९ ॥

सुख दुख भोग न छूटही,　　जबलग घटमें प्रान ।
ज्ञानी दुख भोगत प्रथम,　　मूरख सुखहि प्रमान ॥ १ ॥
इच्छुक हो दुख साधना,　　दुख ही सुखको रूप ।
सुख दुख तो बनही रहा,　　ज्ञानी सुखी स्वरूप ॥ २ ॥
मूरख सुखके भोगसे,　　ऊब जाय अकुलाय ।
दुःख सहन समरथ नहीं,　　दुःख नरक बन जाय ॥ ३ ॥

मन्त्री ॥ २० ॥

मालिक की जैसी रुची,　　वैसा गावे गीत ।
ज्ञाता जब मालिक न हो,　　वहां हि ऐसी रीत ॥ १ ॥
स्वारथ त्यागे बिन कभी,　　मन्त्री ठीक न होय ।
कहां मिलें मंत्री बिदुर,　　अपने घरका खोय ॥ २ ॥

अवश प्रीत कर बात हो, हानि कार भी होय।
ऐसहि बात सुने सभी, लाभद कछु नहि कोय ॥ ३ ॥
ऐसा मन्त्री कीजिये, स्वारथ रहे न ताहि।
जिस प्रकारसे बन पड़े, पूरा कर दे वाहि ॥ ४ ॥
अपने गाये गीतका, जो सुर भरे सचीव।
ऐसा मन्त्री राखते, देव न, असुर हि जीव ॥ ५ ॥
इत ये अन्धे आवते, उत वे अन्धे गौन।
अन्धेको अन्धे मिले, राह बतावे कौन ॥ ६ ॥

शहरी और दिहाती ॥ २१ ॥

शहरी होते खुश वज़ा, नाजुक अरु कमज़ोर।
तेज़ी चालाकी बड़ी, आदी ऐशहि घोर ॥ १ ॥
दिहक़ानी उल्टे हि हीं, भद्दे अरु शहज़ोर।
सीधे सादे बहुत ही, बूझें समझें थोर ॥ २ ॥
दिहक़ानी सेवा अतिथ, करते जीव लगाय।
शहरी देखें अतिथको, तभी मूंह सुख जाय ॥ ३ ॥
सकल वस्तु पैसे बिना, भोगे आप बनाय।
शहरी धन ठिकरी करें, तऊ न वह सुख पाय ॥ ४ ॥
अच्छी हालत है वही, दोनों होय लगाव।
घर बांधे देहातमें, वासा शहर बनाव ॥ ५ ॥

शिक्षा पाव ॥ २२ ॥

शिक्षा पावहि जांचिये, कष्ट कसौटी माह।
इच्छा शिक्षा प्रबल हो, तजत नहीं उत्साह ॥ १ ॥

पात्र नहीं जो होयगो, पाय कष्ट भगि जाय ।
शिक्षा देन कुपात्रको, सर्प हि दूध पिवाय ॥ २ ॥
धीरज नहिं जा मनुषमें, गुन वामें ही दोष ।
चंचल तोता नहिं पढ़े, नहिं मानत है पोष ॥ ३ ॥

विश्वास पात्र ॥ २३ ॥

मित्रहुको विश्वास हू, करनो उचित न यार ।
क्या जाने बिगड़े कभी, सब कुछ देय उघार ॥ १ ॥
करते जो विश्वास नहिं, नहिं बनता इक काम ।
वापर दृष्टी राखनो, यही चौकसी नाम ॥ २ ॥
राखत जो दृष्टी नहीं, निरभय आलसि जान ।
भल अनुचर हू चोर हों, दगा बाज़ बदमान ॥ ३ ॥

दान पात्र २४ ।

भूखे अन्न खवायबो, नंगे वसतर दान ।
साधारन यह दान है, पात्रहु मत पहचान ॥ १ ॥
भिक्षा वृत्ती जो करे, नही दान को पात्र ।
मांगन सकते जो नही, ढांको उनको गात्र ॥ २ ॥
सज्जन खोजत फिरत हैं, भूखा नंगा कौन ।
अन्न वस्त्र यों देत हैं, दियो न जानै कौन ॥ ३ ॥
दान पात्र को पायबो, बड़ भाग से होय ।
ऊंची दशा न होय तो, पात्र मिले नहि कोय ॥ ४ ॥

गुप्तदान जो करत हैं, पाव लगे तिहि हाथ।
नहि तो ठग सब पाव बनि, ले जाते चढ़ि माथ ॥ ५ ॥

मित्र २५।

मित्र बिना को है जहां, खोले हृदय किवाड़।
बिपद तोप के सामने, कौन होयगो आड़ ॥ १ ॥
असल मित्र वह जानिये, नेम नहीं जहं मान।
आदर नहि सत्कार नहि, दो शरीर एक प्रान ॥ २ ॥
हरखि उठे आदर करे, बिदा होत दे रोय।
तुलसी * ऐसे मित्र घर, भूखे रहिये सोय ॥ ३ ॥
आवत उठि आदर करे, जात नवावे सीस।
तुलसी * ऐसे मित्र से, मिलिये बिस्वा बीस ॥ ४
हेत राख जो बहुत करि, बोले मीठी बैन।
बिना गरज़ इतना करे, सोभी सच्चा सैन ॥ ५ ॥
सौ सज्जन इक लाख हित, मजलिस मित्र अनेक।
काम करे जो समय पर, सो लाखन मे एक ॥ ६ ॥
बात मित्र जो कभि कहे, कोई उलटी आप।
वह हिरदे * सुलटी पड़े, ज्यों कागज़ पर छाप ॥ ७ ॥
स्वाभाविक है मित्र यह, मात पिता अरु नार।
पुत्र भ्रातृ गनि लीजिये, साधु मित्र हू सार ॥ ८ ॥
जिनके हों यह मित्र नहिं, बूझहु उन्हें असार।
जांच बूझ कर है उचित, करना उन से कार ॥ ९ ॥

शत्रु २६ ।

जिसका किया बिगार हम, वह जब करत बिगार ।
उसको शत्रु कहत हैं, भूम यह जग संसार ॥ १ ॥
विना दोष पर को लखे, शत्रुपन ले ठान ।
उसको पागल जानिये, अथवा मूरख मान ॥ २ ॥
जग में शत्रु कोइ नहिं, अपने शत्रु आप ।
ईश्वर नियम हि करिदियो, फल भोगन को पाप ॥ ३ ॥

भाग्यवान २७ ।

रुचि को हो वा अरुचिको, खुश हो लेवे काम ।
तन मन से पूरा करे, भाग्य वान है नाम ॥ १ ॥
दुख सुख मे सबजनन के, हरखि होय साहाय ।
धन न होय तो देह से, तनक नही सकुचाय ॥ २ ॥
औसर पर चूके नहीं, सहे तनक नहि देर ।
चौकस अपने काम मे, पड़े कभी नहि फेर ॥ ३ ॥
जानत वा अंजान में, बने जो ऐसे काम ।
दैव शक्ति अनुकूल हो, भाग्य उसी का नाम ॥ ४ ॥
कौन काम में कौन फल, क्या वस्तू गुन कौन ।
इसी ज्ञान से फल मिले, भाग्य वान है तौन ॥ ५ ॥
जीवित ही जेहि पुत्र ने, लियो काम को भार ।
तोषि पिता को मुक्ति दे, बड़ो भाग्य की कार ॥ ६ ॥
दैव शक्ति मे दोय गुण, अनुकूल रु प्रतिकूल

प्रतिकूल हि सवधान हो, फल पावत अनुकूल ।। ७ ।।
आगहि इन्धन साधिले, जलन न देवे हाथ ।
ज्ञान उदम सवधानता, बरते साथहि साथ ॥ ८ ॥

भाग्य हीन ॥ २८ ॥

काम सुनत मुंह शुष्क हो, तर्क निकाले लाख ।
भाग्य हीन लक्षण यही, बहु दरशी दे साख ॥ १ ॥
एक पहर बैठत नहीं, काम करत अकुलाय ।
ऐसे धीरज हीनको, कभी न होइ सहाय ॥ २ ॥
दैव शक्तिको ज्ञान नहिं, हुशियारी नहिं ज्ञान ।
शक्तीसे बड लाभ पर; ध्यान न भाग्य हि वान ॥ ३ ॥

भाग्यवादी ॥ २९ ॥

निपट आलसी कूढ़, केवल मानत भागको ।
झूठा नास्तिक मूढ़, करत ठीक मानत नहीं ॥ १ ॥
रोटी करि करि खाय, दवा करे जा वैद्य घर ।
चाभी घर दे जाय, कहे भरोसा भाग पर ॥ २ ॥
अपने दोष कुपापको, ईश्वरके सिर चांप ।
बिला जुर्म छुट जानको, चोरी करता पाप ॥ ३ ॥
उद्यम रूपी वृक्षके, फलको कहते भाग ।
आलसि उद्यम कष्टका, लगने दे नहिं लाग ॥ ४ ॥
उद्यम रूपी वृक्षमें, निश्चै फल कोइ होइ ।
कभी देर हो, हो न हो, भाग हि अब फल सोइ ॥ ५ ॥

उद्यम होसे प्रगट हो, भाग्य शब्द आधार ।
जहां न उद्यम होय तो, भाग्य वहां बेकार ॥ ६ ॥

काम काजी ॥ ३० ॥

अच्छोंकी गनती जहां, हुई है अब तक जान ।
सब हि काम काजी रहे, अलसी नहीं बखान ॥ १ ॥
सतवाणी सुन साधु जन, वैसहि करते काम ।
मूरख औरनकी कहें, आप रहे बदनाम ॥ २ ॥
जिन ढूंढा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ ।
बाकी पछताते रहे, हाथ पसारे बैठ ॥ ३ ॥
एक घड़ीके कामको, साधू करत सबेर ।
मूरख को रोते लगे, घड़ी चार की देर ॥ ४ ॥
साधू स्थिर अरु धीर हो, करते पूरा काम ।
मूरख घबराहट भरे, हो जाते बदनाम ॥ ५ ॥
साधु जबहिं कुछ कामले, करता जीव लगाय ।
मूरख तब चंचल रहे, चुल चुल करता जाय ॥ ६ ॥
काम काज आनन्द में, साधुन को दिन जात ।
मूरख के दिन नींद में कलह करत उत्पात ॥ ७ ॥
उद्यम तो झटपट करे, कारज करे सुधीर ।
ऐसे साधू पुरुष को, कहिये बामन बीर ॥ ८ ॥
आप करे तिहि देव कह, कहने पर नर जान ।
कहने पर भी नहिं करे, वह नर पशू समान ॥ ९ ॥
कहे बिना जो खुद करे, ताहि देवता जान ।
कहने पर जो करत है, नर वाको कर मान ॥ १० ॥

कहने पर जो नहिं करे, उसका यही बखान ।
बिना पूछ अरु सींगको, निश्चै है हैवान ॥ ११ ॥
काम काज करता रहे, नहीं ज्ञान से काम ।
सुखिया यद्यपि होयगो, तो भी सुटिया नाम ॥ १२ ॥

सूघड़ ॥ ३१ ॥

पाच पाव की पोटरी, गाठ दई छितराय ।
कैसी हूं बल बुद्धि हो, सके न ताहि उठाय ॥ १ ॥
गमछे मांह समेट ले, बोझ पंदरह सेर ।
दुर्बल हू ले कर सहज, कर ले हेरा फेर ॥ २ ॥
फूहड़पन वाली बात को, सोचे जीव लगाय ।
सूघड़ उसको कहत है, कर ले सहज उपाय ॥ ३ ॥
पक्का सूघड़ है वही, सोचे जब कुछ काम ।
सब फूहड़पनको सोच कर, ठहराले अंजाम ॥ ४ ॥

चतुर ॥ ३२ ॥

हर बातों पर बोल ले, हरिक काम तइयार ।
सब कर्मनको फल कहे, जाने सब व्यवहार ॥ १ ॥
जो कुछ देखे जांच ले, सुने सो लेवे बूझ ।
छोटी अरु बड़ि बातमें, ध्यान रहे अरु सूझ ॥ २ ॥
सबसे मीठा बोल ले, जिरह करे हर बात ।
जैसे बने निकाल ले, होय काम की बात ॥ ३ ॥

चौकस ॥ ३३ ॥

जिस बाबत जो उचित है, करता पूरा काम ।
हर कामनके अंग की, गिन कर राखे नाम ॥ १ ॥
काम पुराये देख ले, गिनकर सब ही अंग ।
हो पूरा छूटे नहीं, कोई अंग न भंग ॥ २ ॥

फुरतीला ॥ ३४ ॥

होय घड़ीके कामकी, करे ठीक घड़ि एक ।
कोई कामहु आय जो, नहि राखे वह फेंक ॥ १ ॥
संवर बिगड़ पर ध्यान रख, नहिं करता वह देर ।
संवरे बिगड़े बूझ ले, फिर नहिं पावे फेर ॥ २ ॥
जितनी देरी काम की, जिसका है परिमान ।
पहिले ही उससे करें, फुरतीला है जान ॥ ३ ॥

पक्का पिंड ॥ ३५ ॥

तुलसी* धीरजके धरे, का कर सके कुसंग ।
मलयागिर विष ना चढ़े, लिपटे रहत भुजंग ॥ १ ॥
कच्चेकी बचना उचित, पक्का होय न भंग ।
काली कमली सूर*की, चढ़त न दूजी रंग ॥ २ ॥

मुहर्रिर ॥ ३६ ॥

लिखना जल्दी बहुत हो, पढ़ाजाय बे पीर।
समझत मेल हिसाब को, जोड़त रहता धीर ॥ १ ॥
काम निकासहिं चट करे, गन्दा होन न देय।
लिखनेमें अरु काम में, पूरा फल ही लेय ॥ २ ॥

हिसाबी आदमी ॥ ३७ ॥

सूम नहीं है काम की, नहीं अती अरु खर्च।
अरु खरच साधू कहें, कहत सूमसे हर्ज ॥ १ ॥
खोवनहार मिलें बहुत, पैदा करने हार।
रक्षा करनेहार कम, देखो यह संसार ॥ २ ॥
मितव्ययी कहते उसे जिसका होय हिसाब।
लेन खरा अरु देन भी, हो बाहरमें आब ॥ ३ ॥
काम करन जो उचित है, करता पूरम्पार।
थोड़ोंका जहं दम लगे, नौ में करे गुजार ॥ ४ ॥

दरबारी पूत ॥ ३८ ॥

काम काज जेहि हाथ नहिं, धर्म कर्म सब साज।
रहे काम जब हाथ में, उतनेसे था बाज ॥ १ ॥
वैदिक सन्ध्या सूब की, दस गायत्री जाप।
नित्य कर्म इतनी बने, यहि पूरा है आप ॥ २ ॥
और कहत है पंच जो, महा यज्ञ तिहि नाम।

यथा कालहि में होत है,　पूरा सबही काम ॥ ३ ॥
ठाकुर सेवा वहि करे,　जिनकी है जागीर ।
मज़दूरी पर दिन चले,　पूजा करे फ़क़ीर ॥ ४ ॥
तजि उद्यम मूरख करे,　बहु व्रत देव अराध ।
लड़के रोवें माड़ का,　मागे पितर सराध ॥ ५ ॥
नोकरिया हाज़िर नहीं,　जब हों हो तिहवार ।
मालिक खुश रहता नहीं,　बदल नौकरी सार ॥ ६ ॥
दरबारी जो पूत भे,　देव पितर सब खोय ।
दोऊ राखन जो चहे,　एक न पूरा होय ॥ ७ ॥

गुरु ॥ ३९ ॥

जग में सब ही हैं गुरु,　खोज किये तिन जान ।
चेला जब तक पावहि,　जान है गुरुकी खान ॥ १ ॥
बड़े छोट सब लोग सों,　सीखत नीकी बात ।
जो हम जानत हैं नहीं,　चेला सीखन जात ॥ २ ॥
गुरु बने गुड़ ही रहें, 　चेला चीनी होय ।
खोजी पावत खानहीं, 　तृपत नहीं जो होय ॥ ३ ॥

उपदेशक ॥ ४० ॥

उपदेशक तपसी न हो, 　आमिल हो नहिं काम ।
उसका सुन उपदेश मत, 　होय बुरा अंजाम ॥ १ ॥
आमिल नहिं हो काम को, न हो तपस्या योग ।

धर्म सकै नहिं बूझने, बूझत अपने भोग ॥ २ ॥
करुणा रसकै वाक्यसे, मोहत है मन कूढ़ ।
सर्प बाघ एकाग्र दिठ, पकड़ि खाय पशु मूढ़ ॥ ३ ॥
तपको जाको बल नहीं, करे बड़ी वह बात ।
ठग को है लच्छन यही, बढ़त यही उत्पात ॥ ४ ॥

आमिल ॥ ४१ ॥

आप करत नहिं काम जो, कर परको उपदेश ।
सफल न हो उपदेश वह, आमिल नहीं विशेश ॥ १ ॥
व्यास कियो उपदेश जो, नहिं बूझ्यो शुकदेव ।
जनक दियो तहि मंत्र जब, तब हीं भयो मनेव ॥ २ ॥
आमिल बिन चलता नहीं, असर अमलको जान ।
आमिल नहिं जो काम का, तेहि उपदेश न मान ॥ ३ ॥
आमिल जो हर बातका, खोटे हीं कोइ काम ।
एक बात पर भूल मत, आमिल एनका नाम ॥ ४ ॥

सच्चा धर्मज्ञ ॥ ४२ ॥

धार्मिक उसको कहत हैं, सत्यहि मानै एक ।
भेद त्याग मिल जानको, करत यतन बहुतेक ॥ १ ॥
सच्चा धार्मिक है वही, करत धर्म फैलाव ।
अपना जोई धर्म है, सबका वही बनाव ॥ २ ॥
आपहि बूझत भूल जो, संसकार को त्याग ।
जांच बूझ कर मेल करि, सत से कर अनुराग ॥ ३

धर्म ग्रन्थके अर्थकी, व्यापक करताजोय ।
संकोची धार्मिक नहीं, व्यापक धार्मिक होय ॥ ४ ॥
आप्त वाक्य वह है नहीं, युक्ती जाहि विरुद्ध ।
अथवा अन्यहि धर्मसे, मेल मिले नहि शुद्ध ॥ ५ ॥
आप्त वाक्य सब धरम के, होते एक समान ।
अर्थकरन की भूल से, भेद पड़त है जान ॥ ६ ॥
अपने मनका अर्थ जो, कर विश्वास दिलाय ।
युक्तीसेहु विरुद्ध हो, धर्म शत्रु कह ताय ॥ ७ ॥
धार्मिक करते अर्थ यों, बिन पुस्तक विश्वास ।
पर धरमी की युक्ति से, अपना करे प्रकाश ॥ ८ ॥
बिन युक्ती के हठ धरम, दुर्बलता का मूल ।
पर धरमी हेठा करें, है यह अतिशय भूल ॥ ९ ॥

फ़कीर ॥ ४२ ॥

मन मारे तन बस करे, कारज करे गभीर ।
सब इन्द्रिन को बस करे, ताको नाम फकीर ॥ १ ॥
बिन उद्यम पेटहि भरे, एक विलास अभाव ।
नहि विलास से काज जेहि, या विधि जेहि बरताव ॥ २
मा थन में दे दूध जो, मुआ हरित कर जोय ।
मोरन को रंग रंग रंगी, जीवित रखता सोय ॥ ३ ॥
हंसहि को उज्जल कियो, भेद वस्तु जिन्ह कीन्ह ।
वाहीपर विश्वास करि, मन उत्तम पथ दीन्ह ॥ ४ ॥

भूदेव ॥ ४४ ॥

पशुपच्ची अरु मनुष पै, अरु वस्तुन के माह।
प्रीत रही जाकी सदा, वृचादिक हू चाह ॥ १ ॥
प्रीत रही अपनी सदा, पाई उनकी प्रीत।
याविध मानव जानिये, देव अमर की रीत ॥ २ ॥
जिसके मन में द्वेष विष, उपज्यो नहि कोइ काल।
और किसी का द्वेष विष, चढ़ा न इनके हाल ॥ ३ ॥
लाख तरह से छेड़ लो, टूटन नहि कभि काम।
यह गुण जाही हीत है, अच्युत उनका नाम ॥ ४ ॥
स्वर्ग जगत के द्वेषने, दुख सागर कर दीन।
अमर देव इस जगत में, भोग स्वर्ग को कीन ॥ ५ ॥

निष्पापी ॥ ४५ ॥

पाप रहित जो देखिये, बालक जो है छोट।
जिसने सीखी है नहीं, माय बाप की खोट ॥ १ ॥
उस बालक के भावमे, नहि देखोगे पाप।
वही भाव जिस मनुषमें, देखो वह निष्पाप ॥ २ ॥
भीतर बाहर एक है, जो कुछ देखो साफ।
राजनीत की कुटिलता, रखती उसको माफ ॥ ३ ॥
हंसी जो बालक हंसत है, हंसी उसी का नाम।
पापी हंसलें कठ हंसी, है रोने का काम ॥ ४ ॥

पापी उनको जानिये, जिनके जीवन दोय ।
करत बिबेकहि दोय तेहि, जाहिर बातिन सोय ॥ ५ ॥

स्वर्गवासी ॥ ४६ ॥

मरने पर जेहि पुरुषको, जग सुमरत है नाम ।
निश्चै वाको स्वर्गमें, बड़ो बन्यो है धाम ॥ १ ॥
कौन पुरुषने क्या किया, जिससे पाया नाम ।
स्वर्ग धाम जो चाहते, निश्चै करें सु काम ॥ २ ॥
जग जाकी सुधरी नही, बिगड़ी तेहि परलोक ।
इसी लोक के कर्महो, कहते फल परलोक ॥ ३ ॥

सुरूप और कुरूप मनुष्य ॥ ४७ ॥

स्निग्ध हि भोजन जो मिले, श्रम जो होय शरीर ।
ज्ञान लाभ हू होय जो, हो सुरूप वह बीर ॥ १ ॥
देह सुडौल हि होत है, श्रम साधत ही जान ।
उत्तम भोजन से बने, लावण्यहि तन मान ॥ २ ॥
आकर्षन भलो बने, ज्ञान जु हो तन बीच ।
सुन्दर रूप हि तब बने, नहि तो रूप हि नीच ॥ ३ ॥

पेशेदार ॥ ४८ ॥

ज़मीदार[१] आलिम[२] अरु, भिखमंगी[३] बैपार[४] ।
जोतदार[५] मजदूर[६] है, चाकर[७] अरु हस्तकार[८] ॥ १ ॥

एक चार अरु पाचवें, यह जब हीं सुध हाल।
आठो तब ही सुखि रहैं, नहि तो चौपट काल ॥ २ ॥
चार पांच के सात अरु, आठ करै रुज़गार।
धन बनाय यह खात हैं, वह खाते भंडार ॥ ३ ॥
लाभ हि में यह खात हैं, वह पूंजीही खाय।
थोड़ा भी रुज़गार करि, दिन नहि काटन जाय ॥ ४ ॥
धन भंडार कुबेर की जब इसमें लगि हाथ।
जगकी धन तबही घटे, जाता नहि कुछ साथ ॥ ५ ॥
धन भंडार कुबेर की, घटत न कोई काम।
बिन कमाय जो खात हैं, यहि घाटा है आम ॥ ६ ॥
श्रमसे जिसके धन बने, खाना उसका सार।
जिस श्रम से धन नहि बने, श्रम है वह बेकार ॥ ७ ॥
गायक भिखमंगे पुरुष, खाते धन भंडार।
श्रम करते यह बहुत हैं, इनका श्रम बेकार ।॥८ ॥

ज़मीदार ॥ ४९ ॥

सदा रहे राजा भला, ज़मीन्दार है कौन।
हदं है तहसिल्दार वा, कहो महाजन जौन ॥ १ ॥
मिले अगर स्वाधीनता, करे प्रजा का न्याव।
दुख सुख देखतहू रहे, तब राजा हो नाव ॥ २ ॥

शिकमी तालुकदार या ठीकेदार ५०।

ज़मीदार जो खास नहि, रखते आप महाल।
पैंतिस एक्ट हि ताहि हित, ठारह चालिस साल ॥ १ ॥

दुबले जो ज़मिदार हैं, नहि कर सके वसूल।
ठीका देते हैं वही, इसमें नहि कुछ भूल ॥ २ ॥
ठीके दारी में तभी, लाभ हि पूरा होय।
कुछ दावे ज़मिदार को, परजा दावे सोय ॥ ३ ॥
एक बरस बूझत गया, छोड़त ही एक साल।
बाकी दिन विन जुल्म के, ठीके दारि मुहाल ॥ ४ ॥

जोरदार रअइयत ॥ ५१ ॥

जगत नियम यह चलत है, रहत ज़मीन अबाद।
फिर उजाड़ जंगल हि हो, बरस हज़ारहि बाद ॥ १ ॥
या विध राजा जब हुए, धरती पड़ी निगाह।
चाकर एक हि भेजकर, कियो बसावन राह ॥ २ ॥
मज़दूरन को लेयकर, कियो ज़मीन अबाद।
मज़दूरे रअइत बने, कियो जोत आबाद ॥ ३ ॥
नोकरिया ठिकहा सभी, बन गय वह ज़मिदार।
मज़दूरन को अब हुवो, नाम हि काश्तकार ॥ ४ ॥
ईश्वर के हि नियम हल, बलवान हि हकदार।
[illegible] जा दुर्बल भक्त थी, हो अधीन ज़मिदार ॥ ५ ॥
[illegible] र हू पालते, ज्यों अपना संतान।
[illegible] सहाय दुख सुखहुमें, परजाको बस जान ॥ १ ॥
अंगरेज़ी आईन हो, दियो प्रजा बहकाय।
बल तो कुछ भी नहिदियो, बल बातोमें जाय ॥ २ ॥
भक्ती परजाकी गई, ज़मीदारका नेह।

झगड़ेमें दोऊ गये, फले नियम ही लेह ॥ ३ ॥
कद्दू छूरी पर गिरे, नियमहि फलत सदेह
कद्दू पर छूरी गिरे, बातें वही बनेय ॥ ४ ॥

डाकटर ॥ ५२ ॥

जिन देख्यो वह काल है, डाक्टर कहत डकैत ।
दोय चार सोलह विज़िट, अन्त दवा करि देत ॥ १ ॥
बहुत दिनहु नहि होत है, बीते बरस न तीस ।
खरच इलाज हि क्या रहा, याद घुमावत सीस ॥ २ ॥
बैदजि आये देखने, पढ़ने लगे निदान ।
नाड़ी देखत बोलते, ज्यों ज्योतिष व्याख्यान ॥ ३ ॥
देख पूछ सुन बूझ कर, चलत व्यवस्था सोय ।
युवा सुपारी एक लें, वृद्ध सुपारी दोय ॥ ४ ॥
नुसखा धेलें दमड़िका, अथवा निज ही देय ।
जब तक नहि आरोग्य हो, शाम सुबह तत लेय ॥ ५ ॥
जिस दिन रोगीको भयो, आरोग्य हि अस्नान ।
सीधा दे इक वैद्यको, पैसे चार हि दान ॥ ६ ॥
घरहि वैद जब काम हो, होय ब्याह उपनैन ।
करत मदद खुश होय सब, अपनी अपनी दैन ॥ ७ ॥
एक ब्याहकी मददसे, ब्याहहु पूरा होय ।
इतनी सब चीजहि बचे, खाय बरस इक दोय ॥ ८ ॥
भारत सुखिया यों रहा, आदम जैसे स्वर्ग ।
आन अंग्रेजी आयकर, दुखी कियो सब वर्ग ॥ ६ ॥

कहुं सरदिके रोगमें, करी चिकित्सा बैद ।
फोड़ा फुन्सी डाकटर, गरम हकीमहि कैद ॥ १० ॥

बैद्य ॥ ५३ ॥

स्वारथ जाको नीच नहि, एसे जो हैं बैद ।
दवा उन्ही की कीजिये, लोभीका रख कैद ॥ १ ॥
लोभी बैद हि होय जो, सूझ होय नहि ताह ।
स्वारथ बुद्धी त्यागही, समझ बूझकी राह ॥ २ ॥
धर्मी वधी जो जानि है, बैद वही मत जान ।
इतना ज्ञानहि बहुत है, यही निष्पट निदान ॥ ३ ॥
दुखियोंसे धन लेय कर, करे चिकित्सा बैद ।
वाको अन्तहु कू नहीं, आवककी रख कैद ॥ ४ ॥
धनियोंसे धन लेय कर, दुखियनको उपकार ।
यही काम सत बैद्यको, लो उनका आधार ॥ ५ ॥

वकील ॥ ५४ ॥

उत्साही अरु मिहनती, रखलहु खोजि वकील ।
नामहिं पर रीझहु नहीं, बली इन्द्र सें गील ॥ १ ॥
आइनका अति ज्ञान हो, हालत ध्यान विशेक ।
वाक्य शक्ति साहस भि हो, वारी बरन प्रत्येक ॥ २ ॥
नीच बुद्धि हाकिम जहां, नामी करहु वकील ।
दाब दूब कर काढि ले, अपने मनकी कील ॥ ३ ॥

मुख़्तार ॥ ५५ ॥

मुख़्तारी पद एक है, कहत बुरी सब नाम।
अक्सर मूरख लोग हो, ग़रज़मन्द बदनाम ॥ १ ॥
सचमें झूठ मिलावनो, इन ही का है काम।
मोवक्किल बेचार का, मोक़दमा करि खाम ॥ २ ॥
कभि देखि आईन नहि, नहिं देखे क़ानून।
सजते खूब मुक़द्दमा, पहले लेत शगून ॥ ३ ॥
यह हो उत्तम पद तभी, प्रबल इल्म ईमान।
भलमानुस जब होयगे, छट जायें बइमान ॥ ४ ॥
ऐसहि है इक और पद, एटर्नी हइकोट।
भले भले गौरव सहित, उनमे कम है खोट ॥ ५ ॥

साधु बेपारी ॥ ५६ ॥

जहां जोड़ दरकार है, करे वहां भर पूर।
अपना हक़्क़ निकाल ले, साधू, वह नहिं कूर ॥ १ ॥
साधू बैपारी वही, करे धर्म बैपार।
नियत हि वस्तु जुभावनो, नहिं केवल रुजगार ॥ २ ॥
नेक नियत बरताव में, लगता नहिं कुछ दाम।
नहीं कमी रुजगार हो, घटता भी नहिं काम ॥ ३ ॥
बनिया बदनीयत जोई, खुश नीयत वहि हाल।
साधूका शुभ चाहते, बनिया पर सब लाल ॥ ४ ॥

बनियां ॥ ५७ ॥

नीच हियो जाको रहै, करै जोइ बैपार ।
ताको बनियां कहत हैं, नीच हि जाकी कार ॥ १ ॥

कारीगर ॥ ५८ ॥

आपहि उपजी बस्तु जो, श्रम बुद्धीके द्वार ।
खोद ढालि घड़ि जोड़ इक, करै सोइ हथकार ॥ १ ॥
शिल्पी या हथकारहू, कारीगर कह ताहि ।
नीच काम भारत हि यह, उन्नत होता नाहि ॥ २ ॥
ऊंचे अरु बुधमान जन, करैं अगर यह काम ।
शिल्पउन्नती होय कर, होय देश के काम ॥ ३ ॥ ४ ॥
शिल्प विलास हि नष्ट धन, नहि केवल यहि दोष ।
अति बिगार आदत करत, हो अभाव ही कोष ॥ ५ ॥
शिल्प लियो छोटे जनन, बुद्धी उन्नति नाहिं ।
दो रुपये में हल बन्यो, गाड़ी सोलह मांहि ॥ ६ ॥
दरकारी जो काम सब, चलता सबही ठीक ।
देखत शोभा हो नहीं, काम नहीं बेलीक ॥ ७ ॥

दल्लाल ॥ ५९ ॥

सब कामों से है बड़ा, काम एक दल्लाल ।
अड्डा चौकस होत है, हो मिहनती कमाल ॥ १ ॥

फुरतीला चौकस श्रमी, हो नहि जो दल्लाल ।
धाप न हो तो है वृथा, नाहक होय दिवाल ॥ २ ॥
उतर गये दल्लालि मे, काम हि के वह लोग ।
आप भरोसे काम है, दल्लाली हि सुयोग ॥ ३ ॥
पूंजीं विन स्वाधीन हो, होत बड़े दल्लाल ।
कलकत्ते मे देख लो, धन अरु मान कमाल ॥ ४ ॥
बिगड़े वैपारी जभी, करत दलालि हि कार ।
इज्ज़त भी पूरी रही, धन भी हो पुरवार ॥ ५ ॥
आलसि भई को गुज़र, यहां नही घड़ि एक ।
क़िस्मत का लाभहु नहीं, पुरुषारथ पर टेक ॥ ६ ॥
बुद्धो मिहनत आसरे, बढ़ते हैं यह लोग ।
वकिल दलाल रु डाक्टर, वही बहादुर लोग ॥ ७ ॥

नौकर चाकर ॥ ६० ॥

नौकरिया हो मिहनती, होय समझ हूं कूछ ।
ईमानहु की झलक हो, गुण की बात न पूछ ॥ १ ॥
बड़े भागसे मिलत है, अस नौकर जगमाह ।
वाको दाम, न होत है, अमुल रत्न कछु ताह ॥ २ ॥
नौकरिया को दामही, कहत एक विस्वास ।
गुण होंलाख, न होयवह, दाम न कुछ भी तास ॥ ३ ॥
जो चाहत चाकरि करन, हो नामी विश्वासि ।
अपना हू चाकर बनो, विश्वासी जग पासि ॥ ४ ॥
श्रेष्ठ पुरुष के काम में, नौकरिया हो पास ।
ज्यों ज्यों हो प्राचीन वह, काम करै अनयास ॥ ५ ॥

नौकर नीच न धनिन की, चहिये नितहि नवीन।
जीन्हैं तकसे भक्त ही, होय शत्रु प्राचीन ॥ ६ ॥
करो न चाकरि नीच की, सह कुटुम्ब परिवार।
एकहि को जो दोष हो, सब खोवत रुजगार ॥ ७ ॥
बात प्रकृति को कहत है, कृश अरु लम्बा डौल।
आश्रित इ षी प्रकृति हो, आयुर्वेद हि कौल ॥ ८ ॥
चाकरिया को उचित है, जाने धनी सुभाव।
बात प्रकृति जो हो धनी, सदा कष्ट वर्ताव ॥ ९ ॥
नौकरिये जो श्रेष्ट हों, करिये उनका मान।
नीच अगर ऊंचें उठे, पद पद हो अपमान ॥ १० ॥
नौकरियेका पेट भर, तब ले पूरा काज।
जैसी फूकी बांसुरी, तैसी होय अवाज ॥ ११ ॥
पर बस चाकर होयके, मगन होय मन माह।
सुआधीनता खोयकर पड़े भांग बुध माह ॥ १२ ॥
ऊंचे होनेके लिये, पहले ही सिरनाय।
जीवन यापनके लिये, जीवन देने जाय ॥ १३ ॥
सुख पावनके हेत से, दुखमें जाय समाय।
सुआधीनता जानसे, ज्ञान बुद्धि चलि जाय ॥ १४ ॥
होय भले चाकरन ते, भलो धनीको काम।
ज्यों अंगद हनुमानते, सीता पाई राम ॥ १५ ॥
निज भागहि को बेचनों, जगमें है यह काम।
बुध ऐसी हो जात है, लक्ष्मी होती बाम ॥ १६ ॥
जगमें जब अंधियार हो, तब ही लग हो मान।
छलको जब तक बल रहे, तब ही लग धन ज्ञान ॥ १७ ॥

निज भागहि को बेचनो, जगमें है यह काम ।
बुध ऐसी ही जात है, लक्ष्मी होती बाम ॥ १८ ॥
जगमें जब अंधियार हो, तबही लग ही मान ।
छल की जब तक बल रहै, तबही लग धन जान ॥ १९ ॥
लाट गवर्नर मान वहि, सुवाधीन कछु काज ।
सुवाधीन मुटिया भलो, पराधीन नहि राज ॥ २० ॥

मजदूर ६१ ।

केवल मिहनत हात धन, असल एक मजदूर ।
तीन सेर दिन धान हो, पाने होय जरूर ॥ १ ॥
रोजीने पर काम हो, रातहि नहि दरकार ।
पासी और कलाल घर, हो शोभा विस्तार ॥ २ ॥
सुखिया यह सब रीत से, एकहि दुःख अपार ।
सफर करत हाकिम जभी, होत धूम बेगार ॥ ३ ॥
पकड़ि करत सब बन्द तेही, मजदूरी कछु फेर ।
दुख सुख बूझत नहि कोई, भोजन हू की बेर ॥ ४ ॥
मानुष की स्वाधीनता, सरकारी आईन ।
बरतत सारे हिन्द में, बेगारिन नहि दीन ॥ ५ ॥
पूलिस वाले क्या करें, सुनत खबर बेगार ।
छिप जाते मजदूर सब, बैठ रहत बेकार ॥ ६ ॥
कुलि दे ठीकेदार ही, होय तभी इनसाफ ।
पूलिसका भय तब मिटे, हो रुजगार हि साफ ॥ ७ ॥
बेगारी के बावमे, उचित करन आईन ।
पैसा हाथो हाय ही, हाकिम खुद ही दीन ॥ ८ ॥

जिस दिन यह सुनियम बने, हो सरकार असीस ।
एक बेगार हि खोजते, खुद आवे दस बीस ॥ ८ ॥

खिदमतगार ६१ ।

खिदमतगारी से उचित, लेना नहि निज काम ।
अपना सबही काम हू, करहु आप अंजाम ॥ १ ॥
एक काल पहिले गयो, भयो तजिरबा देख ।
अशराफ़न भोजन नहीं, लाभ रज़ील अलेख ॥ २ ॥
नियम तबहि यह है बन्यो, शूद्र जलहु नहि ग्राह्य ।
अपनो काज आपहि करे, धार्मिक भीतर बाह्य ॥ ३ ॥
इसमें निन्दा हो नहीं, गौरव बढ़त समाज ।
आलस जा धन बचत है, लाभहि सच्चा काज ॥ ४ ॥
वही काल आयो पुनि, हो जाओ हुशियार ।
भल मानुष मारे फिरत, नीच नबाब हि यार ॥ ५ ॥
भल मानुष बहु खर्च है, ताक़त नहि है देह ।
सब धंधा नहि कर सकत, रहत दरिद्र हि गेह ॥ ६ ॥
नीचन है बहु देह बल, कोई काम न आर ।
खर्च बहुतही कम लगत, लक्ष्मी वहां क़रार ॥ ७ ॥
नीच फ़राग़त हाल हों, अशराफ़न हों तंग ।
यह होना ही उचित है, ईश्वर नियम हि ढंग ॥ ८ ॥

तमाशे वाले ६२ ।

कहत मदारी और नट, तुमड़ी वाला एक ।
बन्दर वाला भाल घर, कठ पुतली बहुतेक ॥ १ ॥

भांड़ पतुरिया रास है, नटुवा खिलनी एक ।
और दिखावत फिरत हैं, पठ ठाकुर बहुतेक ॥ २ ॥
भूत भरावत एक हैं, ओझा उसका नाम ।
औरत को भक्तिन कहें, करत एक ही काम ॥ ३ ॥
देव करी उस जगह को, जहं खेलत हैं भूत ।
कहते अरु हजरात भी, हथ कज्जल दे पूत ॥ ४ ॥

पौनीयां ॥ ६४ ॥

धोबी नाइ कुम्हार अरु, माली मिहतर नाम ।
बिन पैसे सेवत रहें, पाते जब ही काम ॥ १ ॥
खाना कपड़ा नगद हू, शादी अरु पर्व्वाह ।
उनको घर जब काम हो, मदद देहि सब ताह ॥ २ ॥
देहातों मे है बंधा, नीचा सबका धान ।
दाना बन्दी भावली, सोलहाने से पान ॥ ३ ॥
आधा हो जमिदारका, आधा सब परजान ।
साल भरहि सब खाटते, गावहि अपना जान ॥ ४ ॥
साधारण ये पौनियां, सुख से काटत दीन ।
अंगरेजी में दाम ले, तऊ सुखी नहि तीन ॥ ५ ॥
पुत्र प्रसबके पौनिया, कहत पंवरिया नाम ।
हिजड़े इक दल होत है, और बखो बेखान ॥ ६ ॥
चामारिन इक पौनिया, ओर होय इक धाय ।
अंगरेजी जबसे चली, सबही नगदा पाय ॥ ७ ॥
पहिले मिलता अन्न था, कपड़े तिज तिहवार ।
अब नगदी ही जानते, दोऊ कठिन गुज़ार ॥ ८ ॥

मुर्दनके हैं पौनिया, कंटाहा अरु डोम ।
घरके नाति जवाइ हू, अउवल हैं नहि दोम ॥ ९ ॥
सबसे बढ़कर पौनिया, कहत पुरोहित ताहि ।
जजमानों के कामका, रहयो भार सब ताहि ॥ १० ॥
दस रहते जजमान हैं, हुए पुरोहित एक ।
दसकी लाठी मिलहिकर, खूब बोझ हो एक ॥ ११ ॥
दस जन मिल काजहि करें, पैसा कोइ न लेय ।
समय सुयोगहि पायकर, पूर्ण प्रभाव करेय ॥ १२ ॥
रग रेशे इनको गिने, अगले देह समाज ।
उलट पुलट सब होय कर, औरं ढबहि है आज ॥ १३ ॥

भिखमंगे ॥ ६५ ॥

भिख मंगे बहुतरह के, करते बहु उत्पात ।
अंगरेजी में कमहुआ, बहुत बड़ी यह बात ॥ १ ॥
योगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश ।
सुथरा मस्कहा कहैं, सत्यानाशी भेश ॥ २ ॥
एक अघोरी होत हैं, चम्मा होता एक ।
बसहा वृष ले फिरत हैं, गुर्ज वालहो एक ॥ ३ ॥
सरवनिया इक होत हैं, कांवर वाले एक ।
कहत डफाली भरथरी, जदवा फल कहैं एक ॥ ४ ॥
अगराफन भी शौक से, मागत हैं बहु भीख ।
सत नारायन बरत का, नाग डाक भी सीख ॥ ५ ॥
छठ बरत हू भीख है, अर्गाइ अष्टमी भीख ।

गाजी मीयां ब्याह का, और मुहर्रम लीख ॥ ६ ॥
अंगरेजी जबसे भई, निकले हैं अरु एक।
चन्दा बहि लेकर फिरत, कहते देश हितेक ॥ ७ ॥

भविष्यवक्ता ज्योतिषी ॥ ६६ ॥

इतिहासी अरु हाल के, सबके जाने काम।
फल पर उसके ध्यान है, ज्योतिषि उनका नाम ॥ १ ॥
आगहि में निश्चै जरे, जो कोइ देवें हाथ।
यही कर्म अरु फल यही, जो यह जाने साथ ॥ २ ॥
यह भविष्य निश्चैं कहै, जो कोइ देवे हाथ।
आगहि मे जर जांयगे, यहि भविष्य है गाथ ॥ ३ ॥
कर्म रु फलके ज्ञान से, हों बहुदरशी लोक।
काम देख कर कह सकें, सुख होवे या शोक ॥ ४ ॥

इनदोनोंमें मूढ़ कौन है? ॥ ६० ॥

एक सेठ जानत नहीं, पुस्तक विद्या ज्ञान।
उद्यम अरु बल पुण्य से, होय गयो धनवान ॥ १ ॥
ताहि निकट करि नौकरी, एक पुरुष विद्वान।
घृणा सेठ की करत है, मूरख कहि अज्ञान ॥ २ ॥
जनम भरहि नौकरि करी, पायो वृत्ति समान।
धन उपार्जन रीत पर, कभी भयो नहि ध्यान ॥ ३ ॥
सेठहु को निज ज्ञान है, धनहू बहुत बढ़ाय।
पंडित की बातें सुनहि, बहुतर ज्ञानहि पाय ॥ ४ ॥

मूढ़हि पंडित याहिते, भूल्यो है वह राह ।
विद्याको उद्देश है, एक ज्ञान ही चाह ॥ ५ ॥
ज्ञान छोड़ धन लेन को, धाये जग इस्कूल ।
रहे इधर नहि उधरके, नष्ट भये दुइ कूल ॥ ६ ॥
जगमें पंडित है वही, बुद्धि मान वहि होय ।
सत पथ से धन जोड़ ले, जय जय कार हि सोय ॥ ७ ॥

जनम दुखिया ॥ ६८ ॥

असन्तोषि घृणि ईर्षी, क्रोधी अरु सन्दिग्ध ।
परके माथे खाय जो, रहत सदा दुख दिग्ध ॥ १ ॥

कृपण ॥ ६९ ॥

सूमिन कहती सूमसे, काहे बदन मलीन ।
कै गाठिन को गिर पड़ो, क्या काहू को दीन ॥ १ ॥
नहि गाठिन को गिर पड़ो, नहि काहू को दीन ।
देते देखे और को, ताते बदन मलीन ॥ २ ॥
खाय न खरचे शुद्ध मन, चोर सबै ले जाय ।
पीछे ज्यों मधुमच्छिका, हाथ मले पछताय ॥ ३ ॥
जगमें जितनी कीर्ति हैं, सब के जड़ है सूम ।
खरचू के धन नेकभी, बचत नही या भूम ॥ ४ ॥
हाथ पसारे जगत भर, सूम के आगे जाय ।
दान नही तो करजही, दाता अरु कोइ नाय ॥ ५ ॥

एक दाता धोबी जगत, दूजो दाता सूम।
लेकर जैसा देय यह, करते अन्य हजूम ॥ ६ ॥
जग में पक्के बात के, सूम हि अकसर होय।
कभी कौल नहि देय यह, दे तो पूरा होय ॥ ७ ॥
दूजो सूम उन्हें कहे, जाने धन व्योहार।
स्तावक भड़ुवे भांड़ सब, पाते नहिं दरबार ॥ ८ ॥

असार मनुष्य ॥ ७० ॥

जिसके मनमें सार नहि, जिसकी टूटी आस।
गया गए गयदास हो, प्राग गए प्रग दास ॥ १ ॥
पल पल में मत फिरता, जबही औसर पाय।
ज्यों बिन पेंदी टेहरा, हवा लगत ढुल जाय ॥ २ ॥

अनपढ़ ॥ ७१ ॥

पूंछ सींग बिनु सोइ पशु, जो नर विद्याहीन।
तृन न चरै पशु भागसे, यह विधि चरित प्रवीन ॥ १ ॥
जाके विद्या दान तप, धर्म शील नहि ज्ञान।
सो नर धरती भार हो, घूमत मृगा समान ॥ २ ॥
बन चर पशु को साथ भल, बन पहाड़ मे जाय।
नहि मूरख के संग सुख, स्वर्ग सदृश गृह पाय ॥ ३ ॥
पंडित मूरख एक से, जब तक बोलत नाहि।
जान पड़त है काक पिक, ऋतु वसंत के मांहि ॥ ४ ॥
मूढ़ तहां ही मानिये, जहां न पंडित होय।
दीपककी रविके उदय, बात न पूछे कोय ॥ ५ ॥

जहां न गऊ को दरस हो, वहां पूज्य है भेंड़ ।
जहां रूख नहि होत है, तहां रूख है रेंड ॥ ६ ॥

बुत्त आदमी ॥ ७२ ॥

सकल ज्ञान मौजूद है, बरतत एकहु नाह ।
जोरू के बस होय कर, बुतके सम हो जाह ॥ १ ॥
नीच बुद्धि जोरू मिली, करती बहुत उपाय ।
अपनो पति बसकरन को, उल्लू मांस खवाय । २ ॥
अरु खवाय निज केशहू, अरु तल पैर हि मांस ।
वीट सुपारि खवाय कर, पति हो सत्यानास ॥ ३ ॥

अल्लहड़ आदमी ॥ ७३ ॥

अल्लहड़ उसको कहत हैं, जिसे सलीका नाहि ।
बस्तू फेंकी जो जहां, नहीं उठावत ताहि ॥ १ ॥
कौन बस्तु बिन कष्ट है, है नहि वाको ज्ञान ।
बस्तू देखी जो जहां, खरिद हि लायो आन ॥ २ ॥
कोई पूरा काम भी, कर सकता है नाहि ।
काम लेइ यों छोड़ दो, औरो कुछ बिगड़ाहि ॥ ३ ॥
लम्बा बांधें बांधनुक, उरियाता नहि एक ।
उरझा करके छोड़दे, होता फेका फेक ॥ ४ ॥
कामकि बातें मन नहीं, झगड़ालू एकान्त ।
तर्कन की टूटी नहीं, नहि होता सिद्धान्त ॥ ५ ॥
लाड़ प्यारको दोष यह, पूरा हो जब भोग ।
मोटक उडि दुर्बल अती, हो सन्तर्पण रोग ॥ ६ ॥

जोड़ बस्तु व्यवहार हो, करै नास उसि दीन ।
रूप रंग सूरत अकल, करत नष्ट ही तीन ॥ ७ ॥

हठी पुरुषारथी नहीं ॥ ७४ ॥

मानुष वह पुरुषारथी, हाथ हिलावत पाय ।
खाली बैठा नहि रहै, गप शप नही सुहाय ॥ १ ॥
दैव शक्तिकी आसरा, ले बिस्तारै काम ।
आश्रय या नहि शिथिल हो, बढ़त रहै न बिराम ॥ २ ॥
पुरुषारथि उसकी नहीं, कहना उचित हि जान ।
हठकर जो नहि लेत है, पर सहाय ही मान ॥ ३ ॥
पूंजी बिन मिहनत नहीं, देती अति फल लाभ ।
हद इतना ही होसकै, करलो जीवन लाभ ॥ ४ ॥
मानुष कुछ नहि कर सकै, हाथ हिलावत पाय ।
सबकारज ही होत है, दैव शक्तिके माय ॥ ५ ॥
वही शक्ति अनुकूल हो, मिलि तो दैव सहाय ।
जानि उसे नहि लेत जो, हठी वहि कहलाय ॥ ६ ॥
नीच बनै बिन मदद जो, ईश्वर दियौं पठाय ।
वाको जो नहि लेत है, वहि हठी कहलाय ॥ ७ ॥
सत स्वारथको त्याग करि, करत मूढ़को काम ।
याते निन्दित होत है, नहि पुरुषारथि नाम ॥ ८ ॥

सदा सन्देही ॥ ७५ ॥

सन्देही को दिन सदा, बीतत है दुख माह ।
बुरो अर्थको छाड़के, भलो अर्थ ले नाह ॥ १ ॥

कोऊ हू कैसी कहै, तर्कें अपनी ओर ।
भलो अर्थ लग जात भी, करता अर्थ अघोर ॥ २ ॥
वहम हि बातो बात में, वृथा करत दुःख घेर ।
चिन्ता झगड़ा सर्वदा, अशु बटोरत ढेर ॥ ३ ॥
साधूगन क्या करत है, जब वह करै कुतर्क ॥
मन सुन्नी करही रहत, शान्ति होय नहि नर्क ॥ ४ ॥

बेतमीज़ ॥ ७६ ॥

बेग उठे जो मनहि कुछ, मुद्रा से अरु बात ।
कर प्रकाश रोके बिना, पागल पन कहलात ॥ १ ॥
भोजन में मुंह चटपटो, पांव पटक कर चाल ।
पाठ करन सुर गाय के, भावों पर अंग चाल ॥ २ ॥
हर्षित हो नाचन लगे, खेद पड़त मुरझाय ।
सखुन तक्क्या हो बात में, फुहश गाल बक जाय ॥ ३ ॥
हाथ लगावत देह में, बातों का नहि ओर ।
काम काज की सुध नहीं, गप में डूबे घोर ॥ ४ ॥
अंग खजावत मुख विकृत, गुरुजन में नहि लाज ।
मानो द्वारा स्वर्ग को, खुल हि गयो है आज ॥ ५ ॥
दर्पनमें मुख देखते, बाल खिलावन माहि ।
मुद्रादोष ह बाकको, पागलपनके माहि ॥ ६ ॥
माता जब इन दोषको, ठीक ठीक सुधराय ।
मुद्रा बचन हु दोष सब, पागल पन ही जाय ॥ ७ ॥

पशु मनुष्य ॥ १७ ॥

संस्कार बस कामको, भलो बुरो ले मान।
फल पर दृष्टी होय नहिं, भाग्य हि से समाधान ॥ १ ॥
"मंगरी" इक औरत रही, बेटा उसके एक।
पिलही उसके हो गई, भोजन नहीं बिवेक ॥ २ ॥
सीधा चिकना बस्तु सब, जो मागे सो देय।
जिन्दगि होती बचहिगो, जो चाहे खा लेय ॥ ३ ॥
रोरो कहती लोगसे, है परहेजहि काज।
रूखा सूखा खान हो, यही दवा है आज ॥ ४ ॥
औषध होता नामको, झाड़ फूंक पर टेक।
अन्तहि लड़का चल बसा, रोती भाग्य बिशेक ॥ ५ ॥
बेटी उसकी जब पड़ी, फिर उसका वहि हाल।
पशुवत मानुष कहत है, जिसकी ऐसी चाल ॥ ६ ॥
राम रहा इक युव पुरुष, भोजन वादी शेष।
भोज्य संदेही बृक्ष पर, उसकी घृणा विशेष ॥ ७ ॥
महिने में दस बीस दिन, जो भारी रह जाय।
तोभी अपनी रायको, नहि देता बदलाय ॥ ८ ॥
बहु दरशी यों कह गये, ठेक सीखनो राह।
ठेकहु जो सीखत नही, पशु वत कहते ताह ॥ ९ ॥
श्रवण चक्षु मुख नासिका, सबही को इक ठौर।
कहवो सुनवो देखवो, चतुरन को कुछ और ॥ १० ॥

वैरागी ॥ ७८ ॥

संसारीमें बात दो, स्वारथ पर उपकार ।
बैरागी उपकार तजि, स्वारथ साधन हार ॥ १ ॥
अपना तो सब लगि रहा, छूटा क्या? उपकार ।
तजि उपकार बिराग ले, है यह कौन बिचार ॥ २ ॥
भली बात बैराग जो, सब पर होती फ़र्ज़ ।
सब वैसाही कर सकें, सृष्टी का हो हर्ज ॥ ३ ॥
ईश्वरकी मरज़ी नहीं, सृष्टी है दरकार ।
ऐसी राय बताय जो, वह बागी सरकार ॥ ४ ॥
बैरागी है असल वह, करता सब जग काम ।
डूबा वा भूला नहीं, जलहिं कमल ज्यों जाम ॥ ५ ॥
आर्य गणोंके नियम में, समय बन्यो है त्याग ।
इन्द्रिय सब जब शिथिल हो, आपहि हो बैराग ॥ ६ ॥

कर्म त्यागी ॥ ७९ ॥

पंडित भडुवा भांड़ यह, सन्यासी बैरागि ।
गायक मल्ल रु पादरी, होते कर्म नुरागि ॥ १ ॥
भारत में मिलती नहीं, धन रखनेकी जाय ।
काम काज तजि देत जो, उनकी होती आय ॥ २ ॥
ओर नहीं तो फौजका, लेते यह जो भार ।
अपने काम हि को करे, धरि औसर तल्वार ॥ ३ ॥
राज्यहु का उपकार हो, होय प्रजा उपकार ।
साधुन पूजा जो अहै, बढ़े और अधिकार ॥ ४ ॥

आलसी ॥ ८० ॥

चलिबे सें ठाढ़ो भलो, ठाढ़े बैठो जान ।
बैठेसे सोवो भलो, वाहूसे मरजान ॥ १ ॥
कूप गिरो इक आलसी, लोग कहैं कढ़ि आव ।
कहता भंभट क्यों करै, मरना है मरजाव ॥ २ ॥
तुलसी * बिरवा बागमें, सींचत हू कुम्हलाय ।
राम भरोसे जो रहैं, परवत पर हरियाय ॥ ३ ॥
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका * यों कहैं, सबके दाता राम ॥ ४ ॥
बहु उद्यमी घुर घुर मरहिं, आसा देत हरांय ।
शक्कर खोर घर बैठही, शक्कर खाने पाय ॥ ५ ॥
जैसी हो होतव्यता, तैस हि उपजे बुद्ध ।
होनहार हिरदै बसे, बिसर जाय सब सुद्ध ॥ ६ ॥
काम काज नहिं करत है, ऐसे जो हैं लोक ।
मानव रूपी हैं पशू, पर भोगत है शोक ॥ ७ ॥
कडुवा मुंह सों काम सुन, उज़र निकालत बीस ।
टालनकी युक्ती बहुत, हठ पर करते सीस ॥ ८ ॥
काम काजके समयमें, रहे दिल्लगी हाल ।
मट्टर उनको कहत हैं, कोड़नके डर चाल ॥ ९ ॥
ज्योतिष जूआ मंत्रसे, पारस अरु अकसीर ।
इन्ही लोभमें आलसी, खो, दे सरबस हीर ॥ १० ॥
अपच रोग अरु अम्ल भी, सांजर अरु बहुमूल ।
श्रम बिन रस संगृह रहे, संतर्पण को मूल ॥ ११ ॥

सुस्त ॥ ८१ ॥

तनमें जिसके रोग हो, जिसका धन हो नाश ।
जिसकी वस्तु मलीन है, आय न, व्ययही आश ॥ १ ॥
चाकर जिसके शोख़ हों, नहिं काहूसे मेल ।
झंझटसे डरते बहुत, हरिक काम में फेल ॥ २ ॥
यह लक्षण जिसमें घटे, सुस्त उसीका नाम ।
ज्योतिषका नहिं तंत्रका, बहु दरशीका काम ॥ ३ ॥
अपने काम हिं देर हो, होते अती विरक्त ।
पर कारज जब ही पड़े, बिठला कर करि त्यक्त ॥ ४ ॥

दत्तक पुत्र ॥ ८२ ॥

जग झंझटसे भीत हो, होते लोग फ़क़ीर ।
पुत्र बिना उद्धार नहिं, जग आश्रम अक़सीर ॥ १ ॥
वृद्ध होय जब शिथिल हों, दारा नहिं सन्तान ।
पुत हालत में सोचकर, दत्तक लीन्हीं मान ॥ २ ॥
अब दत्तक इस राह पर, हो नहिं भारत माह ।
धनी लोगही लेत हैं, नाम चलावन राह ॥ ३ ॥
बहुतोंने दत्तक लिया, कहं है किसका नाम ।
नाम रहत किस कामसे, जानत नहिं अंजाम ॥ ४ ॥
बिन कीरतिं नहिं जीवता, सदा किसीका नाम ।
मूरख क्या ही बूझते, दत्तक नामहिं काम ॥ ५ ॥
दत्तक अब बहु हो नहीं, एक जात उसवाल ।
घी चीनी बहु खाय कर, बंस हि होय ज़वाल ॥ ६ ॥

धनिक पुत्र ॥ ८३ ॥

बड़े पापसे होत है, बड़े धनी घर जन्म।
धनिघर बिरले देखते, महा पुरुषको कर्म ॥ १ ॥
धनमें कलिको बास है, कलिमें पाला जाहि।
मंत्री जेहि शैतान हो, कहां बड़प्पन ताहि ॥ २ ॥
कोइ धनी घर देखते, कहीं कहीं गुणवान।
सुना कि दत्तक है वही, अचल नियम भगवान ॥ ३ ॥
एक धनी घर महा पुरुष, अब तक है विदमान।
तपसिनकी तेहि तौर है, ज्ञान नहीं धनवान ॥ ४ ॥

बहुरूपा आलसी ॥ ८४ ॥

काम काजमें आलसी, साथिनसे अति पीछ।
मान उन्हें देता तभी, बहु रूपाको दीख ॥ १ ॥
दीखा पा बड़ हीनको, कोइ ले रूप फ़क़ीर।
काम काज करनारको, उलटा करे हक़ीर ॥ २ ॥
कोई साधू भक्त हो, रासायन तालाश।
पंच मकार हि भोग करि, तंत्रिक हो अनयास ॥ ३ ॥

पेटू ॥ ८५ ॥

ज्ञानी अपनी शक्ति भर, खाते हैं दिन तीन।
पेटू अपने पेट भर, भर लेते प्रति दीन ॥ १ ॥
ज्वानीमें हड्डी बने, भोजन अति दरकार।
इस कारणसे होत है, पेट अगड़ बिस्तार ॥ २ ॥

मन्द भयो हड्डी बढ़न, श्रम भी नहिं अतिघोर ।
पेट हि पूरो भर लियो, पचने को क्या तौर ॥ ३ ॥
सिहत राख भोजन करन, कठिन य, तपको काम ।
जिनसे यह तप नहि बने, व्रत करना ही आम ॥ ४ ॥
सामर्थ्य हुक्म व्रत भी नहीं, नहीं तपस्या योग ।
बल पूर्वक व्रत करनको, कर दें वैद्य नियोग ॥ ५ ॥
वैद्य हुक्म भी नहि सुने, आपहि रुचि उड़ि जाय ।
महां रोगसे ग्रस्त हो, अन्त जीव तक जाय ॥ ६ ॥
स्वार्थ लाभके लोभ से, ज्ञानी रुक रुकि खाय ।
थैली पेट हि बिन कसे, पेटू नहीं अघाय ॥ ७ ॥
पशू गढ़न्ते नर गढ़ो, भूले सींग रु पूंछ ।
तुलसी * ऐसे पुरुषकी, धिग दाढ़ी धिग मूंछ ॥ ८ ॥
पेटूको यह उचित है, जल पीये उठि भोर ।
सोना बेशी देर तक, चालहु चलना थोर ॥ ८ ॥

बुरे मां बाप ॥ ८६ ॥

डूब्यो हक मां बाप को, रह्यो पुत्र से आस ।
जो कुछ करनो उचित हो, नहीं करत जो खास ॥ १ ॥
स्रष्टाको जाल लगाय कर, गये पिता पर लोक ।
तेहि खोयो धनही नहीं, पितृ भक्ति हुइ लोक ॥ २ ॥
बुरो नमूनो बापने, दिखलायो जिहि पूत ।
पितु भक्ती वामें रहे, नहि वह पूत सपूत ॥ ३ ॥
भक्त बुरेको हो बुरो, यही नियम विध कौन ।
दे बचाय ताको घृणा, तेहि बिगड़न नहि दौन ॥ ४ ॥

बुरो कामको फल भलो, जो जन कहीं दिखाय ।
जगत नियम उल्टो करत, फल पापहि को पाय ॥ ५ ॥

नीच ॥ ८७ ॥

नीच हिये हुलसे रहें, गहें गेंद की पीत ।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊंची होत ॥ १ ॥
विना गरज बोलत नहीं, मिलतहि फेरे नैन ।
काम पड़े लटपट करे, वह भी कूड़ा सैन ॥ २ ॥
नीच जबहि बोले वचन, नम्र मधुर मुसकाय ।
प्रीत दिखावत वस्तु दे, भोले को ठग खाय ॥ ३ ॥
हाथ लगावत ठोढ़िमें, पृष्टहि हाथ लगाय ।
भोले बसही पर चतुर, अपना काम बनाय ॥ ४ ॥
बसे बुराई जासु तन, ताही को सन्मान ।
बुरो बुरो कहि देत हैं, खोटे ग्रह जप दान ॥ ५ ॥
नीच निचाई ना तजें, भलो नया को संग ।
पाथर डारे कीच में, उछलि बिगाड़े अंग ॥ ६ ॥
कैसे ओछे नरन ते, सरत बड़न को काम ।
मढ़ो दमामा जात है, कहि चूहनको चाम ॥ ७ ॥
भले भलाई ना तजें, तजे न निचाई नीच ।
नल बल जल ऊंचे चढ़े, अन्त नीच की नीच ॥ ८ ॥
ऊंख मूल सम नीच मन, मीठो आदि दिखाय ।
काम पड़त ज्यों जायगो, त्यों त्यों फीको पाय ॥ ९ ॥
कर लागन के समय में, धरे दरिद्री रूप ।
साके जमावन जबहि हो, हौं श्रीमन्त स्वरूप ॥ १० ॥

अपने अपने लाभ की, बोलत बात बनाय ।
वेश्या बरस घटावही, योगी वैस बढ़ाय ॥ ११ ॥
नीचहु स्वारथ के लिये, करते नहीं छियाव ।
चतुर बाप तब करत है, जूआ को बरताव ॥ १२ ॥
गहना श्रोर विवाह विन, दे अक्षर नहि पाठ ।
लाभ अगर दिल में जचें, तौ भी खुलि न गांठ ॥ १३ ॥
देना निश्चै होयगा, तौ देते अफसोस ।
देकी नही बिचार यह, करते जीय मसोस ॥ १४ ॥
देय न भोगे सूम जन, धन अपना भरें कोष ।
नीच खाय पर दे नही, करें सूम से रोष ॥ १५ ॥
मिथ्या हूं 'दे' नाम को, करते नही उचार ।
हंसी खेल में मागते, नहि देना स्वीकार ॥ १६ ॥
मांगन शब्दहि कान सुन, मूंह उतर हो भार ।
बड़ी गरज जाने तभी, मुंह विगाड़ स्वीकार ॥ १७ ॥
मरना भी स्वीकार हो, नालिश भी हो हार ।
कार बार में हो घटी, नहि खर्चा स्वीकार ॥ १८ ॥
वैद वकील रु कहा है, चाकरिया घरबार ।
लाभ सबहि त्यागे तभू, नहि देना उच्चार ॥ १९ ॥
बिना मरम्मत गिर पड़े, घर जेहि लागत लाख ।
तबहु दाम खरचे नही, स्वारथ का नहि साख ॥ २० ॥
बनिया अपने बाप को, ठगत न लावे बार ।
निज जननी को ठगत है, जहां लीन्ह औतार ॥ २१ ॥
नीच धनी की नोकरी, कभि करना नहि भूल ।
करना तो सवधान हो, छोड़ निचन्त न कूल ॥ २२ ॥

नीच धनीके काम में, लाख करी उपकार।
जबही वह निश्चन्त हो, तबही दे फटकार ॥ २३ ॥
चीन्हे जाने लोग को, बढ़ लिबास पोशाक।
देखहि खातिर अतिकरे, सादा देख न खाक ॥ २४ ॥
कैसो गुणी भि होय गो, बिना सिफारिश जाय।
आंख उठा देखत नही, देखत दूर दुराय ॥ २५ ॥
वही गुणी फिर बहुरिके, लेय सिफारिश जाय।
तनकहुं लज्जा हो नही, बहुतर आदर पाय ॥ २६ ॥
बिन मत पार न लागिहे, ओछे जनकी प्रीत।
अंबर डंबर भोर को, अरु बालू की भीत ॥ २७ ॥

बिगड़ैल ॥ ८८ ॥

लिख लोढ़ा पढ़ शील भय, शील न जाके गाय।
जाय उलट जब "साचरा" होहि राक्षसा जाय ॥ १ ॥
जानत नीत अनीत सब, जागतही गय सोय।
तेहि उपदेश जगायवो, तुलसी * उचित न होय ॥ २ ॥
बहते को बह जानदे, कबहु लगाव न ठौर।
समुझाया समझै नहीं, दो धक्को दे औरं ॥ ३ ॥
शुक्राचारज हठ करी, चाहत बलिहि बंचाय।
मद माती बलि सुनत नहि, आंख खोय पछताय ॥ ४ ॥
कौवा देखत रात नहि, घूघू सकत न दीन।
बिगड़े सकते देखने, नही रात नहि दीन ॥ ५ ॥
क्षुद्र नदी बरसात में, जब चलती उतराय।
पंडित तब रोकत नहीं, छिन में जाय उराय ॥ ६ ॥

पछतावा इस बात को, ओले तो गलि जाय ।
जौको खेत गवांय कर, ओले गलि क्या पाय ॥ ७ ॥
मूरख को समुझायवो, ज्ञान गांठ को जाय ।
पत्थर में को मारवो, चोखो तीर नसाय ॥ ८ ॥

निशाखोर ॥ ८९ ॥

निशे कहत हैं जो सभी, उन्हे कहें सब काल ।
सब से बढ़कर ग्राह्य जो, उसका नाम तमाल ॥ १ ॥
बड़ी खूबि इसकी यही, करे जोई व्यवहार ।
परम आलसी होत है, अंत होय बेकार ॥ २ ॥
भारत में इससे बची, एक जातही सिक्ख ।
काम करन को जात एक, सिक्खन, ही को लिक्ख ॥ ३ ॥
गांजा वक्का करत है, भांग करत है गूम ।
नैन वक्र करि देत है, अहीफेन से भूम ॥ ४ ॥
ताड़ी से चोरी बढ़े, बढ़े लूट अरु मार ।
देवी मदिरा को बड़ी, कठिनहि सब से कार ॥ ५ ॥
देवी खायो जज बहू, हाइ कोट के माह ।
राजा बाबू अन गनित, खायो बे परवाह ॥ ६ ॥
बलि बकरा के होत है, पहिले कंपन गात ।
लीवर पीके होय कर, जल्दहि बलि पड़ि जात ॥ ७ ॥
निशा खोर मानुस कही, आप बढ़ायो नाम ।
जो कोई मोहि बताय दे, धीरज होय गुलाम ॥ ८ ॥

मादकता कर लेय कर, राज बढ़ावे सोय ।
दस्यु चोर पर कर लगे, कौन पाप तब होय ॥ ९ ॥

विश्वासके अपात्र ॥ ९० ॥

नृप नारी नाहर नदी, नीच जाति हथियार ।
तुलशी * इनके पलटते, नहि लगती है बार ॥ १ ॥
वैरी बंधुवा बानिया, ज्वारी चोर लबार ।
व्यभिचारी रोगी हठी, नगर नारिको यार ॥ २ ॥
जाको धन धरती लई, ताहि न लीजे संग ।
जो संग राखेही बने, तौ करि राख अपंग ॥ ३ ॥
वाक्य बाण से जेहि बधो, कियो जाहि अपमान ।
तासे मेल न होयगो, जब लग घट में प्रान ॥ ४ ॥
भली बात पर रुचि नही, होय बुरीही चाह ।
नास्तिक वाको कहत है, त्यागो उसकी राह ॥ ५ ॥
नीचन से चलती नहीं, राज नीत यह रीत ।
अल्प लाभ की आस में, हो सकते हैं मीत ॥ ६ ॥
नीच लोग चोरी करे, मानत नहि यह रीत ।
छियो आंख अरु कानहूं, उनके हों विपरीत ॥ ७ ॥
विष्णु शरमा कहत हैं, 'लम्बकरन" की बात ।
चोटहु खाकर भक्ति से, मिल कर पायो घात ॥ ८ ॥

पापी ॥ ९१ ॥

दुखदायी जो होत है, हरी भरी नहि होय ।
जैसे तरुवर बेतको, फूले फले न कोय ॥ ९ ॥

महा पाप का फल यही, होय कुष्ट सब गात ।
जांचा बूझा तजरिबा, सांची मानो बात ॥ १० ॥
कहे विवेक जाही बुरा, जानि करे जो काम ।
ज्ञानी मनमें रहि सदा, अन्त करत बेराम ॥ ११ ॥
पापी के शत्रु जगत, कोइ न तारन हार ।
चाहत धक्के देन सब उसका कहां उबार ॥ १२ ॥
आतमा मन अरु जगत मन, जाहि गिरावन ठाढ़ ।
लोकहु मे परलोक में, पापी की नहि बाढ़ ॥ १३ ॥
बुद्धी उलटी जगत की, धनही सुख ले मान ।
पापी धनि के हाल में, गूढ़ तत्व को जान ॥ १४ ॥
पापी को धनि देख कर, करत धर्म अपमान ।
पर देखत सुखिया नहीं, जिन पायो है ज्ञान ॥ २२ ॥
अति पापी इक चोर है, पर दुख जेहि आनन्द ।
खेलहि में वा बात में, पाप गांठ ही बन्द ॥ २३ ॥

असत्य भाषी ॥ ९२ ॥

"अश्वत्थामा हते" कह्यो, धर्म राज यह जान ।
कृष्णहुके उपदेश पर, पाप रह्यो लपटान ॥ १ ॥
अतउ पाप छूटत नही, इतनो मिल्यो सुयोग ।
तोभी भोगन ही पड़ो, भयो नरक से योग ॥ २ ॥
धर्म राज नहि बोलते, जो यह मिथ्या बात ।
धर्म हार जय पाप हो, अधिकहि पाते घात ॥ ३ ॥
असत पापके भोग से, धर्म राजही बास ।
सत बोले जे पाप हो, होय धर्म्मको ह्रास ॥ ४ ॥

दुर्य्योधन की जीत ही, धर्मराज की हार।
जगमे सबही जानते, खोटहि जैजै कार ॥ ५ ॥
तार तम्य के ज्ञान से, सत्या सत ही ज्ञान ।
यही ज्ञानके ज्ञान बिन, मानुष पशू समान ॥ ६ ॥

नरकबासी ॥ ९३॥

मरने पर जेहि पुरुष की, लोक करत बदनाम ।
निश्चै वाको पड़ गयो, घोर नरक से काम ॥ १ ॥
कोन मनुष ने क्या किया, क्यों पाया बदनाम ।
नरक बास जो नहि चहे, तजि दे ऐसे काम ॥ २ ॥

कपटी ॥ ९४ ॥

कपटी मित्र न कीजिये, पेट पैठ बुध लेय ।
आगे राह बतायके, पीछे धोखा देय ॥ १ ॥
मनतो रहत मलीन अति, तन सुन्दर किहि भांत ।
जैसे कंचन को घड़ा, विष रस भरा जनात ॥ २ ॥
मुंह पर मीठा बोलना, पीछे काम बिगार ।
ऐसे कपटी मित्रसे, बचे रहो हर बार ॥ ३ ॥
मुंह पर मीठा बोलना, कभी न करना काम ।
थोड़े में कह देत हैं, कपटी उनका नाम ॥ ४ ॥

दुर्जन ॥ ९५ ॥

दुर्जन फिरते बनहिं बन, मोहि बाघ ले जाय ।
मेरो मास परकिके, साधुन धरि धरि खाय ॥ १ ॥

अवगुण की उमगें गहैं, गुण न गहे खल लोग ।
पिये रुधिर पय ना पिये, लगी पयोधर जोंक ॥ २ ॥
पंडित शुभ यात्रा दियो, सुनी परोसी दुष्ट ।
यात्रा नष्टहि करनको, धुन वाको भइ पुष्ट ॥ ३ ॥
पंडित से जा पूछता, यात्रा नष्ट उपाय ।
पंडित कह नकटा मिले, यात्रा नष्टहि जाय ॥ ४ ॥
नकटा खोजि मिल्यो नही, करूं अब कौन उपाय ।
अपनी नाकहि काटके, यात्रादि बिगड़ाय ॥ ५ ॥
धर्म शास्त्र पढ़ बेद पढ़, दुर्जन सुधरे नांहि ।
गो पय मीठी प्रकृतिते, प्रकृति प्रबल सब माहि ॥ ६ ॥
तृणहु उतारे जन गनत, कोटि मुहर उपकार ।
प्राण दियेहू दुष्ट जन, करत बैर व्यवहार ॥ ७ ॥

व्यभिचारी ॥ ९६ ॥

पर दारा नहि देखिये, निजहि नमूना सार ।
घरकी नारी नरन की, शिक्षा ही व्यभिचार ॥ १ ॥
धनडूबे फुरती हरे, महारोग लगिजाय ।
ज्ञान न उपजे देहमें रोग बंस पर जाय ॥ २ ॥
आसा और अपेक्षा, व्यभिचारिन के बीच ।
सारा देह निचोड़ कर, सकल धातु ले खीच ॥ ३ ॥

जुआरी ॥ ९७ ॥

जिसका मन नहि हाथमे, जुआ उसका हार ।
कभी जीत सुनते नही करते जो यह कार ॥ १ ॥

धर्म्मराज आदर्श हैं, जोऊ तक गय हार ।
राज पाट सब छोड़ कर, बन बन कियो बिहार ॥ २ ॥
धीरज जाके मनहि है, लोभ न जाको गाय ।
वह जूआ खेलत नही, खेलें तो जिति जाय ॥ ३ ॥
एक समय के खेलमे, निश्चैहो कभि जीत ।
प्रथम जीत जोई हुई, उठिकर गाओ गीति ॥ ४ ॥
या बिध जीतेन्द्रिय पुरुष, प्रति दिन जीतत जाय ।
जो कुछ पायो लेय कर, नित जीतहि उठिजाय ॥ ५ ॥
अपने हक से जो अधिक, लेने चाहत दाव ।
घरका भी कुछ देय कर, होत हार की नाव ॥ ६ ॥
बैपारहु में है यही, राखे मन्दा माल ।
थोड़ी तेजी तुष्ट नहि, खो देते सब डाल ॥ ७ ॥
प्रथम दरस लक्ष्मी जुहो, जो जन गहिले पैर ।
वामे डग मग जोकरे, फिर लक्ष्मी को बैर ॥ ८ ॥

चोर ॥ ६८ ॥

जगमे सब कोई चोर है, कोई बस्तु कोई काल ।
कोई सुबीता लेत हैं, कोई मारते माल ॥ १ ॥
अपनी चोरी करत है परकी करते कोई ।
कोई धरम के चोरहै बिरल बचा है जोई ॥ २ ॥
पकड़ गये वह चोरही, पचा गये सो सिद्ध ।
ज्ञानहि से साधू बचे, पावत आपहि निद्ध ॥ ३ ॥
चोर दंड क्यों होत है, पकड़ै गये इस काज ।
बचा सके नहि आप को, यही दोष है आज ॥ ४ ॥
दंडे जो दंडले नही दोषि करंत ही लाज ।
ताते कुटिल बिधान करि, दें संदेह फल राज ॥ ५ ॥
दोष गुप्त सब होत है, लें प्रत्यक्ष प्रमान ।
इस बिधान को अर्थ क्या ? दोषिन पर रहमान ॥ ६ ॥

निर्दोषी हूं पात हैं, अकसर दंड हि राज
करे प्रमाण निर्दोष नहि, दंड ही आलस काज, ॥ ७ ॥

निशाचर ॥ ९९॥

दिन निद्रा रत जागरन, करती आसुरि काम ।
साधु संग जग काम नहि, कह निशचर तेहि नाम ॥ १ ॥

निकम्मा ॥१००॥

कहत जगत में अतिबुरे, जो बैठे बेकार।
बड़कन कह गय है भले, बेकार हि बेगार ॥ १ ॥
बेकारन लच्छन यही, करें एक दिन काम।
पड़त बिमारहि चारदिन, अथवा करै अराम ॥ २ ॥
जहं बैठे छत देखते, टक बांधे रह जांय ।
घड़ियाँ योंही बीतता, सोचत काम गंवाय ॥ ३ ॥
जहां बैठे ऊंघा करे अंगड़ ले जम्हुवाइ ।
बातन में हों अति पटू, हुज्जत में कम नाई ॥ ४ ॥
ऐसे लोगन से कभी, करना नहि बिहवार।
संग असर जल्दहि लगे, नीयत खोटी सार ॥ ५ ॥
जहां बैठे वहां जम गये, नही उठन को नाम।
घरहि किवाला लाय कर, उठवानाही काम ॥ ६ ॥
पढ़ने वाले जो शिशू, नियमित करत न श्रम।
इम्तिहान पर श्रम बहू, पढ़न ताहि है भ्रम ॥ ७ ॥

पागल ॥ १०१ ॥

मतलब नहि जेहि काममें, भले बुरे जो होय।
बेमतलब दरकार बिन, काम हि पागल होय ॥

इति।

तीसरा अध्याय।

मनुष्योंके शारीरिक काम।

गुरू आज्ञा पालन ॥१०२॥

गुरू करैं सो देख मत गुरू कहैं कर सोय।
ज्ञाता जनके काम का अर्थ बहुत ही होय ॥ १ ॥
रास बिलासहु कृष्ण की मिथ्या पांडव राय।
राज भक्ति से त्यागता, भीषम जीका न्याय ॥ २ ॥
इन कर्मों के बीच में, बड़ी गूढ़ है बात।
इनके काम न देखिये, बातहि में करमात ॥ ३ ॥
जगके हेतू कहत हैं करते अपनी हेत।
तारतम्य के ज्ञान विन, कभी न पाओ चेत ॥ ४ ॥
संस्कार से मूढ़ही, सीखत देखहिकार।
पंडित त्यागि असारही, यूक्ति लेत है सार ॥ ५ ॥

ईश्वर बिश्वासीके लक्षण ॥ १०३ ॥

सब जीवन पर है दया, द्वेष न काहू संग।
कभी न करता पाप है, पाप ज्ञान जो अंग ॥ १ ॥

महा पुरुषोंके लक्षण ॥१०४॥

यती तपस्वी होय जो, भोगीहूं अति शेष।
जगत लिप्त हूं रहत है, जल बिच कमल विशेष ॥ १ ॥

जो कोइ जैसा बूझतो,　　समझाती तद्रूप ।
अवुन से भक्ती मिले,　　महापुरुष यह रूप ॥ २ ॥
उल्टे पुल्टे गुण सभी,　　तारतम्य को ज्ञान ।
देश काल अरु पात्र को　　वाध्य नियम नहि जान ॥ ३ ॥
संस्कार से लिप्त नहिं　　तत्व ज्ञान प्रकाश ।
ऊंची बातन मन सदा,　　लोभ भयहु नहि वास ॥ ४ ॥
काम काज में लिप्त बहु,　　फल पर भाव बिरांग ॥
लोक तत्व जानत सभी,　　ज्ञानहु हाथ चिराग ॥ ५ ॥
बूझत हो कर्तव्य हूं,　　साधत नहि हो देर ।
नियम विरुद्ध हि काजको　　समता साधत पेर ॥ ६ ॥

आचार धर्म्म ॥ १०५ ॥

फुरती धन अरु स्वास्थ को,　　नष्ट करे जो काम ।
आर्य्य गर्णों ने छानके,　　पाप धरी है नाम ॥ १ ॥
शुद्धी पर मन राखनो,　　मैले पर बहु घीन ।
आर्य्य रुचित यह धर्म है,　　कबहू करो न छीन ॥ २ ॥
मैले को जहं देखिये,　　स्पर्श करो नहि वाय ।
सांसहि अपने बंद करि,　　जल्दी लेहु विदाय ॥ ३ ॥
परम सुखी वह जगत में,　　जाने करने पाक ।
नल भीम हु अरु द्रौपदी　　देती इसकी साक ॥ ४ ॥
सिहत मिले अरु धन बचे,　　फुरती हो तन माह ।
ऐसी भोजन जो करे,　　सो ज्ञाता जगमाह ॥ ५ ॥
जगमे जितने काम हैं,　　सब का भोजन सार ।
बमि बिना अन्यान्यका,　　भोजन करें गंवार ॥ ६ ॥

भोजन में कितनहु करो खर्च हि लाख हजार।
बिना प्रेम पुट हो नही, फलही खान बजार ॥ ७ ॥
खाना पीना मत करो, कभी किसी के साथ।
मैले रोगी साथ पड़ि, मलना पड़े न हाथ ॥ ८ ॥
खान पान के नेमको, प्रति दिन साधो नाहि।
बरस नेमको ठीक कर, नहि आदत बिगड़ाहि ॥ ९ ॥
जो जो दिन को जो समय, जो दिन जो परकार।
समय प्रकारहु ठीक रख, साधो बरस मझार ॥ १० ॥
याविध साधन बरसको, रखतें हैं जो लोग।
तप साधन हो जात है, लांघि नेम न रोग ॥ ११ ॥
प्रति दिन भोजन को समय, आदत देय लगाय।
उसो समय पर चित पड़े, खाये वा नहि खाय ॥ १२ ॥
दिन को समय न ठीक हो, ठीक साल अरु मास।
भोजन करने बादही, पित्त पड़त है तास ॥ १३ ॥
कभी न व्याकुल होयगो, भोजन बिन वह लोग।
आर्य्य गणों के पुण्य से, भारतही यह भोग ॥ १४ ॥
जग में जितने काम है इन तीनों से जांच।
कामहि अपनो करत है, वही आर्य्य है सांच ॥ १५ ॥
यही तीन आधार पर, आर्य्यहि कियो बिचार।
सोच सोच कर देखलो, यही धर्म्म आचार ॥ १६ ॥
बुद्धी अरु बहुदर्शिता, हो गर कोई चीज।
निश्चय सारे जगत में, फैलेगी यह बीज ॥ १७ ॥
शहरहि रहते जोई जन, प्राते शुध नहि चीज।
दूध जलहि घी तेल हो, आंटा फिटकिरि बीज ॥ १८ ॥

हड्डी से चीनी सफा, बिना मेल नहि एक।
याते रोगहि शहर में, देखत है बहुतेक ॥ १९ ॥
जाहि धर्म को ज्ञानहो, अर्थ शास्त्र जेहि ज्ञान।
वैद्य शास्त्र को ज्ञान जेहि, सब घरही कर खान ॥२०॥

जप ॥१०६॥

जप उसको ही कहत हैं, जब लागी जो धून।
वही मंत्र जपता रहे, घड़ी पहर गिन गून ॥ १ ॥

मंत्र ॥१०७॥

मंत्री मतलब बोलदे, सकल अंग बुझिजाय।
साधन करिके सिद्धहो, वाक्य असर ही पाय ॥ १।
काम होत नहि देर हो, ऐसे बोले बैन।
शब्दों की तासीरसे, मोहे मन अरु जैन ॥ २ ॥
एक शब्दही मंत्र है, बैठे योग्य स्थान।
बिना महल वकते रहो, असर नही हो जान ॥ ३ ॥
मारन मोहन वसि करन, आकर्षण यह चार।
बिद्वेषन उच्चाटनहु, मंत्र फलहि आधार ॥ ४ ॥
योगबलहि एकाग्रता, तपसा सत आचार।
योगी चा हे सो करें, मंत्र बलहि व्यवहार ॥ ५ ॥
नीच लोकहू साध करि, सिद्ध करत है मंत्र।
टापुन में ले जात है, कुलिन फूंक करि मंत्र ॥ ६ ॥
सर्पादिक जो जीव हैं क्षुधित अती जो होय।
कारज साधत मंत्र पढ़ि, क्षूद्र जीव बस होय ॥ ७ ॥

एक, काम जा एकसी, सकत नही करलान ।
जा और हि जन करहि ले, ताहि मंत्र सिध जान ॥८॥
वक्ता और वकीलहूं, सिद्ध करत जब मंत्र ।
नामी तबही होत वह, फसत सकल तेहि यंत्र ॥ ९ ॥

तप ॥ १०८ ॥

मन मतंगही बस करे, ज्ञान—अंकुशके द्वार ।
कष्टहि अपना प्रियकरे, धीरज के तलवार ॥ १॥
जिन कामों में जब लगें, कैसहु कठिन हि होय ।
मनमारे बहु कष्ट कर, साधे तपसी सोय ॥ २ ॥
साधन अरु अभ्यासहूं, अरु रियाज है नाम ।
सिद्धी तबही होत है, जबही पूरा काम ॥ ३ ॥
देश जात अरु मनुष की, तपसे बढ़ती होय ।
उसका उलटा भोग है, छनही में सब खोय ॥ ४ ॥
साहस तपका है नहीं, जिस मनुष्य में यार ।
बढ़ना सम्भव है कहां उसका किसी प्रकार ॥ ५ ॥

उपदेश की रीति ॥१०९ ॥

गुरु जनकी उपदेश की, रीती है इक ओर ।
लड़कनकी उपदेश की, दूजो ही है तौर ॥ १ ॥
मित्रन के उपदेश की, रीतहि है कुछ और ।
अविवेकी करते नहीं, इन बातों पर गौर ॥ २ ॥

जो नहि जाने भेद यह, पूरा पाते खेद।
शब्दोंका भी भेद है, और सुरों का भेद ॥ ३ ॥
बच्चों के उपदेश की, जानत हैं सब रीत।
वही रीत गुरु जनहुसे, बरति हार नहि जीत ॥ ४ ॥
गुरु जनको उपदेश में, मान भरी हो बात।
भक्ती सुर भर पूर हो, मनहि अदब अरु गात ॥ ५ ॥
बातें काटन के लिये, तर्कहि होय जरूर।
'जीहां" कहकर 'मगर"से चले न होय गरूर ॥ ६ ॥
अपनी बातों का असर, होता जबही देख।
तैस हि ज़ोर बढ़ाय के, मतलब पर ही पेख ॥ ७ ॥
अपने स्वारथ की जहां तनक गन्ध हो बात।
उपदेश-उसको कहत नहि, जानोवह खुरफ़ात ॥ ८ ॥

वैध कर्म ॥ ११०॥

जिन कामो से सुख बढ़े, निन्दा हो न समाज।
वही धर्म सब वैध है, कहे देत है आज ॥ १ ॥

अवैध कर्म ॥ १११॥

भेदलाज भय शोक फल, देखो तुम जेहि काम।
दूषित है यह काम सब, इनका लो मत नाम ॥ १ ॥

पुण्य कर्म ॥ ११२॥

भेद लाज भय शोक विन, सुख उपजे जेहि काम
ऐसे कर्मन की सदा, पुण्य भयो है नाम ॥ १ ॥

पाप कर्म ॥ ११३ ॥

भेद लाज भय शोक फल, यह उपजत जेहि काम ।
मूल करमन को जग सदा, पाप धरत है नाम ॥ १ ॥

फलहीन कर्म ॥ ११४ ॥

दबते का ज्यों मान है, छमा हि दुर्बल सीय ।
क्रोधी को सुख वैसही, खल प्रीती ज्यों होय ॥ १ ॥

सदसद कर्म ॥ ११५ ॥

फल जाको उत्तम भयो, सुकरम वाही जान ।
मध्यम फल जाको भयो, कुकरमकी पहचान ॥ १ ॥
उत्तम मध्यम है कहा, सकै न तर्क बताय ।
वही राह इसकी बनी, जिधर महाजन जाय ॥ २ ॥

अतिथि सत्कार ॥ ११६ ॥

अतिथी जिसके द्वारसे, होकर जाय निरास ।
पुण्य सभी ले जायगो, देकर पाप-रु त्रास ॥ १ ॥
मिष्ट बचन आसन अरु चुल्लू भर हो पानि ।
इतना तो सब कर सकें, तब क्यों आना कानि ॥ २ ॥
चार मनुष जिन घरन में, खाते हैं भर पेट ।
मुष्टि दानसे क्या लगे, उनको कोई चपेट ॥ ३ ॥

भारत में पूजा अतिथ, मुष्टि दान की रीत ।
नहि अकाल भूखा मरे, क्यों सुकाल बिपरीत ॥ ४ ॥
अनचीन्हे की बास नहि, घरमें दीजे भूल ।
सिद्ध पक्व अन्नहु नहीं, नगद हि करी वसूल ॥ ५ ॥
प्रेम सहित संग जायके, धर्मसाल टिकवाव ।
ऊपर से जितना बने, खिदमद सबहि बजाव ॥ ६ ॥

श्राद्ध ॥ ११७ ॥

जो कुछ करते बापकी, देखत हैं सन्तान ।
लड़के वैसाही करे, इसमें नहिं कुछ आन ॥ १ ॥
मरे बाप के नाम से, करना ईश्वर श्राद्ध ।
बेटे यह जाने उन्हे, कैसी बाप अराद्ध ॥ २ ॥
छया महालय पार्वन, तीनो श्राद्ध विधान ।
यह किरिया जब तक चली, आर्य धर्म की मान ॥ ३ ॥
हरि दाता हरि भोक्ता, हरिसे अन्नहि पांय ।
बिप्र रूप हरि होय के, हरिही खांय खिलाय ॥ ४ ॥
मरे पिताकी भक्ति अरु, ईश्वर सर्वाधार ।
यही ज्ञान के देनकी, श्राद्ध हि कियो विचार ॥ ५ ॥

शवदाह ॥ ११८ ॥

हाथी जबही मरत है, गाड़त वाही ठाम ।
चूंचूं करत पड़ोसिया, डरत लेत नहि नाम ॥ १ ॥

नमक भरैं या जो करैं, हवा बिगड़ ही जाय।
मुर्दा गाड़त ही कभी, चूं चूं नहीं सुनाय ॥ २ ॥
हाथी को जो जारि दे, नहीं होत कोई बात।
थोड़ी लकड़ी के लिये, क्याही है उत्पात ॥ ३ ॥
भारत में बहु रोग को, आयुर्वेद न चीन्ह।
मुर्दा गाड़न रीत चलि, रोग विधाता दीन्ह ॥ ४ ॥

तीर्थ यात्रा ॥ ११९ ॥

मात पिता के मरन पर, घर लड़कों को सोप।
तीरथ करना उचित है, नहीं तो दोषारोप ॥ १ ॥
तीरथ में करना है यही, काशी गया प्रयाग।
बनते उतना पुण्य ही, और तीर्थ को याग ॥ २ ॥
तीरथ में जाकर करैं, तीरथ जल असनान।
दरसन करि मुनि गण गुणी, अरजें नूतन ज्ञान ॥ ३ ॥
जो जो गुण को लाभ हो, करना जग परकाश।
अन जानें गुण को करै, लाभ करन परयास ॥ ४ ॥
देशाटन करि जानना, कहां कौन है बात।
कौन गुणी बेपार क्या, देख पड़े अज्ञुबात ॥ ५ ॥
जो जो ज्ञानहि लाभ हो, करदे देश प्रकाश।
घरवालों के सहज हो, नहीं रहे तालाश ॥ ६ ॥

समुद्रयात्रा ॥ १२० ॥

जग में जो कुछ स्वार्थ है, सब कुछ भारत पाव।
समय कालके फेर से, लौकिक ज्ञान अभाव ॥ १ ॥

नई बात जो कुछ जहां, अब तक भई प्रकाश ।
लेख नियम के ज़ोरसे, वैठे होत विकाश ॥ २ ॥
आर्य्य नियम निष्फल कहत, गमन समुद्र हि· पार ।
तीन दीन भू दरस न हो, होय पुनः संस्कार ॥ ३ ॥
उचित न अपने स्वार्थ को, गमन समुद्र हि पार ।
परमहंस जो धर्म ले, उसको है आधार ॥ ४ ॥
अपना स्वारथ त्यागि के, एक हेतु उपकार ।
दृष्टि ज्ञान हो लाभ करि, कर दे देश प्रचार ॥ ५ ॥
धन भागहि नहि मिल सके, है जहं ज्ञान प्रकाश ।
केवल श्रम वा सूद को, अति श्रम अरू आयास ॥ ६ ॥
अन्धकार जिस देस में, है वहं धन आगार ।
भारत छोड़ युरोप में, तमश बोनि व्यय भार ॥ ७ ॥
जितनो व्यय लागत भ्रमन, गमन समुद्रहि पार ।
उतने में बहु जनन को, उद्यम होय अपार ॥ ८ ॥
अब तक बहुतर श्रेष्ट जन, गये हैं यूरप माँय ।
उनसे क्या फल देस को, कोऊ देहु बताय ॥ ९ ॥
बहुत बात थी लाभ की, सीख आते वह लोग ।
सके न करने कोइ कुछ, बड़ी वात यह शोग ॥ १० ॥
तीन दिवस दरशन नहीं, भूसो को जो पाय ।
श्रेष्ट गुणों को शक्ति सब, उस मानुष से जाय ॥ ११ ॥
भारत का मसला यही, झूठ मानते लोग ।
सच दिखलाया उनहि ने, लौट आय जो लोग ॥ १२ ॥
आपहि लाये साथ है, नये नये बहु रोग ।
अरु समाज रोगी कियो, चाल चलन से शोग ॥ १३ ॥

कैसहु भद्र दरिद्र हो, सुख पावा संसार ।
व्यय अभाव संग लायकर, कियो दुखी परिवार ॥ १४ ॥

प्रायश्चित ॥ १२१ ॥

सूता मुख जो भोर की, देख पड़े लाचार ।
अथवा दिनके बीच में, हो जावे दो चार ॥ १ ॥
आलसि अरु बेकार की, आवे जो जमुवाई ।
अंगड़ा लेते औंघते, पड़ जावे दिखलाई ॥ २ ॥
चुटकी देहु बजाय अरु, राम राम कहि देहु ।
छी छी कर घृन्ना करो, संगत फल मत लेहु ॥ ३ ॥
और अगर जो बन पड़े, करहु एक उपवास ।
यथा साध्य करहू यतन, कभी न हो सहवास ॥ ४ ॥

भाषा ॥ १२२ ॥

असली भाषा जगत की, एक भाव बरताय ।
उच्चारण सुर एकही, व्यंजन ही फरकाय ॥ १ ॥
हां, यस, अस्त,न, नो,नहीं, उच्चारण सुर एक ।
उच्चारण सुर भावकी, सब भाषा की एक ॥ २ ॥
असली भाषा भावकी, सुरकी बीच प्रकास ।
भावाक्षर उल्टे भि हों, होय न वह विश्वास ॥ ३ ॥
काम करन इच्छा रहे, मुख से जो कह नाहि ।
सुरसे बूझे भाव मन, ज्ञाता बूझत ह्वांहि ॥ ४ ॥
लोभी पंडित कहें कथा, करे शास्त्र को अर्थ ।
ज्ञाता कानहि से सुने, दो पैसे दो अर्थ ॥ ५ ॥

उच्चारण ॥ १२३ ॥

ह्रस्व दीर्घ व्यंजन सस्वर, उच्चारण अस्थान ।
सभ्य जात भाषाहि मैं, इसका व्यौरा जान ॥ १ ॥
इन भेदौं पर ध्यान धरि, साफ़ साफ़ उच्चार ।
स्वर व्यंजन दीरघ ह्रसु, इनकी खूब विचार ॥ २ ॥
धीरे धीरे बांच कर, करौ खूब अभ्यास ।
अति द्रुत बांचत हू रहें, ह्रसु दीर्घ परकास ॥ ३ ॥

लिपिनियम ॥ १२४ ॥

जिस अचर की नाम जो, वही होय उच्चार ।
अचर परिचय होत ही, पढ़ना ही नहि भार ॥ १ ॥
तैतिस अच्छर चीन्ह ते, पोथी पढ़े पुरान ।
देवाचर ताकी कहैं, देव नागरी जान ॥ २ ॥
सभ्य लिपी में भेद हो, ह्रसु दीर्घ स्वर हल ।
जिसमें ही यह भेद नहि, लिपि वह अन पढ़ दल ॥ ३ ॥

शिचा ॥ १२५ ॥

देख सुनी छू समझ ले, चीख सूंघ ले बूझ ।
साधन करि धारन करें, शिचा की यह सूझ ॥ १ ॥

बाल शिचा ॥ १२६ ॥

नाम मात्र कहि सीख है, निश्चय यह तू जान ।
दृष्टि सीखही सीख है, याही विधि परमान ॥ १ ॥

बालकहि जो शिक्षा चहो, निजकर वाहि दिखाव ।
तू जैसी करनी करे, बालक वही सुभाव ॥ २ ॥
सदा बोलना प्रीत सुख, दंड अप्रीत हि भाव ।
डांट मार वा क्रोध को, करो न कभि बरताव ॥ ३ ॥
खोल हिये त्युरी बदल, कहना नहि कोई बात ।
सुनी बात लेता नहीं, तौर देख सिखि जात ॥ ४ ॥
डांट मार जो करत हैं, शिक्षा कारन जान ।
प्रीत नहीं, घृन्ना बढ़त, गुण नहि लेत निदान ॥ ५ ॥
लड़कन से मत प्रीत कर, बाप बुरा जो होय ।
घृन्ना से गुण ले नहीं, प्रीत बुरो गुण होय ॥ ६ ॥
धीरज और उदारता, दोही शिक्षा मूल ।
मात पिता जो देय यह, मिटत सकल भव सूल ॥ ७ ॥
प्रति दिन इक इक काम को, करवाओ अभ्यास ।
जितनी देरी जो लगे, धीरज होय प्रकास ॥ ८ ॥
फल आदिक जो वस्तु हो, संग जा देहु दिलाय ।
नीको चुनि कृष्णार्पण, करि देहु बटवाय ॥ ९ ॥
अक्षर को परिचय न हो, सब कंठस्थ कराव ।
स्मरण शक्ति प्रज्ञा बढ़े, झीनी बात बुझाव ॥ १० ॥
अंक बोध जितनी बने, और बने गण पाठ ।
हरि नाम हि जितनी बने, नहि तो एक सौ आठ ॥ ११ ॥
अंक कहत विज्ञान हूं, कहत कठोरहि पाठ ।
साहित्यहि सब जानते, पाठ विलासहि गांठ ॥ १२ ॥
आदि कठोरहि सीख दे, अंक कहत विज्ञान ।
जब दिमाग अति पुष्ट हो, साहित्यहि तब ठान ॥ १३ ॥

पढ़िजहि शिक्षा मानसिक, मूर्ख बंस सन्तान ।
उचित नहीं पंडित घरहि, मन्दाग्नी हि निदान ॥ १४ ॥
या विध जिन शिक्षा दई, बड़भागी मा बाप ।
सो सो कुल दुहु औरकों, वह तारेंगे आप ॥ १५ ॥

शिक्षा प्रणाली ॥ १२७ ॥

बालकपन ब्रह्मचर्य्य ले, करना गुरु घर बास ।
तजि विलास ले भार सब, अपना अपनी पास ॥ १ ॥
धनि दरिद्र सम दोउ हो, करना गुरु घर वास ।
गुरु सेवा निज कर्म हूं, तप अध्ययन हु खास ॥ २ ॥
बन अरु पर्वत में सदा, बनकी पूरी ज्ञान ।
पशु पालन कृषि तत्व भी, रहता नहीं अजान ॥ ३ ।
यज्ञ निमंत्रण गुरु सहित, नगर रु राज द्वार ।
विद्या सद्‌गुण काम भी, शिक्षा जग संसार ॥ ४ ॥
बालक पनकी सीख, वही जनम भर काम दे ।
नहीं तो कष्ट रु भीख, पंडित हो वा मौलवी ॥ ५ ॥
विद्या पढ़ि जानत नहीं, विद्या जब संसार ।
क, ख, ग, पढ़नो कठिन, आन पड़ी जब भार ॥ ६ ॥
शिक्षा राज अफीम ज्यों, पर चानो लगतार ।
आश्रय दूजो नहीं रहे, एकहि राज द्वार ॥ ७ ॥
पंडित होना नित उचित, जग विद्या नहि खोय ।
पहिले अथवा साथ हो, हो तो उत्तम होय ॥ ८ ॥

सब पंडित नहि हो सके, विद्या जग सब ज्ञान।
सावधान होना सदा, जग विद्याहि प्रधान॥ ८॥

वेद शिक्षा॥ १२८॥

आर्य कुलहि जेहि जन्म है, शिक्षा वेद हि ताह।
बहु नहि तो अध्याय दो, दाक्षिणात्य की राह॥ १॥
इतने होसि हो गयो, ब्रह्म तेज तेहि पान।
स्वर व्यंजन दीरघ हरसु, वर्णोच्चारण ज्ञान॥ २॥
नित्य स्नान—अरु कर्म हूं अरु उच्चारण ज्ञान।
इतने पर हो जायंगे, आर्य्य कुलहि पहचान॥ ३॥

भाषाशिक्षा॥ १२९॥

अपनी भाषा सीख कर, पक्काहो जब ख़्याल।
दूजी भाषा पढ़नकी, शिक्षा दो तब बाल॥ १॥
अपनी रीति हु नीत सब, अपना ही रुजगार।
जान लेन को यत्न कर, बना रहे घरबार॥ २॥
पहली भाषा सीख जो, बालक पनके माह।
वैसाही तब धर्म्म हो, उसी जात की राह॥ ३॥
कच्चे बासन पर पड़े, जोड़ भांत की दाग।
पक्के पर क़ायम रहे, बूझो तुम यह लाग॥ ४॥
अपनी भाषा पक्व करि, भाषा अन्यहु बूझ।
बात कामकी ग्रहण कर, छोड़ निरर्थक सूझ॥ ५॥

पर भाषामें पक्वता, निज भाषा हो खाम ।
गुण यह गनती है नहीं, बरन होय बदनाम ॥ ६ ॥
म्लेच्छादिक भाषा कभी, प्रथम न कीजे पाठ ।
धर्मराज अरु बिदुर सा, दोष नहीं फिर गांठ ॥ ७ ॥

सर्वसाधारण शिक्षा ॥ १२० ॥

भारतमें सब कहत हैं, ब्राह्मण जीवन सार ।
ब्राह्मण कायथ जीवका, लिखन पढ़न आधार ॥ १ ॥
लिख पढ़ जो तय्यार अब, करत वही रुज़गार ।
लिखा पढ़ी की जीविका, दिन दिन होत असार ॥ २ ॥
याही ते मौयम बन्यो, लिखा पढ़ीको काम ।
चुनी चुनी जातोंहिमें, नहि फैले वह आम ॥ ३ ॥
अब फैली वह आम हो, फल हू दियो दिखाय ।
अब देरी कुछ है नहीं, बुरी दशा नगिचाय ॥ ४ ॥
थोड़े दिन औरो चले, शिक्षा का यह कार ।
खितिहर भी हो डाक्टर, वकील और मुख्तार ॥ ५ ॥
फिर गोरे बिनको करे, यहां खेत को कार ।
कुली नील अरु चाह तजि, चाकर तहसिलदार ॥ ६ ॥
सीख लिखा पढ़ि शिल्पिसब, चाकरि मे लगिजाय ।
यूरप से बनि थालहू, आवे हौसीं माय ॥ ७ ॥
शिल्पी पंडित होय के भोगे शिल्प विदेश ।
परदेशी शिल्पी सुखी, इच्छा यही नरेश ॥ ८ ॥
परदेसी नेता भयो, जानत अपनिहि रीत ।

साधारन विद्या यहां, कहते लोग कुरीत ॥ ९ ॥
विद्या बरतत है जहां, शिल्पादिक के माह ।
साधारण शिक्षा वहां, होती बहुत हि चाह ॥ १० ॥
बहुदर्शी जानत रहे, पंडित शिल्पी होय ।
देश शिल्पकी उन्नती, कारन नाश हि जोय ॥ ११ ॥
शिल्प क्रिया दूषित कियो, पंडित करत न काम ।
नीचहु पंडित होय कर, शिल्प करत बदनाम ॥ १२ ॥
परदेशी शिल्पी सुखी, जबही तक ऐयाश ।
धन क्षय जबही जायगी, तब उनका भी नाश १३ ॥
जैसे उठी बिहार में मदिरा की दूकान ।
बिगडैलों के हाथ में पैसा रहा न जान । ॥ १४ ॥
कुछ तो सुधरत लोक है, बिगड़त चले अमीर ।
थोड़े दिनकी देर है, शिल्पी की ही पीर ॥ १५ ॥
चावल ही जुमता नही, भर पेट हि दुइशाम ।
झाड़ फनूस हि लेनको, कौन लेय गो नाम ॥ १६ ॥

स्कूल कैसा होना चाहिये ॥ १३१ ॥

पंडित का दरकार है, हरिक जिले दो चार ।
पंडित होनेके लिये, कितना है उपचार ॥ १ ॥
लाखों हैं इस्कूल अरु, कालिज कैक हजार ।
बिधना का जो नियम है, पंडित हों दो चार ॥ २ ॥
लाखों ही इस्कूलिया, इधर नहीं वहि पार ।
ज्यानी सकल गंवाय के, हो बैठे बेकार ॥ ३ ॥
घरकी विद्या नहि बनी, बनी न जग संसार
क़िस्सा कहनी पाठइक, इक निन्दा सरकार ॥ ४ ॥

इल्म पढ़ा सरकार ने, किया प्रजा ऐयास ।
खरचा नहि पूरे जभी, होय अभक्षी दास ॥ ५ ॥
जिसका फल दोचारही, उसका यह उपचार।
जग बिद्या जगके लिये, समझे नहि दरकार ॥ ६ ॥
विद्या सीखन के लिये लाखो लाख उपाय।
जग बिद्या सिखन चले, कहिं घुसने नहि पाय ॥ ७ ॥
जो कोई निज का काम करि, पूंजी देय लगाय।
तबही शिक्षा एक की, बड़े भागसे पाय ॥ ८ ॥
ऐसा होना उचित है, इस्कूलों के माय ।
काम काज की बात सब, चलता काम बताय ॥ ९ ॥
लेवा बेची होय भी, बहि खाते का बूझ ।
परख जिनिस की होय अरु, सकल बस्तु कीसूझ ॥ १० ॥
मोटा मोटा काम सब, बढ़ी राज लोहार।
घर बांधन की रीत सब, और दरो दीवार ॥ ११ ॥
बाग लगाने की बिधी, खेती का सब कार ।
पशु पालन की रीत सब, पशु चिकित्सा सार ॥ १२ ॥
मनुस रोग की हाल भी, औ उसका उपचार ।
कुश्ती कसरत भी रहे, गतका फरि का कार॥ १३ ॥
थोड़ी थोड़ी लिखा पढ़ी, रहे जो उसके साथ ।
जिसकी रुचि जामे भई, सोपो उसके हाथ ॥ १४ ॥
पीछे पंडित होयजो, चाहे हो घरबारि।
जोड़ दशा जिसकी घटे कभी न हो बेकारि ॥ १५ ॥
अंगरेज़ी सीखन चहे, इस्कूलहि के माय ।
लिटरेचर ही सीखना, अंगरेज़ी मे जाय ॥ १६ ॥

और ब्रैंच भाषा छिमें, संज्ञा नाम सिवाय ।
टिकनीकलजो टर्म हैं, दोनों भाषा आय ॥ १७ ॥
पुस्तक में बिज्ञान के, सार रहे सब बात ।
लेक्चर से समझाय दे, करतब अरु करमात॥ १८ ॥
याही बिध सब पाठ हो, अन्तहि तक लगतार ।
एक साल इन्ट्रेंसका, अंगरेजीहि सुधार ॥ १९ ॥
सहज पाठ सब होयगो, ज्ञानहु ही तत्पर ।
भाषा दोउ पक्की बने, होय इल्म का घर ॥ २० ॥
पुस्तक काहि किलासही, छात न होय किलास ।
गदह घोड़ की जोड़नहि, प्रकति चले अनयास ॥ २१ ॥
पास परिच्छा रीत यह, अति कदर्य्य है चाल ।
मतलब पासहि लाभ पर, नही इल्म के हाल ॥ २२ ॥
पुस्तक रचि परकाश हो, अथवा दे व्याख्यान ।
करके काम दिखायदे, यही पास है ज्ञान ॥ २३ ॥
पास रीत से हर्ज है, नही योग्यता सार ।
पल्लवग्राही पासही, कभी योग्य की हार ॥ २४ ॥
एक बातकी भूलसे, जाय योग्यता दूर ।
कभी न्याय यह हो नहीं, जूआ है मजबूर ॥ २५ ॥
चले रीत इस्कूल नहि घरमें करि तब पाठ ।
स्कूल मास्टर होय कर, रचहु परिच्छा घाट ॥ २६ ॥
बच्चो को इस्कूल में, दस लड़कों के संग ।
पक्का भय बिन छोड़ना, नही नीत का अंग ॥ २७ ॥

शिल्प शिक्षा ॥ १३१ ॥

शिल्पहि शिक्षा का कभी, भारत नहि दरकार।
बिकरी जिसकी होत है आपहि हो तइयार ॥ १ ॥
जिसकी बिकरी होत है, अती कठिन भी चीज।
भारत मे तइयार हो, अन्यत्र हि नहि बीज ॥ २ ॥
जोड़ नमूना देवगे, वही वस्तु हो त्यार।
जो होती तइयार नहि, उसका नहि दरकार ॥ ३ ॥
हरमनियम का काम नहि, नही पियानो काम।
नही झाड़ फानूस की, ऐश यहा बदनाम ॥ ४ ॥
धर्म बिरुद्ध हि काम है, बढ़े विलसिता देश।
धन अपचय जेहि से बने, करना नहि वह ऐश ॥ ५ ॥
शिल्प काजहू नीचही, गनती भारत माहि।
नीचहु शिक्षा पायकर, शिल्प काज कर नाहि ॥ ५ ॥
शिल्पुन्नतिही चाहते, जोड़ हितैषी लोग ॥
खरीदार हो खोजना, शिक्षा नहि उपयोग ॥ ७ ॥
अथवा शिक्षा होय तो, जो शिल्पीकी जात।
अन्य जाति को नहि उचित, पर रोज़ी में घात ॥ ८ ॥
नियमित कामहिसे बने, सकल देश उपकार।
अति श्रय जबही होयगी, लाभ सकल हो द्वार ॥ ९ ॥

मनो योग शिक्षा ॥ १३३ ॥

जल पूरन प्याला लिये, फिरो तलहथी योग
गिरै न जल इक बूंद हूं, मनो योग संयोग । ॥ १ ॥
बहु रकमों को जोड़ कर, बार बार दो ठीक ।
जमत जमत जब मन जमे, मनो योग यह रीत ॥ २ ॥
मनकी चंचलता मिटे, बन्दर पन हो दूर ।
मनो योगता सीख कर, मानुष बन जा पूर ॥ ३ ॥

उद्यम और कार्य शिक्षा ॥ १३४ ॥

प्रतिछन सोचो बात यह, कौन करें हम काम ।
जोई काम हो ध्यानमें, चुन लो उसका नाम ॥ १ ॥
सबसे बेशी लाभ को, अथवा हो कम हान ।
या बिध काम हि चूननो, बुद्धिमानको जान ॥ २ ॥
जो कुछ देखो बस्तु सब, धरो रखो घर आज ।
अती जतनकी जगहमें, धरो उठा कर साज ॥ ३ ॥
गो सेवा घड़ि एक भी, करना अपने हाथ ।
बछरनके संग खेलना, दौड़ धूप भी साथ ॥ ४ ॥
घरकी चीज़ ख़रीदना, प्रति दिन निजही हाथ ।
जांच बूझ कर क्रय करो, लड़कोंको रख साथ ॥ ५ ॥
बाहरसे आ हाथ धो, और धोउ भी पैर ।
कपड़ा घरको रख जुदो, अरु बाहरको सैर ॥ ६ ॥
परस करो कोई बस्तुको, धो डालो तब हाथ ।

उसी हाथसे वस्तु अरु, छूओ गात न माथ ॥ ७ ॥
भोजनमें व्यवहार कर, ऊन, पट्टकी अस्त्र ।
केश आकर्षण सूतको, संघातिक है अस्त्र ॥ ८ ॥
धन बाचे फुरती बढ़े, काया रहे निरोग ।
पड़े ज्ञान बातें नई, न हो ऐश की रोग ॥ ९ ॥
ऐसे फल जामें मिले, करो खोज वह काम ।
सुख संपत सब होयगी, भज लो सीता राम ॥ १० ॥
जितना तक बन पड़ सके, झंझट नियम बढ़ाव ।
यथा साध्य बरतो सभी, हो मजबूर मिटाव ॥ ११ ॥
लंघन नियम हि होय जब, बहुतर मानहु ग्लानि ।
यथा साध्य प्राश्चित करो, फेर नियम में आनि ॥ १२ ॥

उदारता शिक्षा ॥ १३५ ॥

भोजनकी कोई वस्तु हू, जब आवे घर माय ।
नीको चुनि कृष्णार्पण, करि देहू बटवाय ॥ १ ॥
देशहितैषी गणनको, स्वारथ करें न काम ।
दुबले दुखिया गणहु को, खरच सके नहि दाम ॥ २ ॥
दुख सुखमें सब जननके, और पड़े जब भीड़ ।
धन न होय तो देहसे, हर लो जाकर पीड़ ॥ ३ ॥
गो गुहार हू सुनत ही, अरु बालक गोहार ।
तिय गुहार सुन पात ही, दौड़ो छोड़ अहार ॥ ४ ॥
आग लगनकी खबर हूं, आवत ही परमान ।
पैसे थोड़े साथ ले, जा दौड़े बेजान ॥ ५ ॥

गुल गुपार बिरथा न कर, टक टक करमत देख ।
दस जनको धर पकड़ि कर, आगल बगल धर पेख ॥ ६ ॥
तोड़ ताड़ कर फेंक दे, आग न बढ़ने पाय ।
लोग बटोरहि झपट कर, जलसे देय बझाय ॥ ७ ॥
जल डूबत देखो कभू, काढ़ू को तत्काल ।
बांध कमर कूदहि पड़ो, धरी दूर करि काल ॥ ८ ॥
इतना अरु हुशियार हो, अलग बलग धर केश ।
डूबा धरत अधीर हो, दोउ न हो कछि शेष ॥ ९ ॥
छप्पड़ जिसकी चढ़त है, पहरोपा दिन धान ।
बैल हलाहु जन लेय कर, मदद करो मन्धान ॥ १० ॥
अतिथी आवे गेह में, काम काज सब छोड़ ।
अरभर हो सेवा निरत, प्रेम भक्ति दो जोड़ ॥ ११ ॥
भय बिह्वल आकुल कोई, आश्रय लेने जाय ।
शरण होहु उसके सदा, दो भय लोभ दुराय ॥ १२ ॥
धनिन करत धन दानजो, यह साधारण काम ।
श्रमसे पर उपकार को, कह उदारता नाम ॥ १३ ॥

चतुराई शिक्षा ॥ १३६ ॥

देशाटन जिसने कियो, पंडितसे हो साथ ।
वेश्या गृहको भेद सब, राज काज हो हाथ ॥ १ ॥
शास्त्र अनेक हि ज्ञान हो, राज नीतको ज्ञान ।
होय व्यवस्था ज्ञान हूं, जमा खर्च हू जान ॥ २ ॥

कार बार जानत सभी, रीत रसम पहचान ।
इतनी बातें जान ले, चतुर उसीको मान ॥ ३ ॥

लेट कर पुस्तक पाठ ॥ १३७ ॥

सूते लेटे पढ़त है, ऐसा जाको पाठ ।
लोक दिखावन पाठ वह, देकर राखो गांठ ॥ १ ॥
सोते सोते होत है, किस्सा ही इक पाठ ।
और नहीं कुछ हो सके, निद्रा ही हो साठ ॥ २ ॥

भावार्थ ग्रहण ॥ १३८ ॥

समझनको जब काम हो, भेद भावको त्याग ।
यथा साध्य मिल जानको, पूरा यतन हि लाग ॥ १ ॥
जब ही बात बिरोधकी, आजावे तोहि पास ।
भेद त्याग मिल जानकी, युक्तीकी तालास ॥ २ ॥
प्रथम यही बिश्वास कर, इसमें नहि कुछ भेद ।
भेद दिखाई देत जो, सो बूझनको भेद ॥ ३ ॥
मनसे युक्ती जोड़ कर, बहुबिध करहु तलाश ।
करते करते अन्तको, सत्य हि होय प्रकाश ॥ ४ ॥
शबदन पर तकिया न कर, भावों पर धर ख्याल ।
सत्य न्यायके आसरे, लेना अर्थ निकाल ॥ ५ ॥
सौ सियान मत एक हीं, सबहि एक हीं राय ।
मत भेदहि कारण कहे, तत्व ज्ञान नहि पाय ॥ ६ ॥
जाननकारी है असल, बृथा खोउ नहि काल ।
देख सुनो सो बूझ लो, ज्ञानी की यहि हाल ॥ ७ ॥

बड़े छोट सब हैं गुरू, घृणा करो नहि काहि ।
एक बात तुमसे अधिक, रहती है सब माहि ॥ ८ ॥
काम करो जब खोल लो, आंख हृदय यह दोय ।
या बिध जिन शिक्षा लई, अर्थ करेंगे सोय ॥ ९ ॥
आंख खोल कर देखना, हृदय खोल कर बूझ ।
धीरज* या संसारमें, उनही को सब सूझ ॥ १० ॥

शब्दार्थ ग्रहण ॥ १३९ ॥

दोय पथिक मिल संग हो, ठहरे इक मैदान ।
रोटी करि देखन कही, आप गयो पैखान ॥ १ ॥
कुक्कुर रोटी फेंक खा, कर दोनों बरबाद ।
मूढ़ पथिक देखत रह्यो, नहीं कियो धड़ाद ॥ २ ॥
पहिलो पथिक हि आय के, खीझी अरु झुंझलान ।
मूढ़ कहे देखन कह्यो, नहि तुम कहे बचान ॥ ३ ॥
शब्दारथको लेत है, नहीं बिचारे भाव ।
भावारथमें ध्यान नहि, मूढ़ उन्हीं का नाव ॥ ७ ॥

मनका भाव बूझना ॥ १४० ॥

चिहरा पंडित कहत हैं, ऐना है मन भाव ।
जब जो भावहि मन उठे, मुखड़हि होय दिखाव ॥ १ ॥
और बहुत कुछ लख पड़े, बूझत बोलहि सूर ।
बूझनको साधन करि, जान सके बिन गूर ॥ २ ॥

प्रति दिन जाको देखिये, लखिये ताकी भाव।
कुछ दिन साधन होय जो, शक्तिहि प्रबल बनाव ॥ ३ ॥
किस कारण यह शक्ति हो, कहना गुरु तर जान।
साधन होसे ज्ञान हो, कारण जो अनजान ॥ ४ ॥
साधारन इस ज्ञानको, सीखत है कोउ नाह।
पंडा तीर्थ दलाल हूं, पूलिसकी है चाह ॥ ५ ॥
तपी बशी जो होत है, स्वारथ जाहि न नीच।
यह सिद्धी वह पात है, सिद्धी तपकी बीच ॥ ६ ॥

संतरन शिक्षा ॥ १४१ ॥

मात पिताकी उचित है, लड़कन दे सिखलाय।
लड़काईकी पैर वी, आगे होत सहाय ॥ १ ॥
पैरन शिक्षा जबहि हो, करहु यही अभ्यास।
जाते जीवहि डूबते, तार सकी अनयास ॥ २ ॥

प्रतिज्ञा ॥ १४२ ॥

प्राण पुत्र दोउ बड़े, चारो युग परमान।
सो दशरथ दोउ तज्यो, बचन न दीन्हो जान ॥ १ ॥
जांच बूझ अरु सोचकर, करते हैं जोकार।
ऐसहि जन पूरा करें, करते जो इक़रार ॥ २ ॥

बोलचाल ॥ १४३ ॥

जिन बातोंसे खुश न हो, बिगड़े जिस्से काम ।
चतुरजन वाको कहत हैं, गदह बोलही नाम ॥ १ ॥
सहज राम बातें भली, जो करि आवे दाव ।
बातें हाथी पाइयां, बातें हाथी पाव ॥ २ ॥
नीचनको नहि सींग है, ऊंच हाथ नहि फूल ।
बोलचालसे जान हो, ऊंच जात अरु कूल ॥ ४ ॥

मिष्ट भाषण ॥ १४४ ॥

मीठी बोली बोलना, सुख उपजे चहुं ओर ।
वसी करन यह मंत्र है, तजि दे बचन कठोर ॥ १ ॥
कागा काको देत हैं, कोयल काको लेत ।
मीठे बचन सुनाय के, जग अपनो करलेत ॥ २ ॥
मीठी बोली बोलके, सूआ पावत मान ।
छोट बड़े सबही करें, उसकी सेवा जान ॥ ३ ॥
जग चाहे जो वस करन, बोले मीठे बोल ।
जस पावे अरु सुख लहे, जो है सदा अमोल ॥ ४॥

पछतावा ॥ १४५ ॥

दुखमें सब उद्यम करें, सुख में करे न कोय ।
सुख में जो उद्यम करें, दुख काहे को होय ॥ १ ॥
वेले पर सोए रहें, गप शप में मन देत ।
अब पछताये होत क्या, चिड़िया चुन गइ खेत ॥ २ ॥

सम्मन*डरै तो क्यों करै, करकै क्यों पछताय ।
बोये पेड़ बबूल को, आम कहा से खाय ॥ ३ ॥
तुलशी*काया खेत है, मनसा कहत किसान ।
पाप पुण्य दो बीज है, बय सो लवे निदान ॥ ४ ॥

मुंह धोना ॥ १४६ ॥

उठि सवेर ही मूंह धो, तव करना कुछ काम ।
मंजन दतवन जोड़ हो, कोयला चूरहु आम ॥ १ ॥
परिमित भोजन जाहि नहि, जीभ्भी बलगम काढ़ ।
आदत से उत्पन्न हो, प्रति दिन बलगम बाढ़ ॥२ ॥
बेतमीज़ भोजन करै, हो बलगम भरपूर ।
जिभ्भी बलगम दूर कर, फस्द जुलाव ज़रूर ॥ ३ ॥

आहार ॥ १४७ ॥

जल वायू मे प्राण कर, वस्तू का परिमाण ।
अन्नादिक कोड़ खाद्यमें, उतना है नहि जान ॥ १ ॥
निर्मल वायू जल मिले, निर्मल हो स्वस्थान ।
प्रति दिन भोजन नहि मिले, चिन्ता मत कुछ मान ॥ २ ॥
भोजन प्रति दिन नियमसे, करना होय सुभाव ।
बिन भोजन जो कष्ट है, एक सुभाव अभाव ॥ ३ ॥
आदत से यह कष्ट है, साधन से यह जाय ।
भोजन हो जल वायुसे, क्वचित अहारहुं पाय ॥ ४ ॥
या बिध साधन करनते, मृत्यू पर जय होय ।

कफ चरवी ही मृत्यु है, क्षय करना इन दोय ॥ ५ ॥
शुद्धलहू तनमें रहे, हड्डी रहे व मांस ।
मृत्यू उसका क्या करे, जम फिर जाय उदास ॥ ६ ॥
निर्मल ज्ञान अधार हो, सदानन्द तेहि पास ।
याविध जाहि अहार हो, वही आर्य्य है खास ॥ ७ ॥
चिन्ता सोखत है रुधिर, आनन्दहि बढ़िजात ।
अति आनन्दहि जो मिले, पुष्टही अल्पहि खात ॥ ८ ॥

घी चीनी व्यवहार ॥ १४८ ॥

घी चीनी का सब कोई बरनन करते गून ।
आंखहि देखी दूर कर, भल मानुस का सून ॥ १ ॥
घी चीनी जो खात हैं, और नहि जो खात ।
दोनों के बलको तुले, अभी आंख खुलि जात ॥ २
कहते भोजन देव यह, करत देव सम काम ।
पचत तभी अरु बलहु दे, नहि तो रोगहि नाम ॥ ३ ॥
इन्द्र वायु सूरज अगिन, कब रहते बेकार ।
याबिध जो कामहि करे, उनका यही अहार ॥ ४ ॥
मिहनत से हो रुच जब, चिकना ही दरकार ।
आलस चिकनई आप दे, वहां रूचको कार ॥ ५ ॥
कच्चा घी जो खात हैं, बड़ी नष्ट यह बान ।
पक्को वासे है भली, शाक दाल अरु नान ॥ ६ ॥
भूसा घासहि खात है, जीव जन्तु अरु बैल ।
मोचहु रूखा खात है, हो क्यों देहहि तैल ॥ ७ ॥

सब वस्तुनमें कुछ न कुछ, रहता अंसहि तेल।
चिकनइ जो नहि खात है, प्रकृति काढ़ती झेल ॥ ८ ॥
याही ते पित तेज हो, उन लोगन के जान।
चिकना खानेहार को, रहत न काम पचान ॥ ९ ॥
अती परिश्रम जो करै, काढ़े सेर पसीन ।
उनको खाना उचित है, घी मलाई अरु चीन ॥ १० ॥
मनुष देह से श्रेष्ट अति, छुधा कहत सब ताय।
घृतको अति सेवन करै, जल्दी होत बिदाय ॥ ११ ॥
गई छुधा सब घेर लें, रोग बहुत कर आय।
दुर्बलता फिर बढ़त है, वंसहुं जात हराय ॥ १२ ॥
कच खीर बहु बंस हो, मुतवन्ना घीखोर।
घर घर जाकर देखलो, घी चीनी का ज़ोर ॥ १३ ॥
इसमें गुण है यह बड़ा, बुद्धी हो श्री रूप।
अवगुण तजिगुण लेत है, साधू हंस स्वरूप ॥ १४ ॥
स्वादिन्द्रिय नहि, प्रवलहो, दोष न पर से गाय।
कच्चा घी नहि खात हैं, साधू याविध खाय ॥ १५ ॥
रोटी भातहि घृत नहीं, टिकरा पूरि न खाय।
इक गोली घी चीनि की, बिना स्वाद गिलि जाय ॥ १६ ॥
चढ़त दालही देय घृत, नहि चिकनाहट नाम।
दाल कच घृत चिकनई, समाता को हो काम ॥ १७ ॥
दालहि रोटी कांच घृत, करता स्वाद गुलाम।
याबिध घृत व्यवहार नहिं, साधू बरते काम ॥ १८ ॥
सब वस्तुन में गुणहु है, और रहत है दोष।
साधू तजते दोष हैं, गुण भरते हैं कोष ॥ १९ ॥

घी दूधहि की गुण बहुत, शास्त्र हि कियो बखान ।
खादी नितको जो नही, गुण उनही को जान ॥ २० ॥

जलपान ॥ १४९ ॥

भींगा वा सूखा चना अदरक निमक हि साथ ।
सब ऋतुमें जल पान हो, सहजहि धनी अनाथ ॥ १ ॥
गरमीमें जब सतु जो, शरबतके संग घोल ।
धूपहि धूप फिरा फिरे, तनक पड़े नहि झोल ॥ २ ॥
आंवला पिसि गुलकन्द करि, चीनी ताहि मिलान ।
धूप सुखा रख दीजिये, अजब, य, है जलपान । ३ ॥
दहि चूड़ा हो चौथई, गुड़ वा नमक हि साथ ।
अद्धे रसोई कहत हैं, सुख है पथिकहि हाथ ॥ ४ ॥

मांस भक्षण ॥ १५० ॥

भारत ऊष्ण प्रदेशमें, मांस नहीं उपकार ।
तनकी फुरतीको हरे, धन हो नष्ट अपार ॥ १ ॥
पशु भक्षणका फल यही, हिंसुक होय सुभाव ।
प्रबल होंय इन्द्रीय सब, होता ज्ञान अभाव ॥ २ ॥
उदाहरण यह ठीक है, देखो बाघ बिलाव ।
घोड़े हाथी बैल हूं, परखो ताहि सुभाव ॥ ३ ॥
मांसाहारी जीवको, खाते नहिं हैं कोय ।
उद्भिद ही जो खात हैं, खाद्य वही सब होंय ॥ ४ ॥

श्रेष्ट-उद्भिद आहार है,　　सिद्ध भयो यह बात ।
तेजी होय न क्रूरता,　　बुद्धि और बल पात ॥ ५ ॥
गुण सब नाशहि हो नहीं,　　आजाते सब दोष ।
निर्दयता अरु म्लेच्छता,　　हिंसा की हो कोष ॥ ६ ॥
सब गुण जिसमें नाश हो,　　पैदा हो बहु दोश ।
जब होगी बहु दरशिता,　　आपी होगा होश ॥ ७ ॥
मांस खानके दांत है,　　मानुष केवल चार ।
उद्भिदवाले दांत बहु,　　इसका कौन प्रकार ॥ ८ ॥
नखहूं मानुष के लिये,　　होते पंजो माहि ।
अस्त्र शस्त्र को काम क्या,　　कहत कौन जग माहि ॥ ९ ॥
कौन कालकी बातको,　　कौन काल बरताय ।
ज्ञान न होता मनुष को,　　मनुषहि पशु कहलाय ॥ १० ॥
जंगली हालत जब रही,　　तबही की यह बात ।
मैलो खाते बृक्ष सब,　　पशू बृक्षही खात ॥ ११ ॥
पशु गणहू आहार हो,　　मानुष वाको खाय ।
या विध नेम अहार को,　　ईश्वर दई बनाय ॥ १२ ॥
मांस वादि की तर्क यह,　　कहत अती निर्मूल ।
दुख सुख हानी लाभको,　　ज्ञान भये हो भूल ॥ १३ ॥
मुसलमान पैगम्बर हि,　　अती बिपद के काल ।
अती अनिच्छा से कह्यो,　　देख फौज बेहाल ॥ १४ ॥
फौज मांस खाती नहीं,　　बिन हजरत के खाय ।
अंगुलि वस्त्र लपेट कर,　　छूकर जीभ लगाय ॥ १५ ॥
अन्न वहां पायो नहीं,　　फौज भूख मर जाय ।
भूखे मरणही काल में,　　हुक्म मांस बरताय ॥ १६ ॥

बिन जीवहि जीवहि नहीं, जीवहि जीव अहार ।
जीव दया किम पालिये, पंडित करो विचार ॥ १६ ॥
तारतम्य को ज्ञान लहि, उबरे सोइ उबार ।
घृन्ना सह कर्तव्यकर, लाचारी न विचार ॥ १७ ॥
तारतम्य के भेद से, दोषहि जहं हो कार ।
उनही लोगों के लिये, बना मांस आहार ॥ १८ ॥
पशु में जैसे बाघ गो, मानव में दरकार ।
देव रु राक्षस होत हैं उद्भिद मांस अहार ॥ १९ ॥

गरम मसाला ॥ १५१ ॥

गरम मसाला खात जो, प्रति दिन भोजन माय ।
देह शिथिल होता तभी, हाड फीक हो जाय ॥ १ ॥
औषधियोंका असर हूं लगत नही तेहि गाय ।
दुर्बल हो मस्तिष्क अति, जन्म बृथा हो जाय ॥ २ ॥

पान खाना ॥ १५२ ॥

जाको नहि विश्वास है, ताको पान न खाव ।
है बीड़ा ही खायकर, मुखशुध को वर्त्ताव ॥ १ ॥
पान चबाकर थूकना, मुखशुधही यह कार ।
अतिशय खानहि पानको, नहि वकरी आहार ॥ २ ॥
जादू को यहि द्वार है, लाग दूध अरु पान ।
थोड़ी बुद्धिहुं जाहि हो, कर सकता अनुमान ॥ ३ ॥

यह निर्णय अति कठिन है, काको कर विश्वास ।
ताते निजही हाथ की, पान रखहु अभ्यास ॥ ४ ॥

भूख प्यास ॥ १५३ ॥

भूख प्यास भी रोग है गौर करो बहु डूब ।
नित भोजन अभ्यास हो, भूख रोग है खूब ॥ १ ॥
जैसे कोई अफ़ीमची, बे अफ़ीम अकुलाय ।
पेटू वैसहि वक्तपर, भूख पीड झुझलाय ॥२॥
वक्त बांध भोजन सदा, करने का अभ्यास ।
तनक देरमें पित पड़े, होय कष्ट अनयास ॥ ३ ॥
व्रती पुरुष जब खाय ले, तब ही पड़ता पित्त ।
भूख कभी लगती नही, दुर्बलता हो चित्त ॥ ४ ॥
गड़बड़ वा अभ्यास ते, प्यासहु लगि अधिकाय ।
व्रत नीयम नहि भंग हो प्यासहु जाय बुझाय ॥ ५ ॥
जीवन रक्षाके लिये, भूख प्यास का कार ।
नहि आदत पाबन्दि हो, नरक करन संसार ॥ ६ ॥

जुल्लाव और फ़स्द ॥ १५४ ॥

अहर बिहर जेहि नियम नहि, लेते फ़स्द जुलाब ।
कसि कसि खा बल पूर्बक, काढ़े दस्त ख़राब ॥ १ ॥
न्योती रोग औषध करन, रीती है यह मन्द ।
परिमित भोजन करनते, हो यह आफ़त बन्द ॥ २ ॥

श्रम इतनो जो करत हैं होय पसीना गाय ।
ताको सब सुख मिलत है, नही कष्ट हो काय ॥ ३ ॥

मातम पुरसी ॥ १५५ ॥

मरनी हरनी हो कहीं, जान पछान हि बीच ।
जाते, लिखते दूरसे, रीत बड़ी यह खीच ॥ १ ॥
जब कोई आया लोग हो, करता तब ही रोय ।
दुख न होय तो भी उचित, नहि तो अपजस होय ॥ २
पूरशिशकी कह लिखनकी, कईक बंधी है बात ।
कहना लिखना उचित है, नहिं तो हो उत्पात ॥ ३ ॥
क्या करना कुछ वस नही, यहि इच्छा भगवान ।
क्या कहना है आप को, आप अहैं सज्ञान ॥ ४ ॥

सत्यासत्य बाणी ॥ १५६ ॥

बायु उदरसे कंठ हो, निकसत है बनि बात ।
सत्यासत उसमें नहीं, फल पर हो अनुपात ॥ १ ॥
सत पोषक बाणी हि सत, यद्यपि मिथ्या होय ।
सत बाणी पोषक असत, मिथ्या जानो सोय ॥ २ ॥

शाप और आशीर्बाद ॥ १५७ ॥

मृत शय्या पर जो करे, शाप रु आशीर्बाद ।
बिना फले रहता नहीं, राखो यह तुम याद ॥ १ ॥

बहु दरशिन ने देख कर, फल बतलायो आज।
बूढ़न की सेवा सदा, करती भली समाज ॥ २ ॥

स्तुति ॥ १५८ ॥

कहिं नानक * न सराहिये, एक बात पर काहि।
उसि मुखसि करना पड़े, एक दिन निन्दा वाहि ॥ १ ॥
या विध निन्दा हू नहीं, कर काहू की जान।
एक दिन करनी पड़हिगी, अस्तुति को जस गान ॥ २ ॥
ज्ञान पाय मानव सभी, करत बिचार हि काम।
अपने ख्यालहि पर धरत, भली बुरी सब नाम ॥ ३ ॥
तारतम्यके भेदसे, बुरे भले ही जाय।
भले बुरे हू होत हैं, चाहे वही कराय ॥ ४ ॥
जिसकी निन्दा सब करें, महा पुरुष दिखलाय।
सराही बहुरिया भी कभी, डोमहुके घर जाय ॥ ५ ॥
भोजन उत्तम है वही, जोई हजम हो जाय।
जोरू वही सराहिये, जोवन बीत हि जाय ॥ ६ ॥
उचित सराहन सूर बच, रण जीतहि फिर जाय।
खेती वही सराहिये, अन्न घरहि उठ जाय ॥ ७ ॥
भोजन वही सराहिये, सहजहि जो पचि जाय।
यौवन बीते भार्य्या, नाम नेक जो पाय ॥ ८ ॥
फिरत शूर रण जीत जो, खेत अन्न घर जाय।
यह बातें जवही बनें, तभी सराहन जाय ॥ ९ ॥

निन्दा ॥ १५९ ॥

निन्दा काहू की न कर, अनुचित अति यह काज ।
जगत नियमकी देखकर, ढाकी सबकी लाज ॥ १ ॥
मुर्दा देह मनुष्यकी, देखो चेहरा हाड़ ।
कैसो बदसूरत बन्यो, कितने गड़हे खाड़ ॥ २ ॥
नाक कान मुंह आंखकी, देखो कैसे छिद्र ।
महा भयंकर छिद्र सब, डरतहु देख दरिद्र ॥ ३ ॥
लेहु सिखवावन देखके, कारज जग करतार ।
जहां होत है ऐवही, गुण दिखलावत सार ॥ ४ ॥
कहा काम है कानको ? कहा भृकुटि अरु मूछ ?
नाकहिको है फल कहा ? साधू से जा पूछ ॥ ५ ॥
जहां जहां पर ऐब है, गहना दियो पहिराय ।
जोड़ जगह है ऐबको, कैसी शोभा पाय ॥ ६ ॥
यह महिमा भगवानकी, बूझ सकत सब नाय ।
निन्दा करना द्वेषसे, कौन कहत है जाय ॥ ७ ॥
निन्दा होत समाजमें, कहत सुधारण हेत ।
धर्म भगहु अरु राजभय, तैसहि यह संकेत ॥ ८ ॥
द्वेषसहित निन्दा करें, निन्दा वाको नाम ।
हितकारक शुभभाव जो, वह उपकारहि काम ॥ ९ ॥

बड़ाबोल । १६० ॥

शूर समर करनी करहि, कहिन जनावहि आप ।
विद्यमान रण पाय रिपु, कायर कथहि प्रलाप ॥ १ ॥

गरजत जोई मेघहै, कबहूं बरसत नाहि ।
गांजा पी वक्ता बने, कामहि बातीं नाहि ॥ ३ ॥
समझ बूझकर बोलना, बड़ा न बोलो बोल ।
बोलत ही थप्पड़ कठिन, निश्चै लगत कपोल ॥ ४ ॥
बड़ा बोल जो सुनतहै, अपनाही या अन्य ।
बदला देनेके लिये, सबही होत अनन्य ॥ ५ ॥

कटुभाषण और हंसी ॥ १६१ ॥

तीर सहे छूरी सहे, सहे न कड़वा बोल ।
कारण है उत्पातकी, कड़ी मसखरी ठोल ॥ १ ॥
कटुभाषणकी फल कहा, जानन चाहो यार ।
भीम हसीं भारत रची, देखो आंख पसार ॥ २ ॥
पागल अरु बिकलांगका, अरु कुरूप अपमान ।
सो करना नाहि न उचित, उचित दया जोसान ॥ ३ ॥
हांसी हेतु बिरोधको, पंडित कहैं पुकार ।
तैसहि खांसी होतहै, सकल रोगकी सार ॥ ४ ॥
जगमें जितने द्वंद्वहीं, कटुभाषण के घात ।
कबहुं सह्यो नाजातहै, कुटिल कटीली बात ॥ ५ ॥
अस्त्र शस्त्रको मारवो, दममें काम तमाम ।
वाक्य बाणके घावको, नही कभी आराम ॥ ६ ॥

अशराफ़ की छोटी बात न कहना ॥ १६२ ॥

कैतहु कोइ क़सूर हो, कही न छोटी बात ।
कुलवाला नहि सह सके, कर बैठत उत्पात ॥ १ ॥
इत गग्गा मुखते कढ़्यो, उत निकसी जमधार ।
वार कहन पायो नहीं, भई कटारी पार ॥ २ ॥
बड़े न बोलैं बोलघट, घट बोले घट बोल ।
घट बोले घट जात हैं, बड़े नगनकी मोल ॥ ३ ॥
नीचनसे बर्ताव यह, करैं जो साधूलोग ।
काम बिगारे आपनो, जाय मान हो शोग ॥ ४ ॥
लातनके जो यार हैं, बातन मानत नाह ।
यही ज्ञान बिन साधु जन, काम हि नष्ट कराह ॥ ५ ॥

अपना ही गीत गाना ॥ १६३ ॥

अपनीही जो कहत हैं, परकी सुनते नाय ।
ज्ञान बृत्ति को द्वार तेहि, सदा बन्द रहि जाय ॥ १ ॥
जिज्ञासूसे बोलना, सुनना जीव लगाय ।
जिह्वा एकहि बिधि दियो, कानहि दोय बनाय ॥ २ ॥
कहो एकतो सुनहु दो, यहि ज्ञाताकी रीत ।
उलटा जो कोइ चालत है, फल होता बिपरीत ॥ ३ ॥

जात या देशको बुरा न कहना ॥ १६४ ॥

भले बुरे सब जातमें, होते सब ही देस ।
बुरा नहीं कहना उचित, सब ही जात रु देस ॥ १ ॥
भये विभीषण लंकहूं, खर काबुल जनमाय ।
स्वर्गहु में वेश्या रहे, भले बुरे सब जाय ॥ २ ॥
संगत गुण अति प्रबल है, तऊ साधु सब जाय ।
कोउ समाज हु साधु बिन, चल न सकत एक पाय ॥ ३ ॥

यांचना ॥ १६५ ॥

तुलसी*वे नर नीच है, पर घर जांचन जाय ।
उनसे बढ़ कर नीच वह, रहत कहत जो नाय ॥ १ ॥
पर घर यों नहि जाइये, गये घटत है ज्योत ।
रवि मंडलमें जात ही, क्षीण कला शशि होत ॥ २ ॥
रूइ घास अरु पवन ते, हलके जांचनहार ।
जांचन डरसे बायु हूं, नहि उड़ाय एक बार ॥ ३ ॥
सबसे लघु है मांगवो, यामें फेर न सार ।
बलि पै जांचत ही भये, बामन तन कर्तार ॥ ४ ॥

अभिमान ॥ १६६ ॥

जो ऊपर अभिमान ते, देखत हैं जन मन्द ।
होंय दरिद्र अवश्य कर, पड़े जालके फन्द ॥ १ ॥

छोटों पर अभिमान ते, बड़ो देखनी आप ।
कह गये इस अभिमानको, बहु दरजी हैं पाप ॥ २ ॥
बड़ओंको जब देखिये, छोटो देखे आप ।
दूर जाय अभिमान सब, दूर जाय यह पाप ॥ ३ ॥
सिर घमंड जब हि चढ़े, भयो नाशको काम ।
चूंटीके ज्यों पर भयो, होय मौत अंजाम ॥ ४ ॥
नोचनको जब ही मिले, पदवी बढ़ कर काज ।
नज़र बदल कर और हो, सबही साज अरु बाज ॥ ५ ॥
बाप हि बूझे बाप नहि, कहत बड़े एक बाप ।
नीचोंका अभिमान यह, फज़ि़हत हों वह आप ॥ ६ ॥
अभिमानी जो नीच है, पा पद खुद भुलि जात ।
गिरत जु धक्का खायके, अंखपट्टर खुलि जात ॥ ७ ॥
या दुनियामें आयके, छाड़ि देहु तू ऐंठ ।
लेना है सो लेहि ले, उठी जात है पैठ ॥ ८ ॥

गप शप ॥ १६७ ॥

गप शपमें है गुण बड़ा, आलसिकी पहचान ।
आलसियोंमें होय गप, निन्दा अस्तुत जान ॥ १ ॥
अथवा कहिं कहिं होय तो, नारी गुण हि बखान ।
बहुत बढ़े तो और भी, भोजन चर्चा जान ॥ २ ॥
काम काजकी बातमें, आलसि ठहरत नाह ।
क्यों कि उसमें सिर दुखे, बुद्धि लड़ावन राह ॥ ३ ॥
गपमें ध्यान नहीं रहे, किधर सुबह अरु शाम ।
रुपये लिये गपमें लगे, सम्पत होय निलाम ॥ ४ ॥

देसी बहुत वकील यों, गपमें रहि लपटान ।
काम करत कहते यही, फुरसत नहि है जान ॥ ५ ॥

खुशामद ॥ १६८ ॥

हैं सहाय सब सबलकी, निबल न कोउ सहाय ।
पवन जगावत आग जिमि, दीपहि देत बुझाय ॥ १ ॥
दैव शक्ति जहं देखिये, वहां मानिये हार ।
छोड़ झगड़ खुश कीजिये, यह आज्ञा कर्तार ॥ २ ॥
साधन अरु अभ्यास ते, दैव शक्तिकी पाय ।
उद्यमको क्या मान हो, नहि यह नियम बनाय ॥ ३ ॥
उद्यम अरु अभ्यास बिन, हो नहि समरथवान ।
जान सुनहि दुर्बल बने, क्यों हो वाको मान ॥ ४ ॥

सिफ़ारिश ॥ १६९ ॥

नीच काम हो होय अति, सोच सिफ़ारिश काम ।
लेना करना द्वय बुरे, सोच ताहि अंजाम ॥ १ ॥
करत सिफ़ारिश जो मनुष, गौरव खोते आप ।
आत्मवलम्बन खोवते, लेनहार यह पाप ॥ २ ॥
ग़रज़मन्द बूझत नहीं, कहते पर उपकार ।
दुर्बल जन चपि जात है, आंख मरउवत सार ॥ ३ ॥
जगमें जब तक है बनी, नीच प्रकृति बर्तमान ।
होत सिफ़ारिश फल तभी, ऊंचहिमें नहि मान ॥ ४ ॥

थूकनेकी आदत ॥ १७० ॥

थू थू करते जो सदा, पिच पिच करि दिन रात।
बड़े म्लेच्छ उनको कहें, रौनक मुंहकी जात ॥ १ ॥
जहं बैठे वहं थूक दे, चुदड़ी दर दीवार।
संगत ऐसे लोगकी, नफ़रत का है कार ॥ २ ॥
थूक दियो है मूंहमें, कहते इसको लार।
मुंह रौनक अरु भूख हो, और हाज़मा कार ॥ ३ ॥
उसको फेकत जोइ जन, उसको लगता पाप।
रौनक़ चिहरा दूर हो, गन्दे हों वह आप ॥ ४ ॥

प्रश्नका उत्तर ॥ १७१ ॥

मतलब नहि जिस बातमें, अर्थहु होय न सार।
ऐसे प्रश्नन को कभी, उत्तर देन नकार ॥

मुंहमें कोई चीज़ लगाना ॥ १७२ ॥

अंगरेज़ी पढ़ि पर कलम, दाबन मुंह अभ्यास।
डिस्पेन्सरि करि नौकरी, कम्पौंडरि भइ तास ॥ १ ॥
प्रिस्क्रिप्शन संयोगमें, थी अर्क हि जैपाल।
काग खोल मुंह दाब कर, देत अर्क़ हो ढाल ॥ २ ॥
जीभहि छूवत अर्क हो, अंतड़ी गई मिरोड़।
खड़े दस्त हो हो गयो, यह आदत हो छोड़ ॥ ३ ॥

जमाल गोटा कहत है, जैपालहु तेहि जान ।
अनलबेत मारक कहे, कै दस्त हि बंधान ॥ ४ ॥

दान ॥ १७३ ॥

बिन मांगे दे दूध है, मागे दे सो पानि ।
कहे कबीर वह रक्त है, जिसमें ऐंचा तानि ॥ १ ॥
देना जब निश्चै हुआ, रहते करते देर ।
ऐसे ओछे दान करि, अजस बटोरे ढेर ॥ २ ॥
ऋतु बसंत याचक अली, डारि दियो द्रुम पात ।
ताते नव पल्लव भयो, दियो दूर नहि जात ॥ ३ ॥
छांटत है जिस बृक्षको, कूप खर्च हो तोय ।
तब ही जल आमद बढ़े, बृक्षहुं फल युत होय ॥ ४ ॥

गुप्तदान ॥ १७४ ॥

गुप्त दान ही दान है, प्रगट "नाम बैपार" ।
नीच हु दानी हैं भले, सूम न कुल सरदार ॥ १ ॥
आडम्बरके दानको, कहत "नाम बैपार" ।
गुप्त दान ज्ञाता करे, फल है ताहि मझार ॥ २ ॥
मनसे जोड़ असीस हो, और होय जो शाप ।
योग बलहिको रीतसे, निश्चै फल हो आप ॥ ३ ॥

प्रणाम व्यवहार ॥ १७५ ॥

रीती पहिले थी यही, करना राम सलाम ।
बड़े छोट अनजान हूं, भुकि करते परनाम ॥ १ ॥
थोड़े दिनसे देखते, बदल गई यह रीत ।
उदासीन अरु शत्रुसे, चलती है वह रीत ॥ २ ॥
मित्रोंसे अब उठ गया, होना राम सलाम ।
खबर खैरियत भी नहीं, मन ही मन हो काम ॥ ३ ॥
वाक्याडम्बर कपटता, दिन दिन होती न्यून ।
कहना कुछ मतलब कछू, उठती बातें दून ॥ ४ ॥

उदासीन और शत्रु व्यवहार ॥ १७६ ॥

भुक भुक कर अति अदबसे, करना राम सलाम ।
पूछ मात ले देनमें, तनक न होय बिराम ॥ १ ॥
आन जान बेवहारमें, कभी न गफ़लत होय ।
ज़रा कभी ग़फ़लत पड़े, बड़ी अदावत होय ॥ २ ॥

सस्ती चीज़ ख़रीदना ॥ १७७ ॥

सस्ती चीज़ ख़रीदना, सस्ता ठगी हि होय ।
नहीं तो पूरा या घटी, सस्ता होय न कोय ॥ १ ॥
अक्सर चोरी माल ही, सस्ता वही दिखाय ।
लेठा पड़ि हरि चीज़ हू, घरका भी कुछ जाय ॥ २ ॥

लोभी सस्ती चीज़ ले, मन ही मन हरखाय ।
ज्यों निज मुख लहु पान करि, कुक्कुर हाड़ चबाय ॥ ३ ॥
काम कि चीज़ें लेहु तुम, वाजिब देकर दाम ।
चीज़ें ऐशोंकी सदा, लो मत कबहूं नाम ॥ ४ ॥
निश्चय लेना होय तो, दो मुंह मांगा दाम ।
कारीगर खुश होय कर, लेय तुम्हारा नाम ॥ ५ ॥
विपद पड़े कोइ रोय कर, सस्ती बेचे चीज़ ।
दाब दूब जो लेत है, लेते विपद हि बीज ॥ ६ ॥

क़लम बनाना ॥ १७८ ॥

कलम बनाना हो कड़ा, जो लिखते हैं तेज़ ।
पतला हो अरु सख़्त हो, सीधा हो ज्यों नेज़ ॥ १ ॥
दहिनी चोरहि पुष्ट हो, पतली बायीं होय ।
लिखना ऐसे ढंगसे, बाईं घिसे हि सोय ॥ २ ॥
घिसती बाईं, दाहिनी, नीकहिं निकसत जाय ।
घिसती दहिनी चोर जेहि, हर्फ़-बिगड़ हो जाय ॥ ३ ॥

चिट्ठीका जबाब ॥ १७९ ॥

चिट्ठी मिलि जब कामकी, तुरत हि लिखो जवाब ।
इसमें सुस्ती जो करे, बड़ही वह बेदाब ॥ १ ॥
ऐसी प्रकृति जाहि तेहि, भूल, न दो कोइ भार ।
कोइ कामको हाथ तेहि, आखिर हो बेज़ार ॥ २ ॥

दृष्टि कसरत ॥ १८० ॥

दृष्टि कसरत जब न हो, नहि हो पूरी आंख ।
साधनं बिन सब शक्ति ही, बन जाती है राख ॥ १ ॥
लिखा पढ़ीके काममें, छापा पुस्तक पाठ ।
शहरी बूढ़न आंखसे, युवा दिहाती घाट ॥ २ ॥
रंगहि चीन्हन काममें, और रतन पहचान ।
गुड्डी एक उड़ावनो, बंदुक तीर निशान ॥ ३ ॥
ढल वस्सा भी कहत हैं, जो कर सके निशान ।
इन सब कामोंको कभी, खेल, न मानो जान ॥ ४ ॥
पर गुड्डीको खेलनी, कोठे पर है पाप ।
मात पिता रोकैं सदा, जोहो ज्ञान, न आप ॥ ५ ॥
कोठे चढ़ि क्रीड़ा करत, गुड्डी और पतंग ।
कितने गिर कर मरत हैं, और तुड़ावत अंग ॥ ६ ॥

पैरकी कसरत ॥ १८१ ॥

लुक्का चोरी खेलना, अथवा वैट्न बाल ।
गुल्ली दंटा तब उचित, गुरु जन लेय सम्हाल ॥ १ ॥
बंगट लड़कोंके सहित, खेलन है नहि दोष ।
जो पै गुरुजन हों खड़े, नहीं रहें रूपोश ॥ २ ॥
सबसे कसरत पैरकी, बड़ी कहत हैं दौड़ ।
हार जीत ज्यों होत है, बाज़ीकी घुड़ दौड़ ॥ ३ ॥

मोज़ा और मुरेठा ॥१८२॥

सिरको ठंढा राखना, बहरी ठंढा नाह।
बांध मुरेठा गरम करि, हो ठंढा इस राह ॥१॥
जाड़ेमें ज्यों भोरको, स्नानहि जाड़ा जाय।
या बिध बहरी ठंढ भी, भीतर जा गरमाय ॥२॥
बाहर सिर ठंढा करे, तब ही सिर गरमाय।
गरम भाफ सब देहको, ठंढे सिरपर जाय ॥३॥
भारत सिर रखना गरम, ठंढा रखना पैर।
ठंढ जिधर पावत उधर, भाफ करत जा सैर ॥४॥
देखो भभका अर्क की, ठंढे जलको देत।
भाप उधर जा पड़त है, पूरा है यह हेत ॥५॥
स्नान करतहू आद हो, डूबत जलमें पैर।
देह भाप सब ठंढ पा, जा नीचे करि ठैर ॥६॥
पैर गरम सिर ठंढ हो, देह भाप चढ़ माथ।
अर्ड्ड उसीको कहत है, लगत रोग हो साथ ॥७॥
शीत काल बिन और ऋत, मोजा दो नहि पाय।
सिरहि गरम तब होयके, घुरन रोग लग जाय ॥८॥

कसरत ॥१८३॥

डंड़ मुगदर कुश्ती अती, पुराचीन यह चाल।
आलस गठिया विकृत अंग, फल पाते यह माल ॥१॥
राज काज की शान्तिसे, रहा न बलका काम।
कसरत कुश्ती उड़गई, रोग भयो अंजाम ॥२॥

जल सिंचन भमी खनन, कीस दीयकी चाल ।
काम काज के हेतसे, कसरत नहीं जवाल ॥ ३ ॥
डंड़ग्यारह बैठक भि दस सुगदर बीसी हाथ ।
बाहु-युद्ध लपटंत भी, घंटा आधहि साथ ॥ ४ ॥
काम काज के हेतसे, कसरत बने जो नाथ ।
इतनाभी करना उचित, मिट्टी लग ज्यों गाय ॥ ५ ॥
जिहि प्रकार से हो सके, होय पसीना देह ।
धीरे धीरे दम बढ़े, कसरत से हो नेह ॥ ६ ॥
इतना रखना याद है, आदी नहि हो जाय ।
हफ़ते में दिन एक भी, छुट्टी देय बनाय ॥ ८ ॥

डीलडौल बढ़ाने का उपाय॥ १८४ ॥

श्रमको साधन जो करे, रहे लाभकी आस ।
भोजन हूं भर पेट हो, बढ़त डील अनयास ॥ १ ॥
बच्चे दुबले बापसे, जा घर ऐसी रीति ।
भोजन उत्तम श्रम नहीं, वहां होय बिपरीत ॥ २ ॥
घरमे भाई चार हो, करता हो इक काम ।
आलस का नहि काम हो, खटता आठो जाम ॥ ३ ॥
सबसे हो बड़ि डीलभी, और बड़ी हो क्रान्ति ।
भोगीअरु भाइ सभी, दुर्बल हो नहि शान्ति ॥ ४ ॥
राज प्रसाद हि लाभहो, लाभहि धर्म प्रसाद ।
हो समाजसे लाभ बहु, लाभ लाभ ही बाद ॥ ५ ॥
बल बाढ़े अरु देह हू, दौड़ धूप बर्ताव ।
ज्यों मछली बाढ़त बहुत, सड़क तीर तालाव ॥ ६ ॥

श्रम ॥ १८५ ॥

उद्यम अरु श्रम मंत्रसे, लक्ष्मी जी बस होय ।
देवि दरिद्रा वैसही, आलससे सिध होय ॥ १ ॥
श्रम होसे सब मिलत है, बिन श्रम मिले न काह ।
सीधी अंगुली घी जम्यो, कैसहूं निकसत नाह ॥ २ ॥
धन जाको तुम कहत हो, श्रमको वह औतार ।
बिन श्रम जो सबको मिले, वह धन हो बेकार ॥ ३ ॥
श्रम से धन हो लाभ नहिं, और स्वास्थ आधार ।
श्रम होसे निद्रा लगे, श्रम ही प्राण उबार ॥ ४ ॥
बिन श्रमके जो लाभ है, लाभ गनो नहि ताय ।
सोन सुहागाके सदृश, तुरत नष्ट हो जाय ॥ ५ ॥

अभ्यास ॥ १८६ ॥

तपको दूजो नामभी, कहते हैं अभ्यास ।
दैव शक्ति जो कहत हैं, यही देत अनयास ॥ १ ॥
बच्चे खेलन झुंझुना, बनवावहू अनेक ।
क्रमसे भारी होंय सब, बदली नित एक एक ॥ २ ॥
पांच बरसको छोकरा, मन भर बोझ उठाय ।
अभ्यासहि गुण है यही, दैव शक्ति को पाय ॥ ३ ॥
याही विध अभ्यास हो, बीस बरसके माह ।
पर्वत ज्यो हनुमान ने, फेंके निश्चै वाह ॥ ४ ॥

या बिध जितने काम हैं, जिसका कर अभ्यास।
ज्ञान सहित तब ही प्रगट, दैव शक्ति अनयास॥ ५॥
कहते कितने पुरुष हैं, मानव बल महदूद।
बाढ़ेगो बल उतन ही, जितनो थ्यो मौजूद॥ ६॥
अनुमानिक झगड़ा बुरा, फल पर राख बिचार।
मनहि बोझ या डेढ़ मन, मानव शक्ति करार॥ ७॥
एक ग्वाला अभ्यास करि, भैसा मन पचीस।
ले उठाय वह फूल सा, क्या महिमा जगदीस॥ ८॥
मानुष बल महदूद है, नहि प्रमान है साफ़।
बल जो कह हनुमान की, नहीं झूठ नहि लाफ़॥ ९॥
फ़ैसल इस तकरारकी, बाद परीक्षा होय।
तब तक लाहद सब कहो, लाभ इसीमें होय॥ १०॥

पंचतत्व सेवन॥ १८७॥

भोरहि उठि असनान करि, निर्मल वायू सेव।
फलका माहि प्रवेश करि, मिट्टी बदन हि लेव॥ १॥
आलसि और अशक्त जन, करै नहीं यह काम।
दुर्बलता सह नहि सकै, उनको उचित बिराम॥ २॥
भारतमें सुख स्वास्थकी, प्रथम यही बतलाय।
स्नान रु निर्मल वायुको, पांचो तत्व गिनाय॥ ३॥
मिट्टी बदन लगावनी, लोम कूप हो साफ।
दृढ़ता साधन अंग हो, दूर होय बद भाफ॥ ४॥
जगह प्रकाश विहीन हो, वहां न करना बास।
प्रति दिन धूप हु के सहित, रखना हो सहबास॥ ५॥

अति प्रशस्त अरु शून्य ही, 　　उत्तम वहांहि बास ।
घर न होय तो और कहि, 　　सेवन करहु अकास ॥ ६ ॥
पंच तत्वकी देह जढ़, 　　प्रबल यही आधार ।
आर्यगणोंने सोंच कर, 　　नियम हि कियो प्रचार ॥ ७ ॥

स्नान ॥ १८८ ॥

सिर मलना नित उचित है, 　　धोना सबही गाय ।
आँला बेसन से कहें, 　　है नहि अन्य उपाय ॥ १ ॥
खल्ली अरु मिट्टी भि है, 　　नहि वाके सम कोय ।
बहु बिध सांचहि कहत है, 　　रखना तनक न ओय ॥ २ ॥
साबुन अति अपकार है, 　　खर्च बढ़न नहिं फर्ज़ ।
रुचि विरुद्ध हूं गन्ध है, 　　और बहुत है हर्ज ॥ ३ ॥
केवल पानी ढालना, 　　है नहि वह असनान ।
मैल साफ़ ही करनको, 　　काम स्नान ही जान ॥ ४ ॥
प्रति दिन जो अस्नान नहि, 　　करें सो म्लेच्छ शरीर ।
ताहि निकट नहि बैठना, 　　छू धो देह रु चीर ॥ ५ ॥
बुद्धि स्थिर वाकी नहीं, 　　रहत न ताहि विवेक ।
राख मले जो देहमें, 　　ताहो स्नान न ठेक ॥ ६ ॥

तैल मर्दन ॥ १८९ ॥

क्या माया भगवानकी, 　　जो नहि तेल लगाय ।
चमकत वाकी देह ज्यों, 　　प्रकृतिहि तेल मलाय ॥ १ ॥

प्रति दिन मर्दन करत है, तेल सकल जो गाय।
प्रकृति काज छुटि जात है, तेलहि रोग लगाय ॥ २ ॥
आदत से गुण नष्ट हो, छूटे दोष बढ़ाय।
नित साधन हो तेलको, महा दुःख दे काय ॥ ३ ॥
युवा केश ताते पकत, देहहु दुर्बल होय।
लोम कूप चिकनाइसे, बंन्द होइ सब होय ॥ ४ ॥
देह जभी हो रूखता, श्रम भोजनसे होय।
तबहि तेल मर्दन करहु, बेसनसे दो धोय ॥ ५ ॥
छोटे बच्चे को सदा, रखना तेल चभोर।
चिकनइ जब तक रहत है, तब ही तक रह ज़ोर ॥ ६ ॥

पेशाब करके पानी लेना ॥ १९० ॥

करि पेशाब जो जल न ले, सदा रहत नापाक।
और हवा पेशाबकी, कर दिमाग सब चाक ॥ १ ॥
जल ले पाकहु आप हो, ढाल जलहि पेशाब।
जल मिल गन्धहि दूर हो, दोनो दोषहि दाब ॥ २ ॥
जाहि अमल यापै नहीं, नाक़ायम वह लोग।
धर्म असर उनपर न हो, घृन्ना दया वियोग ॥ ३ ॥
जब जब करो पिशाबही, सब नाड़िन धो डाल।
हाथ पैर मुंह आदि हूं, भर लोटा जल ढाल ॥ ४ ॥

भूभार देना ॥ १८१ ॥

भू पर भार न दीजिये, देते हैं जो लोग ।
धरती पीड़ा करत है, सुखको हो नहि भोग ॥ १ ॥
काम काजमें लगि रहे, कसरत करता जोय ।
उसका भार ज़मीन पर, पड़े न पापहि होय ॥ २ ॥
अंगहि पूरा ज़ोर हो, बदन जाय हलुकाय ।
उलटा ज़ोर शरीरको, भ्वाकर्षण अटकाय ॥ ३ ॥
तकियाको नहि काम हो, नहि लेटनको चाह ।
डटे रहत सब काममें, झुकि बैठन की नाह ॥ ४ ॥
जूते पर मत छोड़ दे, सकल देहका भार ।
हलके ऐसे पैर रख, जन्तू खांय न मार ॥ ५ ॥
हाथीकी हो चालकी, करते सब तारीफ़ ।
गदह टापकी चालको, मानत नहीं शरीफ़ ॥ ६ ॥

निद्रा और जागरण ॥ १८२ ॥

प्रति निश जो निद्रा करे, कैदी आदत होय ।
कबहू जब जागन पड़े, भोग कष्ट तब होय ॥ १ ॥
धर्म भावसे जागरन, नियमित करना सिद्ध ।
हरी कीरतन साधना, आदि लाभ बहु बिद्ध ॥ २ ॥

दुर्बल करने का उपाय ॥ १६३ ॥

तन मन दुबले करनको, नारी गणके हेत ।
जाते प्रबल न होय यह, कोमलता संकेत ॥ १ ॥
बच्चोंकी तालीम में, कोमलता का लेस ।
ज़रा अगर आ जाय तो, सुख जा होय कलेस ॥ २ ॥
क़िस्सा कहनी प्यारकी, अरु अस्तुतकी बात ।
बूझत ही नहि कष्ट हो, है यह कोमल बात ॥ ३ ॥
चिकना चुपड़ा खाद्य हो, खट मिट्ठे को स्वाद ।
कटु कसैल रूखा नहीं, है यह कोमल खाद ॥ ४ ॥
रंगीन, हि चिकना नरम, नैनू अरु जमदानि ।
गोटे पट्टे टकि रहैं, कोमल बस्त्र निशानि ॥ ५ ॥
मेलहिको जो संग हो, करे खेल जिय बात ।
बुरे गुणोंकी झट गहे, कोमल संग कहात ॥ ६ ॥
अपना मेल न होय जो, ऐसी सभाहि जात ।
रुच कबही नहि होयगी, गये वाक बंधि जात ॥ ७ ॥
कोमलता विष देयके, मा पितु मारत बाल ।
इससे रचा नहि करें, माय बाप ही काल ॥ ८ ॥
ब्रह्म चर्य्य की रीत से, गुरु घर होता बास ।
कोमलता रोगहि कभी, लड़कों के नहि पास ॥ ९ ॥
उठी रीत जब से यही, कोमलता सह बास ।
अर्थ धर्म अरु काम खो, भै बिलास के दास ॥ १० ॥

उतारा ॥ १९४ ॥

योग बलहि से नजर हो, रोगहु हो तेहि काज।
जादू सिहरहि कहत हैं, झूठ न मानो आज ॥ १ ॥
राई सरसो आदि हैं, रचोघ्नहि वह द्रव्य।
आयुर्बेदहि देख कर, है उपाय कर्तव्य ॥ २ ॥
बिजली बल अरु योगबल, जो द्रव्यहि अटकाय।
रचोघ्नहि वाको कहें, आयुर्वेद बतलाय ॥ ३ ॥
नामीश्वरका जपहि वा, रचोघ्नहि जप मंत्र।
तपी पुरुष मन योग से, बल अटकत करि तंत्र ॥ ४ ॥

जयलाभ ॥ १९५ ॥

जोइ काम जो करत है, उसी कामके हेत।
ताहीको जय हो सदा, अन्य हेतु हो खेत ॥ १ ॥
विद्या ज्ञानहि के लिये, धन हि हेतु व्यापार।
बैपारी ज्ञानहि चले, पंडित धन हो हार ॥ २ ॥
उलटी रीतहु हो कही, अंधकार ही काल।
उजला देशहि होय जब, असल होय तब हाल ॥ ३ ॥
सिरिश्तदार पहिले भये, भये वकील अमीर।
नाज़िर हू ज़मिदार भय, अब क्या है तासीर? ॥ ४ ॥
अब भी जो कुछ देखते, थोड़े दिन रहे नाह।
फेर सत्यकी सत्य हो, सकल हि पड़े निगाह ॥ ५ ॥

झगड़ेमें दोषी कौन ? ॥१८६॥

रंज किसीसे होय जब, दोषी कहो न ताहि ।
क्योंकि एक हि हाथसे, ताली बजती नाहि ॥ १ ॥
क्रोध लोभ अरु द्वेष हूं, करत बुद्धिकी नाश ।
कारनको नहि कर सकत, बुद्धिहीन तालाश ॥ २ ॥
पहिले कारन सोच लो, तब दोषी ठहराय ।
शत्रू दोष बिचारका, उत्तम यही उपाय ॥ ३ ॥
पचहि शत्रू लेयके, वकिल आप ही जात ।
न्यायी अपने मनकी करि, सुनले दोषहि बात ॥ ४ ॥
या बिध जब हो न्यायसे, खोज दोषकी बात ।
हरदम दोषी आपही, खोजत निकसत जात ॥ ५ ॥
बुराजो देखन मैं चली, बुरा न पाया कोय ।
आपहि को देखो बुरी, सहजो कहती गोय ॥ ६ ॥
झगड़ेमें जो शत्रु हो, केवल दोषी जान ।
माफ उसे करना उचित, पागल की पहचान ॥ ७ ॥

बड़ा होनेका उपाय ॥१८७॥

काम काजमें लगि रहे, सीखे प्रति दिन बात ।
सबगुण आपहि आवते, सब शिक्षा हो जात ॥ १ ॥

नष्ट होने का सहज उपाय ॥१९८॥

काम काज सब छोड़ कर, तकिया गहि लगाय।
उत्तम भोजन ही करे, इन्द्रिय भोग बढ़ाय ॥ १ ॥
यह उपाय साधन किये, तुरत नष्ट ही जाय।
धन डूबे रोगहु बढ़े, बंसहु जाय हराय ॥ २ ॥

कामकाज ॥१९९॥

काम काज की आज्ञा, ईश्वर दई पठाय।
कासिद बालक आय कर, देता जगत सुनाय ॥ १ ॥
उसने सीखी है नही, मानव गणकी राय।
जागत बैठा रहत नहि, हाथ हिलावत पाय ॥ २ ॥
बालक से दुर्बल नही, कोइ जनहि जगमाह।
जागत जब तक रहत है, काम काज करे नाहि ॥ ३ ॥
बालक जो कुछ करत है, बढ़ता बहि अभ्यास।
दैवी शक्ती आय कर, देती बल अनयास ॥ ४ ॥
बड़ी बात अफ़सोस की, क्या करते मां बाप।
लाड़ प्यार कर शक्ति वह, खो देते हैं आप ॥ ५ ॥
भोरहि उठि हरिनाम ले, काम काज ले ठान।
ऐसे घर दारिद्र ही, झूठा बेद पुरान। ॥ ६ ॥
काम काजही धर्म है, काम काज ही ज्ञान।
बिना कर्म मुक्ती नहीं, नही नरकमें त्रान ॥ ७ ॥

काम काज से मुक्ति है, काम काज से स्वर्ग।
रात दिवाही कामसे, रखना है संसर्ग ॥ ८ ॥
काम काज लगि जानसे, आपहि आय आ जाय।
जो जो गुण सब मनुष को, ईश्वर दियो बनाय ॥ ९ ॥
काम काज बिन रहन ते, आलस अति बढ़ जाय।
उससे जितने दोष हैं, सब आकर बटुराय ॥ १० ॥
किसी अभागे के अगर, काम काज नहि हाथ।
बैठे से बेगार ज्यों, जप पूजा कर साथ ॥ ११ ॥
बनिया को जब काम का, नहि मिलता सन्धान।
रखता कोठी से पलटि, उस कोठी में धान ॥ १२ ॥
काम काज से अर्थ हो, अर्थ देय यश चाह।
यश लिप्सा सत्कार्य्य दे, उभय लोक सुख माह ॥ १३ ॥
काम काज से बल बढ़े, अंग जाय हलुकाय।
पड़त न भू पर भार है, सकल अभाव दुराय ॥ १४ ॥
जो बड़ भागी बैठ के, कारज में मन देय।
चौदह विद्या ठार निधि, अपने बस करि लेय ॥ १५ ॥
काम काज बिन भोगसे, लक्ष्मी जीकी चाह।
छांक दरिद्रा लक्ष्मी, क्यों आवे घर माह ॥ १६ ॥
उद्यम से लक्ष्मी बसे, ज्यों पंखे में पौन।
चलत फिरतही मिलत है, बैठा देगा कौन ॥ १७ ॥
बैठे कुछ मिलता नहीं, चलत फिरत मिल जाय।
चरखी दाना पाय तब, जब लगि घूमत जाय ॥ १८ ॥

काल और काम भाग ॥ २०० ॥

एक समय दस काम पर, ध्यान धरें जो लोग ।
काम न पूरो होयगो, भोगे अति भय शोग ॥ १ ॥
सिद्धी जिसके लाभ है, वह है और हि बात ।
कहो तमाशा वाहिकी, अथवा है करमात ॥ २ ॥
साधारण जग काममें, सिद्धी की नहि बात ।
सिद्ध पुरुष जग काममें, जगत नियम बर तात ॥ ३ ॥
काम काजको थिर नियम, कर लीजे ठहराय ।
उसी समय एक काम करि, दूजे हाथ लगाय ॥ ४ ॥
एक छोड़ जब दूसरे, कामहि दीजे ध्यान ।
उसी काम पर ध्यान रख, मन नहि दीजे आन ॥ ५ ॥
रेल सवारी करन दिन, ज्यों करते चट काम ।
तैसेही हर कामको, करो सुबह अरु शाम ॥ ६ ॥
अति चिंतासे ग्रसित जन, साध सके यह नेम ।
चिन्ता उनकी दूर हो, मनमें उपजे प्रेम ॥ ७ ॥
चिंता ग्रस्त हि काम तजि, सोचत निजहि उपाय ।
अनल खान से दुष्टही, बुद्धी उपजत जाय ॥ ८ ॥

नीचों से बरताव ॥ २०१ ॥

गरज चांप बिन विनयको, मूरख करते हेय ।
आंबा नीबू बानिया, गल चांपे रस देय ॥ १ ॥

नीचन से जब काम हो, दामी साज लिवास।
बड़ी बड़ी बातें करी, देहु लाभकी आस॥ २॥
तुलसी*मूरख देख कर, सीख अखकी लेय।
अनरस बिन एक बूंद नहिं, दाबे रस भर देय॥ ३॥
लोभीसे धन काम ले, क्रोधीसे सन्मान।
मूरख चक्कर चांप से, साधूसे सत बान्॥ ४॥
चीन्हे बिन जो काम ले, यों हो फलकी भाव।
साधूसे ज्यों कपट को, त्यों मूरख सत्भाव॥ ५॥
धर्म रूप बदला करें, जब जैसे से काम।
याते साधु नीच की, भूल न लेते नाम॥ ६॥
भोले नीचोंके सहित, साधु नीत बरताय।
पीछे रो रो कहत हैं, नेकी है कुछ नाय॥ ७॥
भोलोंकी यह भूल है, कहें बहुदर्शि अनेक।
नेकी नीचोंके सहित, बदि साधुनसे एक॥ ८॥
नीच, न राह बताइये, कहते फिर करि जोर।
राह बतायो तो सही, अब चल आगे थोर॥ ९॥
नीच, से वामन ज्यों कियो, त्यों नीतहि बरताव।
पहिले हाथ पसारिके, बहुरि पसार्यो पांव॥ १०॥
सुख दिखाय दुख दीजिये, खलसे लड़िये काहि।
मरे जोइ गुड़ ही दिये, क्यों बिष दीजे ताहि॥ ११॥
नीच जगतमें सुख चहे, छोटा हो कर बास।
फल तो सब ही बांट ले, बिगड़े पगुवहि लास॥ १२॥
चक्कीमें दाना बड़ा, पावत पहिले त्रास।
कहत अगाड़ी भोलके, रणके पीछे बास॥ १३॥

अगुवा हो मत काममें, नीचनके सहवास ।
धर्म उलटि सब जात है, रहि नीचनके पास ॥ १४ ॥
अहमद*टेढ़े चांदको, सब कोई करें जुहार ।
निपट सिधाई ना भलो, कछु टेढ़ो व्यवहार ॥ १५ ॥
टेढ़न मे सीधे रहत, शंका हो सब काहु ।
सीधे चांदहि ग्रहन हो, टेढ़े ग्रसत न राहु ॥ १६ ॥

नीचसे पहिले दाम ले,
सुन अरबी न फारसी ।
पीछे काममें हाथ दे,
जो दबसी सो हारसी ॥

सर्व संग्रह ॥ २०२ ॥

संग्रह सब कुछ करत रह, बहुतर आवे काज ।
काम नहीं जदहूं रहें, तऊ न आओ बाज ॥ १ ॥
इमली गुड़ अरु गाय घृत, इक इक बोतल माह ।
जुदा जुदा भरि बन्द करि, करो दफन भू माह ॥ २ ॥
या विध प्रति सन राखते, पक्के जोइ गृहस्थ ।
उनके वारिसके लिये, धन यह अती प्रशस्थ ॥ ३ ॥
सब गृहस्थको चाहिये, रस धातू अरु तेल ।
होय पुराना काम दे, रखना घरमें मेल ॥ ४ ॥

यत्न ॥ २०३ ॥

हरिक काममें यत्न है, अरु राखनमें यत्न ।
कहत सिलसिला इसहि को, बहुतर करो प्रयत्न ॥ १ ॥

कहे सलीका इस हि को, सुघड़ई हूं कह याह ।
इसके साधनकी सदा, रखना सब कोइ चाह ॥ २ ॥
बस्तू या बिध राखिये, रोके थोड़ी भूम ।
देखत ही शोभा मिले, खर्च न होय हजूम ॥ ३ ॥
नष्ट होनको भय न हो, रहे आब अरु ताब ।
दिल खुश होता है सदा, जाने यत्न हि बाब ॥ ४ ॥
ध्यान बस्तु हर दम रहे, कैसे रखिये साज ।
फुरसत जब ही मिल गई, सोच यत्नको काज ॥ ५ ॥
बैठा बनिया रहत नहि, नहीं रहे जब काज ।
इस कोठीके धानको, उस कोठीमें साज ॥ ६ ॥

नीच ऊंच काम ॥ २०४ ॥

जाते आलस बढ़त है, वही काम है नीच ।
जतन-उद्यम जाते बढ़े, उच्च कामके बीच ॥ १ ॥
पुस्तक अरु अखबारको, पाठ करनहै नीच ।
काम करत वा काममें, पढ़े तो उच्चहि बीच ॥ २ ॥
राज बढी लोहार को, शिल्प नहीं है नीच ।
ऐश शिल्प जेहि श्रम नहीं, कहना नीचहि बीच ॥ ३ ॥
कपड़े बूननहार को, तांती जुलहा नाम ।
या बिध बैठे काम सब, जुलहा को है काम ॥ ४ ॥
ऊंच काम तन श्रम हि को, तन मन अति है ऊंच ।
केवल मनके काम को, कहते सब ही पूच ॥ ५ ॥

सूद खान रुजगार हूं, अरु जूआ बैपार ।
कहे पुजारी नीच हूं, पुस्तक लेखनहार ॥ ६ ।

नेक सलाह ॥ २०५ ।

सत गुण सम्मत काज सब, करहु ठीक बरताव ।
तमगुण को जहं लेस है, कबहूं उधर न जाव ॥ १ ॥
सत गुण सम्मत काज यह, स्वास्थ-उधम अरु ज्ञान ।
काज करन शकती प्रबल, मित व्ययहूं परमान ॥ २ ॥
सत विरुद्ध तम गुण कहे, भेद लाज भै शीक ।
आलस और बिलास है, तम गुण कहते लीक ॥ ३ ॥
साधारण यह राय है, सत साधन तम छाड़ ।
देस काल अरु पात्र पर, नीयम बदलत आड़ ॥ ४ ॥
सत विरुद्ध लाभहि अधिक, अथवा कम ही हानि ।
तार तम्य वर्जित नियम, तब लेहू तुम ठानि ॥ ५ ॥

कर्त्तव्य ॥ २०६ ॥

जगमें जितनी बात है, सब कांटेकी तौल ।
स्वारथ भारी करत है, पल्लेकी झुक झोल ॥ १ ॥
ज्ञानीका कर्तव्य है, काटा देखत जाय ।
हलका पल्ला दाब दे, भारी देय उठाय ॥ २ ॥
स्वारथके जो लोभसे, हलका करें न आप ।
जग नीयम तब आपसे, शुद्ध करत दे चांप ॥ ३ ॥

इसी नियमसे होत है, समय समय औतार।
कांटा पलड़ा ठीक हो, उतर जात भू भार ॥ ४ ॥
स्वारथ बस सोचे कोई, नियम बिना कोइ बात।
नीयम चरखा चलत है, ज्ञानी देखन पात ॥ ५ ॥
कर्तव्र अपना ठीक कर, सब जन जगत चलाय।
जात देश अरु मनुषको, स्वर्ग जगत बन जाय ॥ ६ ॥

मानव कर्तव्य ॥ २०७ ॥

जगमें मानव कर्म क्या, जानो इसका सार।
शिशू बतावत है क्रिया, जो आज्ञा कर्तार ॥ १ ॥
जागत बैठा नहि रहे, हाथ हिलावत पाय।
ज्ञान-ग्रास-कर दृष्टिको, देखहु ध्यान लगाय ॥ २ ॥
जो दीन्हो भगवान, लोप कियो उस शक्तिको।
मूरख अरु अज्ञान, अपने पालनहारने ॥ ३ ॥

प्रमाण प्रयोग ॥ २०८ ॥

दोय विरोधी पचमें, चहिये जब परमान।
इधर उधर दोनों तरफ, नहि प्रमाण है आन ॥ १ ॥
सामाजिक युक्ती जिधर, ओर विवेक हि राह।
लाभ जिधर बेशी रहे, सोइ प्रमाण सराह ॥ २ ॥

संगत गुण ॥ २०९ ॥

संगत गुण मनही नहीं, तन पर होत बिकाश।
कुम्हरा संग जो कीट हो, कुम्हरा होत प्रकाश ॥ १ ॥
संगत गुण माहात्मको, खूब बिचारो आप।
वृक्ष रंग कीड़े बने, संगत गुण परताप ॥ २ ॥
संस्कार हो संग गुण, तन मन गढ़ना सोय।
जीवन रचना होत है, यह न बिचारे कोय ॥ ३ ॥
बैठहि संगत सहज सुख, अरु दुखको परिमान।
गन्धी और लुहारके, बैठ देख दूकान ॥ ४ ॥
संगत कीजे साधुकी, हरे औरकी व्याध।
ओछी संगत नीचकी, आठो पहर उपाध ॥ ५ ॥
संगत कीजे साधुकी, अरु गन्धीका पास।
देना लेना कुछ नहीं, आवत बास सुबास ॥ ६ ॥
बसि कुसंग चाहत कुशल, तुलसी मन अफ़सोस।
महिमा घटी समुद्रकी, रावण बसा परोस ॥ ७ ॥
साधू मूरख देख कर, मुंहको लेते फेर।
लरकुत है खोटी हवा, लगते हैं क्या देर ॥ ८ ॥
प्रीत करनसे गुण लहै घृन्ना दोष दिखाय।
साधूके संग प्रीत कर, मूरख देहु दुराय ॥ ९ ॥
प्रीत भाव गुण ही लहै, अवगुण देत छुपाय।
वैसहि घृन्ना दोषको, गुणको देत दुराय ॥ १० ॥
जिनको साधू जानिये, उनसे कीजे प्रीत।
मूरख पर घृन्ना धरे, सदा रहो भय भीत ॥ ११ ॥

ईश्वर विश्वासी न हो, तत्पर ही नहि नीत।
कर्म फलहु मानत नहीं, तिहिपर राख न प्रीत ॥ १२ ॥
भाषण हूं वासें नहीं, न कर कछू व्यवहार।
घृन्ना नास्तिकके लिये, करना है उपकार ॥ १३ ॥

सुसंगत ॥ २१० ॥

भले भले जहां रहत हैं, उनमें बुरा जो एक।
थोड़े ही दिनमें बुरा, अकसर पाय विवेक ॥

देशकी उन्नतिका उपाय ॥ २११ ॥

अपना कर्तव्य पालना, उन्नति का है मूल।
देश जात अरु मनुषको, और उपाय हि भूल ॥ १ ॥
सभा वृथा उपदेश भी, वृथा कहत कानून।
ज्ञान एक कर्त्तव्यका, बहु दरशी कहे चून ॥ २ ॥
देश हितैषी गण सुनो, छोड़ो सकल उपाय।
जन जनको प्रतिबोध दो, कर्तव्यहि समुझाय ॥ ३ ॥
चार जनहु जो होयंगे, कर्तव्य पालनहार।
उसि सांचमें ढलहि कर, देश होय उद्धार ॥ ४ ॥

कुटुम्ब पालन ॥ २१२ ॥

अपने कुलमें जो कोई, बूढ़े दुर्बल होय।
उनको दुखमें छोड़ जो, भोग करे सुख सोय ॥ १ ॥

ऐसे कूढ़ सुखी नहीं, हो तो थोड़े हि दिन।
कुनबे पालन यश नहीं, अति भारी यह रीन ॥ २ ॥

आश्रितसे बर्ताव ॥ २१३ ॥

अपने आश्रितके लिये, जो देता है प्रान।
उसके सबही काममें, पूरी जै जै जान ॥ १ ॥
निज आश्रितको जानिये, अपने पुत्र समान।
उसका दुख ले लीजिये, अपना सा करमान ॥ २ ॥
आश्रितका जहं मान नहि, विपत हि वहां निदान।
आज होय कल होयगी, देरहि दस दिन जान ॥ ३ ॥
छप्पर एक उठावते, लगते जन हैं बीस।
दे जो धक्का एक ही, ताक़त रहे उन्नीस ॥ ४ ॥

सन्मान ॥ २१४ ॥

तुलशी*कहत पुकारके, सुनो सकल दे कान।
हेम दान गज दान ते, बड़ो दान सनमान ॥ १ ॥
धन अरु कष्ट बिना बढ़े, जो जाने सन्मान।
नीच पुरुष धन चाहते, पंडित चाहत मान ॥ २ ॥

मित्र परीक्षा ॥ २१५ ॥

सुखमें सज्जन बहुत हैं, दुखमें होते हीन।
सोना सज्जन कसनको, बिपत कसौटी कीन ॥ १ ॥

दुक्ख बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
दुष्ट मित्र अरु बन्धु जन, जान पड़त सब कोय ॥ २ ॥
काम पड़ेते जानिये, जो नर जैसो होय।
बिन ताए खोटो खरो, सोना लखे न कोय ॥ ३ ॥
धन न भयेहू मित्रका, सज्जन करत सहाय।
मित्र भाव जांचे बिना, कैसे जांची जाय ॥ ४ ॥

शत्रुसे व्यवहार ॥ २१६ ॥

हुशियारी अरु शक्ति हो, ऊंचा कर बिहवार।
शत्रूसे यों बरतना, बड़े पूतकी कार ॥ १ ॥
दुर्बलता अपनी जहां, वहां न नीती ऊंच।
नीच नीत बरताय हो, काम करत है पूच ॥ २ ॥
थोड़ा ऋण अगनी कणा, व्याधि शत्रु बे ज़ोर।
दुर्बल जानहि छोड़ दो, बढ़ि झट खांय भंभोर ॥ ३ ॥
अभिमन्यू युध साक है, सात रथी मिल जाय।
धर्म युद्ध यह नहि रहा, तोभी बाज़ न आय ॥ ४ ॥
यह अधर्म नहि होय जो, उसि दिन युद्धहि शेष।
एक एक अभिमन्युसे, सब होते निःशेष ॥ ५ ॥
रथी युद्धसे अर्थ यह, सम दोनो ही होंय।
समता साधन रथि बढ़न, क्यों अधर्म हो सोय ॥ ६ ॥
रोगीसे अरु बीरसे, द्वन्द युद्ध क्या धर्म।
रोगी बटुरे दस जनहि, कहता कौन अधर्म ॥ ७ ॥

दोको गिनती मे नहीं, जा बैठा है धर्म ।
समझल जाको ज्ञान है, वही सूक्ष्म है धर्म ॥ ८ ॥

शत्रुदमन ॥ २१७ ॥

शत्रुन से मिल कीजिये, शत्रुनको संहार ।
पैर गड़े कांटा अगर, कांटे हिसे उद्धार ॥ १ ॥
दुर्बल शत्रुहुं रोकना, उचित न वारो द्वार ।
औंध कलश जल दावदो, जल प्रवेश बहु भार ॥ २ ॥
वायू निकसन राह दो, झट प्रवेश जल होय ।
राह छोड़ दुर्बल हुको, सबलहु डांटत जोय ॥ ३ ॥
बिल्ली घरमें वन्द करि, कभूं न डांटो वाय ।
मनुष सबल यद्यपि रहे, कन्ठ रुधिर ही खाय ॥ ४ ॥

सबल शत्रुसे लड़नेका समय ॥ २१८ ॥

पाप ज्ञान जेहि मन बसे, करे व जब ही पाप ।
करि बिवेक दुर्बल उसे, मौका यह खुद आप ॥ १ ॥
चलत यही जग रीत है, सच ही हो वा झूठ ।
शत्रू दोष प्रकाश करि, तब लड़नेको ऊठ ॥ २ ॥

बच्चोंको डराना ॥ २१९ ॥

डरा डरा कर बालके, देय कलेजा चांप ।
लाख रुपयेके जीवको, कौड़ी करि मा बाप ॥ १ ॥

घरसे बाहर निकलते, जाय कलेजा कांप।
जात सभामें रुच नहीं, बोल न सकत न आप ॥ २ ॥
बुड्या और बुगड़ कोई, कहते कोई भकोल।
परछांईकी डर डरा, चौकीदार हि बोल ॥ ३ ॥
रोते बच्चेको डरा, चुप करनेकी चाल।
जीवट रूपी गाछको, कर देती पैमाल ॥ ४ ॥

मनोयोगसे पागल बनाना ॥ २२० ॥

सीधे जनको देख कर, दुष्ट मिल हि दो चार।
चिढ़ा चिढ़ा करि देत हैं, पागल को आकार ॥ १ ॥
कोइ व्याहकी बातसे, कोइ लाभकी बात।
फुला देत दम देय कर, सीधे पर यह घात ॥ २ ॥
भोला करि बिश्वास ही, मानत सच इतबार।
पागल ताको करहि के, करत दिल्लगी कार ॥ ३ ॥
हंसि हंसि उत्तेजित करें, दम देकर आनन्द।
चिढ़ चिढ़ाय पागल करें, देखत नित यह फन्द ॥ ४ ॥
अनुचित अति यह काम है, मतिभ्रम करना काहि।
दुष्टनकी क्या दिल्लगी, भल मानुस नहि जांहि ॥ ५ ॥

अनूठा स्वभाव ॥ २२१ ॥

कितने दुष्ट स्वभाव यों, आवत देखत काहि।
दूर हि गाली देत हैं, निकट बहुत उत्साहि ॥

राज्यकी चाह ॥ २२२ ॥

नरक राज्यसे होत है, भारत राज्य न चाह ।
मन्त्री होना चाह है, ठीक रहे सब राह ॥ १ ॥
कृष्ण हि को अधिकार थे, लियो नहीं तिन राज ।
जंग बहादुर ही भयो, जाके बस सब काज ॥ २ ॥
स्वारथ नीच लखें नहीं, तप अरु ज्ञान अधार ।
राज भारके वहनको, मुटिया है दरकार ॥ ३ ॥
स्वारथ जाको नीच हो, चले माथ ले भार ।
बृटिश ही बहु चतुरको, भेज दियो कर्तार ॥ ४ ॥

हक़से बेशी चाह ॥ २२३ ॥

हक़से बेशी लेनकी, शकती है कोइ नाह ।
छलबलसे जो लेत हैं, भोग न सकते ताह ॥ १ ॥
एक हि डला सुवर्णका, भारी हो मन सात ।
एक पुरुष नहि ले सके, करहु जतन बहु भांत ॥ २ ॥
हक़से बेशी चाहते, लेने कभी न पाय ।
क्या महिमा भगवानकी, बाजिब हक़ हू जाय ॥ ३ ॥
पतलो नाको सूइको, तत्क्षण ज्यों हि प्रवेश ।
उद्यम करि हारे बही, करे जो मोटो वेश ॥ ४ ॥
खान भरी है रत्नसे, सोना कहत सुमेर ।
कोइ नहीं पाता सभी, हक़ही का है फेर ॥ ५ ॥

ज्यों अंगरेज़ प्रताप बल, धन ले इकसे बीस ।
हुंडियावन त्योंही कटो, यही नियम जगदीस ॥ ६ ॥
बहु धन औरहु काम में, ले लेते बहु लोग ।
निकल जात बहु ऐश व्यय, कटगही रहता भोग ॥ ७ ॥
हौसन में जो लाभ बहु, धन बुधि बलकी ज़ोर ।
भारत सबहि फिराय ले, देसिन को करि चोर ॥ ८ ॥
हक़ मिहनत से होत है, और रुपयका सूद ।
बीमा जोखिम सेहु हो, और भाग्य बिह बूद ॥ ९ ॥
हक़ भाग्य हिका नीच है, मूल उसीका नीच ।
मूरखता अरु तंचकी, रहती भाग्य हि बीच ॥ १० ॥

आदत ॥ २२४ ॥

खोटी आदत बस करे जब मानुष को जान ।
नरक जेलमें कैद ज्यों, कभी नही छुटकान ॥ १ ॥
लत इल्लत जब लग गई, मिली बस्तु नहि चाह ।
कैसा दुःख भोगन पड़े, नही सहन की राह ॥ २ ॥
रहता जो जब देह में तबही तक है आस ।
निकलत जो जब देहसे, तब ही जाय निरास ॥ ३ ॥
अफ़िम खोर जो क्या करे, व्याकुल फिरे तमाम ।
जीवात्मा नहि खा सके, केवल दुख अंजाम ॥ ४ ॥
आदत भी भूलत नहीं, नहि सकता है भोग ।
जरा सोच कर देख लो, कैसा है यह श्रोग ॥ ५ ॥

रौरव आदी नरकको, जीत लियो यह दुःख ।
आदी से बढ़ कर नही, भोग नरक सब खुक्ख ॥ ६ ॥
खोटी आदत ज्यों बुरी, भलि आदतहू मन्द ।
पंडित साधन कर करी, न हों आदत पाबन्द ॥
प्रति दिन एकहि समय में, भोजन नहीं कराहि ।
व्रतके दिन उपवास करि, अथवा अल्पहि खाहि ॥ ८ ॥
प्रति दिन एकहि समय में, निद्रा हू नहि जांय ।
देव भजन करि जागरन, आदत नरक छुटांय ॥ ९ ॥
प्रति दिन एकहि समय में, काम काज नहि ठान ।
उत्सव के दिन बन्द करि, आदत नरक बचान ॥ १० ॥
आदत साधत बनत है, कहें तेहि देह सुभाव ।
उसका फल इतना चले, घटे बंस परभाव ॥ ११ ॥
आदतसे होता जनम, स्वारथका तब नीच ।
ज्ञान बुद्ध सब भूल हो, पाप हि स्वारथ बीच ॥ १२ ॥
जगमें जितने पाप हैं, बहुतर आदत मूल ।
वृथा स्वार्थ को सृष्ट हो, ज्ञान जात सब भूल ॥ १३ ॥

हिसका ॥ २२५ ॥

एक शक्ति अनुःकरण है, मनुष देह के माह ।
कहत उसे तक़लीद हैं, हिसका हिन्दी माह ॥ १ ॥
संग साथ जिसके रहे, भली वापर होय ।
लच्छन वाके हू बहू, नक़ल होयगे सोय ॥ २ ॥

जो कोई जिसपर रीझते, ठीक वही बन जाय।
तनसे मनसे चालसे अरु सुभाव बदलाय ॥ ३ ॥
रीझो जब जिसपर जभी, खूब विचारी बात।
वैसा होना उचित है ? पीछे पाव न घात ॥ ४ ॥
इरिक विषय जिससे मिले, उससे मिलने जाव।
एक बात भी भेद हो, घृन्ना की बर्ताव ॥ ५ ॥

याद करना ॥ १२६ ॥

पाठहि हो या गानहो, अथवा होय बजान।
याद बिना पक्का न हो, याद उसे कहं मान ॥ १ ॥
पक्का याद उसे कहें, मन माही गड़ जाय।
ऐसा मनमें वह गड़े, ज्यौं सुभाव बनजाय ॥ २ ॥
याद सुभाव जो होयगो, मन तब छुट्टी पाय।
एक समय मन काम दो, दोनो हि करता जाय ॥ ३ ॥
या विध साधन यादसे, अष्ट सिद्धि हो जाय।
साधन ऐसी बस्तु है, दैव शक्तिकी पाय ॥ ४ ॥

सुभाव परख ॥ २२७ ॥

गुण ही रीझन उचित नहि, लखिये ताहि सुभाव।
गुणसे गिलटी होत है, असल सुभावहि भाव ॥ १ ॥
ज्यौं इन्द्रायन फल कहें, सुश्री अतहि दिखाव।
कडुवा अति ही स्वाद है, असली ताहि सुभाव ॥ २ ॥

परख सुभावहि मनुषको, बड़ो कठिन है काम।
बहुरूपा को रूप करि, दरस देत है थाम ॥ ३ ॥
सबते उत्तम परख है, गुण सुभाव को कार।
काम पड़े ते जानिये, जाको जो व्यवहार ॥ ४ ॥
जब काहू को चीन्हनो, पड़े प्रयोजन आय
साथिन उनके देख कर, जाचन करी उपाय ॥ ५ ॥
और जंचाई है यही, जिनसे हो व्यवहार।
नौकर चाकर आदसे, पूछन है दरकार ॥ ६ ॥
जिनके साथी कोइ नहि, बड़े कठिन वह लोग।
वृत्तिहीन है मन वही, संग दिली यह योग ॥ ७ ॥
परख सुभावहि असल है, तृणसे दे गौ दूध।
दूध दिये विष सर्पही, परख सुभावहि शूध ॥ ८ ॥

अपना भरोसा ॥ २२८ ॥

जो कोई अपने काम पर नहि करता है साय।
ऐसे कायर के कमी, दैव न होय सहाय ॥ १ ॥
शकती रहते जो पुरुष, औरों का मुख जोय।
दैव कोप उन पर पड़े, धन अरु बल भी खोय ॥ २ ॥
शक्तिमंत का जो कोई, करता है उपकार।
शक्ति हरन अपराधका, दैव करत प्रतिकार ॥ ३ ॥
राजा पित प्रज पुत्रपै, राखें ज्यादा भार।
प्रजा पुत्र तबही बढ़े, बल बुद्धी हो सार ॥ ४ ॥

राज पिता जब भार सब, राखें अपने हाथ ।
क्षीण प्रजा अरु पुत्र हों, धन बल डूबे साथ ॥ ६ ॥
भूप निवारन कर सके, नीच कर्म अरु पाप ।
नहीं सुधारन की सकत, वह हो आपही आप ॥ ७ ॥
राजा कभि कानून करि, रोकत है कोइ पाप ।
रूप बदल करि पाप तब, परगट होता आप ॥ ८ ॥
अपनेसे होता नही, एक चिकित्सा रोग ।
और मुक़दमे की बहस, औरोंसे हो योग ॥ ९ ॥

पराया भरोसा ॥ २२९ ॥

परके आश्रय पर कभी, कीजे नहि कोइ काम ।
जिसकी हो शंका कभी, टूट जानकी नाम ॥ १ ॥
भारत पर जो कल बन्यो, यूरप देशों माह ।
अथवा हिन्द अफ़ीम ज्यों, रही चीन परवाह ॥ २ ॥
मुटिये अपना आसरा, तजि लग कलकी माह ।
उनका तो पेटहि पला, पराधीनता चाह ॥ ३ ॥
माल गया उड़ ऐशमें, खितिहर भै मज़दूर ।
तिरहुत के ज्यों नीलकर, नहि सबूत बड़ि दूर ॥ ४ ॥
एक भरोसा छुटनते, बिपत पड़े सब देश ।
ऐसे कामों में कभी, न पड़े चतुर नरेश ॥ ५ ॥
भारत में जो मनुष हैं, उनकी तृप्ती हेत ।
धरती अनपुरणा सदा, भूख लगे तब देत ॥ ६ ॥

भारतमें कुछ काम नहि, कल कांटा दरकार ।
कलकत्ता के पासही, भूमी का क्या हार ॥ ७ ॥
कल कांटा जहं है नही, बिगहा रेट पचीस ।
कलकत्ते के पास में, रेट न आना बीस ॥ ८ ॥
अनपुरणा को छोड़ कर, भजें सरसती इष्ट ।
उदर तृप्ति ही सब बने, बुद्धी लई अदृष्ट ॥ ९ ॥
परदेसी तीरथ गये, खरिदन जाते चीज,
जांच आपही लेयले, वाजिब दाम हि दीज ॥ १० ॥
कोई रिश्ते दारको, कोई मिले दलाल ।
साथ लेय जट जात है, पीछे होय मलाल ॥ ११ ॥
परसे ज्यौं नहि होत है, उत्पादन संतान ।
काम पराये हाथको, निश्चय तेहि बिध जान ॥१२॥
सतयुगमें यह बात थी, हुई रह ये टोय ।
उन्नतिके इस कालमें, प्राय हि बद्ध सब कीय ॥१३॥

सदा सुखी रहने का उपाय ॥ १३० ॥

सुखि रहना जो चाहते, उसका यही उपाय ।
करुण बृत्ति उद्दिप्त कर, आंसू नितहि बहाय ॥ १ ॥
याद-ईश्वर करहु वा, मह पुरुषन की गुन ।
अपनी वा पर दुःखकी, किसी तरह री सुन ॥ २ ॥
इष्ट मित्र के दुःखमें, और मुर्दनी मद्ध ।
सबके आगे दौड़िये, दुख ले लीजे अर्द्ध ॥ ३ ॥

दुखियन का दुख देख जा, वा नाटक श्रीकन्त ।
सुख रोदन जो नितहि हो, होय न सुखकी अन्त ॥ ४ ॥
मनुष देहमें भाव दो, सुक्ख एक अरु दुःख ।
सुख बरते दुख होत है, दुख बरते हो सुक्ख ॥ ५ ॥
यह नीयम जगदीशको, ज्ञानी बूझत ताह ।
श्रम अतिशय जो करत है, अति निद्रा हो वाह ॥ ६ ॥

बुढ़ापे का सुख ॥ २३१ ॥

जगमें सब सुख खोजते, जीवन अन्त हि काल ।
बहु दरशी बहु खोज करि, कहते यही निकाल ॥ १ ॥
जस धन अरु बहु दर्शिता, अर्ज्यो यौवन काल ।
इतना और जुगाड़ हो, बूढ़ापन खुशहाल ॥ २ ॥
एक बगीचा हो उसे, अरु उद्भिद का ज्ञान ।
इतना श्रम करता रहै, जिससे हो गुज़रान ॥ ३ ॥
गौ भी हो दस बीस लग, सेवा अपने हाथ ।
आगे गौ पाछे भि गौ, गइयन हो से साथ ॥ ४ ॥
साधु गुणी गण संग हो, रहे पुस्तकालेय ।
लड़कों की तालीमका, भार उन्ही पर देय ॥ ५ ॥
चर्चा हो संगीतकी, और भजन कर्तार ।
कलिकी है सन्यास यह, नहि चिंता घर बार ॥ ६ ॥
मृत शय्या पर सोत हो, मिले भक्ति परिवार ।
प्रीत सहित कर दे विदा, भजन करत करतार ॥ ७ ॥

गोलोक हि की बर्णना, सुन्यो शास्त्र बिस्तार।
स्वर्ग हुं से बढ़ कर यही, पंडित करें बिचार॥ ॥ ८ ॥

इतमीनान ॥ २३२ ॥

पंडित कहत अभाव ही, उन्नति की सोपान।
आलसि कहे तब बन पड़े, जब हो इतमीनान ॥ १ ॥
बहुदरशी देख हि कहे, जब ही इतमीनान।
रहत न तब कुछ काम ही, सिवा ऐशोआराम ॥ २ ॥

चरित्र गठन ॥ २३३ ॥

जगमें जितने नियम हैं, सबमें तरतम जान।
मानुष कोई नियममें, सदा बाध्य नहि मान ॥ १ ॥
विवेक रूप हि शास्त्र में, तरतम कियो विधान।
काल पात्र अरु देश पर, करना उचित निदान ॥ २ ॥
पशुवत मानुष अरु पशू, संस्कार में बाध्य।
चरित गठन तेहि होत है, मतलब फेर असाध्य ॥ ३ ॥
राक्षस हो क्षण मे मनुष, क्षणमें होता देव।
जब जैसा दरकार हो, तब तैसी हो टेव ॥ ४ ॥
पूरा मानुष होय जो, गठन चरित तेहि नाह।
तारतम्यके भेदसे, सृजत नियम प्रत्याह ॥ ५ ॥
तपकी ब्रतकी योगकी, क्रिया कर्म सब साध।
बर्णाश्रम को छोड़कर, ईश्वर एक अराध ॥ ६ ॥

परमहंस ऐसे जो हैं, वही आर्य कुल टीक ।
नीयम को बदले वही, करें वही सो ठीक ॥ ७ ॥

दम ॥ २३४ ॥

श्रम करने में नहि थके, कहत उसे दमदार ।
मुर्दा कहें जल्दी थके, और कहें बेकार ॥ १ ॥
चलत फिरतमें दम चढ़े, काम में आवे सांस ।
मांस पिंड कहना उसे, नहि उसकी कुछ आस ॥ २ ॥
जो कोइ जितना ठठ सके, उतना वह दमदार ॥
साधन अरु अभ्यास ही, सांस पचावन कार ॥ ३ ॥
जरासन्ध पख भर लड़ा, थका वही जिस दिन ॥
दम बढ़ती था भीमका, मार लिया ही तिन ॥ ४ ॥
तानसेन गाते रहे, अठवारा दिन रात ॥
कुदो सिंह पाखावजी, बजा सकत दिन रात ॥ ५ ॥
चलते औरंजेबशा, दिनमें कोस पचीस ।
दम जिसमें है धन वही, होय उसी की बीस ॥ ६ ॥

आलस ॥ २३५ ॥

काम करनकी शकति जो, दीन्ही है भगवान ।
शक्ति नाशकरि शिथिल हो, अलस रोग वह जान ॥ १ ॥
ईश्वर दत्ता शक्तिकी, करते प्रत्यख्यान ।
ईश्वर द्रोही वह पुरुष, दुखिया होय निदान ॥ २ ॥

अशराफ़ की हालत ॥ २३६ ॥

धनी दुखी सम होनते, अहर बिहरकी कार ।
अशराफ़न घर जनम ते, ऐयाश हि बहु बार ॥ १ ॥
जनमत पालन हारको, जैसी देखत ख्याल ।
अवध राज सा चाहते, सब ही भोग कमाल ॥ २ ॥
श्रम बहुतर नहि हो सके, खर्च हि ज़्यादा भार ।
गुण विद्या कुछ हो न हो, कुल पर ही आधार ॥ ३ ॥
असन बसन में अति पटू, दलादली विस्तार ।
अपना हक़ बूझे बहुत, पर हक़ नहि दरकार ॥ ४ ॥
दोष रहित कोइ काममें, नीच लेहि दो चार ।
नया काम नहि यह करे, करे तो लेहि हज़ार ॥ ५ ॥
जोइ गांवमें यह बसे, गांव हि सत्यानास ।
दुबला सस्ते दाम हूं, लेन करे नहि आस ॥ ६ ॥
चिकना चिहरा नाज़ुकी, चलते फीला पैर ।
कोइ काम नहि बन पड़े, बिना मदद कोइ ग़ैर ॥ ७ ॥
बेटे दुबले बापसे, क्रम क्रम नाज़ुक होय ।
प्रसव काल शंका अती, नया जनम हो जोय ॥ ८ ॥
संततिकी बढ़ती नहीं, नित नित होए छीन ।
दुख सुख से घर हो चले, उद्यम मन नहि दीन ॥ ९ ॥
जन्म भूमके प्यारसे, अरु गप शपके माह ।
घरनी की झाडू बिना, घरसे निकसत नाह ॥ १० ॥

मोह निद्रा ॥ २३७ ॥

अपनी अपनो करि करी, आप गंवायी आब ।
अब भी उठिये भाइजी, गफलत की यह ख़ाब ॥ १ ॥
सब कोइ मरहर जाय तो, तहस नहस ही देस ।
सबका धन तुम पायके, चाहत हो सरवेश ॥ २ ॥
देसहिमें जब नहि रहे, धन ज्ञानहु रोजगार ।
अपने तंइ क्या लाभ हो, भाग राख अरु छार ॥ ३ ॥
बड़ी भूल इस बात में, करते हैं सब लोग ।
अपना लाभ हि चाहते, औरो का दुख शोग ॥ ४ ॥
सब को जब तक सुख नही, नहि हो अपना सुक्ख ।
जो कुछ होगा देशमें, बट जाता सुख दुक्ख ॥ ५ ॥
जाते होए देसमें, धन ज्ञानहु रोजगार ।
इन बातों पर भी कभी, रहे चरचा हर बार ॥ ६ ॥
लागत कुछ भी है नही, नहि मिहनत नहि माल ।
गप शप की बेला ज़रा, सोच देश का हाल ॥ ७ ॥
सोच सोच कर फर्ज जो, जानों जी के माय ।
शकती,भर, कोशिश,करो, संगिन देहु सिखाय ॥ ८
या विध चरचा चलि रहे, कोइ समाज में रोज़ ।
जागृत दल उसको कहे, इसही की है खोज ॥ ९ ॥
जो फल आवे देशमें, सब कोई के हाथ ।
उस ही से कुछ मिलत है, अपना कुछ नहि साथ ॥ १० ॥
धर्मराज जग चै करहि, राज पाय पछताय ।
अंत उदास हि होयके, गलन हिमालय जाय ॥ ११ ॥

कहत बसूला खीचता, सब अपने ही ओर ।
बहुत नष्ट ही काठ हो, फाड़त कर लो गौर ॥ १२ ॥
आरा गुंडा पड़त है, इधर उधर है ओर ।
तनक न काठहु नष्ट हो, नीच ऊंच यहि तौर ॥ १३ ॥

प्रीतकी बुराई ॥ २३८ ॥

शत्रु चीन्हन के लिये, जगमें बहु चतुराइ ।
एक जगह बुडी अचल, है जहं प्रीत बुराइ ॥ १ ॥
लाड़ प्यारसे बाप मा, लड़के को करें ख्वार ।
अपने मनके छोहको, रखत राहसे आर ॥ २ ॥
मात पिता अरु भार्य्या, मित्र बन्धु दिन रात ।
अपने अपने छोहको, करत बुरा दिन रात ॥ ३ ॥
मोह ममत में लिप्त हो, नहि चलने दे राह ।
जो कोइ उन्हे बुझाय दे, होय भलाई चाह ॥ ४ ॥
बच्चे रोगी होय जो, खानेको ललचाय ।
बैद कहत नहि खानको, मा देती खिलवाय ॥ ५ ॥
लाभ हानि को तोल करि, जो कोइ देय बुझाइ ।
समझ बात आ जानते, कमतर होय बुराइ ॥ ६ ॥

संसार बिड़म्बना ॥ २३९ ॥

योगी रोगी भक्त बावरो, ज्ञानी फिरत निखट्टू ।
संसारी को चैन नही है, ज्यों सराय को टट्टू ॥ १ ॥

आह गरीबकी ॥ २४० ॥

तुलसी*आह गरीब की, हरिसे सही न जाय ।
मुई खाल की सांस से, बज्र लोह गलि जाय ॥ १ ॥
दुर्बल को न सताइये, जिसकी मोटी हाय ।
अगर कहीं गम खाय तो, तुर्त नाश हो जाय ॥ २ ॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खात है, तिनका कौन हवाल ॥ ३ ॥
दुर्बलको जो सताइये, चिढ़कर दे दे गाल ।
आग आह धीमी पड़त, गम खाना है काल ॥ ४ ॥

जगत हंसी ॥ २४१ ॥

गर्भिन घोड़ी ले चले, पूत संग पर देश ।
घोड़ी पर बालक चढ़ा, पैदल आप विदेश ॥ १ ॥
घर घोड़ा पैदल फिरे, बात कहत ले छीन ।
थाती धरे दमाद घर, अहमक लच्छन तीन ॥ २ ॥
कहत लोग को यह सुनी, आपहु तब चढ़ लीन ।
कहत सभी नहि तोहि दया, घोड़ी मारहि दीन ॥ ३ ॥
यह सुनि आपहि तब चढ़ी, लड़कहि दियो उतार ।
देख हंसे सब बहुत ही, कहें स्वारथ औतार ॥ ४ ॥
चलन लगे पैदल दोऊ, घोड़ी रास हि लीन ।
यह देखहु जग हंसि दियो, तब दुख बहुत हि कीन ॥ ५ ॥

जगत सुनी रामहि दियो, सीता सति बनवास ।
ताते हूं अपयश भयो, जगत कथा है बास ॥ ६ ॥
ईश्वर जगहि स्वभाव कर, आलोचक औतार ।
तार तम्यको ज्ञान पा, अपना काज हि सार ॥ ७ ॥
जगत हंसी जो देखते, वह मूरख अति होय ।
जग अपजस दोउ ओर है, पंडित स्वारथ जोय ॥ ८ ॥

मुरउवत ॥ २४२ ॥

बड़ो मुरउवत ताही हो, दुर्बल मन है जाहि ।
सन्मुख रहि नहि कह सके, "कबहू बचन हि "नाहि" ॥ १ ॥
सन्मुख "हा" कहि करकरे, निकलन कोहि उपाय ।
उज़र न सन्मुख कर सके, पर शत्रु बन जाय ॥ २ ॥
रोगी लड़के ज़िद करें, खानेसे न बचाय ।
प्राण जाय सोभी सही, मुरवत ही बरताय ॥ ३ ॥

ज़हर खोरी ॥ २४३ ॥

एक हत्या अफयून करि, ले बेचे सरकार ।
निजका मालहि जान करि, कुछ भी नहीं बिचार ॥ १ ॥
लइसन चाहे जोइ ले, खोलि देय दूकान ।
लड़के औरत जोइ हो, बेच देत बिन जान ॥ २ ॥
सरकार हि की रायसे, ज़हर खोरि बढ़ि जात ।
गनती करि देखहु ज़रा, ज़हर अफीमहि पात ॥ ३ ॥

डाक्टरखानोंमें बिके, अथवा लायक़ लोग ।
अफ़िमचियोंका नाम भी, होय रजिस्टर भोग ॥ ४ ॥
वज़न हु संख्या लिखि रहे, अधिक न लेने पाय ।
या·बिध जो क़ानून हो, ज़हरखोरि कमि जाय ॥ ५ ॥
आतम हत्या में हि हो, बहु अफ़ीम व्यवहार ।
चोरीसे बिकरी जो है, पकड़ जाय बैपार ॥ ६ ॥

चिकित्सा ॥ २४४ ॥

परिमित भोजन जो करे, परिमित हो सब काम ।
लाचारी जब हो पड़े, पथ्य करे वह आम ॥ १ ॥
यही राह जिनने गही, औषधसे क्या काम ।
कुपथीको ओषध कभी, नहि सकता है थाम ॥ २ ॥
सब रोगनकी एक ही, दवा बड़ी उपवास ।
जब तक शुद्ध क्षुधा नहीं, भोजन है एक त्रास ॥ ३ ॥
क्षुधा रहत जब देहमें, रह सकता नहि रोग ।
रोग रहत नहि भूख हो, फ़ाक़ा भूखहि योग ॥ ४ ॥
जिस ओषधिसे भूख हो, कहत रसायन वाह ।
सब रोगनकी एक दवा, भूख लगावन राह ॥ ५ ॥
शुद्ध क्षुधा जब होयगी, रहत न रोग हि नाम ।
या कारन उपवास ही, करत दवाको काम ॥ ६ ॥
आलसि कर सकते नहीं, अती कठिन उपवासु ।
रूखा लघु भोजन करे, तौ भी फल हो तासु ॥ ७ ॥

रोग भये पर खाय जो, ताहि न फल उपवास।
उन ही को दरकार है, बैद चिकित्सा खास ॥ ८ ॥
प्रकृति समहि कोइ बैद नहि, औषध शाला काय।
शुद्ध रुधिर औषध महत्, सकल रोग ही जाय ॥ ९ ॥
पशु पच्छी अरु जीव सब, पाते यह उपकार।
दुर्भागे मानुष नहीं, आदत देय बिगार १० ॥
बिना भूखके खाय ले, रुधिर हि होय बिकार।
प्रकृती पाचनमें फंसी, दवा होय बेकार ॥ ११ ॥
पाचनसे छुट्टी मिले, प्रकृती करे इलाज।
प्रकृतीमें शक्ती रहे, करे तुरत ही काज ॥ १२ ॥
प्रकृतीको फल पावते, पशु पच्छी बहु जान।
गुरबा भी पाते बहुत, धनी नहीं अज्ञान ॥ १३ ॥
तुलसी* बिरवा बागको, सीचत हूं कुम्हलाय।
राम भरोसे जो रहे, परबत पर हरियाय ॥ १४ ॥
परिमित भोजन जाहि नहि, खाते गिज़ा लतीफ़।
रोज़ी बैदहि हैं वही, कहते उन्हे शरीफ़ ॥ १५ ॥

बैपार ॥ २४५ ॥

सबसे सिर बैपार वह, दुहरी आमद होय।
कृषी कार्य गो पालना, कहें श्रेणी यह दोय ॥ १ ॥
श्रमको फल मिल जात है, अन्न भयो अरु दूध।
दाम ज़मी बढ़ जात है, पशु बृद्धी ह्वै शुद्ध ॥ २ ॥

ओरो वह सेवा कह्यो, घिनघिन जिसमें होय।
तनक रहे स्वाधीनता, और कष्ट जो होय ॥ ३ ॥
उतरा दरजा है वही, लागत खुरदा होय।
आमंद होवे थोक जो, देख भाल कर जोय ॥ ४ ॥
थोक लगे खुर्दा मिले, नीच वही बैपार।
या विध श्रेणी कामको, चतुरन कियो विचार ॥ ५ ॥
उत्तम खेती कहत हैं, मध्यम कहते वान।
निरघिन सेवा कहत हैं, कहते भीख निदान ॥ ६ ॥
जब बैठो दूकान पर, गाहक आस लगाव।
एकागृहि मनको करो, गाहक होय खिचाव ॥ ७ ॥
बैठ दुकानहि मन कहीं दूजे ओर लगाव।
गांहक आवेगा नहीं, मक्खी बैठि उड़ाव ॥ ८ ॥
पशू कृषी बैपार जो, हों यह तीनों साथ।
मिहनत पूरी जो लगे, सुखसे हो धन हाथ ॥ ९ ॥
काम करत कोइ देखके, कर लेनो बैपार।
नई बात न निकाल के, करे तो पापाचार ॥ १० ॥
है वह एक डकैत ही, लूटत जो रुज़गार।
प्रती योगिता द्वेष करि, होते खाना ख़्वार ॥ ११ ॥
जहां न धनको फेर है, न कर वहां कोइ काम।
धोबी बस करि क्या करे, दिगम्बर के गाम ॥ १२ ॥
अति खोटा बैपार वह, पूंजी मिहनत नाहि।
जूआ उसको कहत है, फटका खेला वाहि ॥ १३ ॥
जूआ तो पूलिस गिरे, खेला कोई नाहि।
हार जीत दे लेन हो, मालहि नाम वृथाहि ॥ १४ ॥

कंट्राक्ट हि आईन हू होता वाहि सहाय।
भई बुराई तेहि चलन, होता राजहि आय ॥ १५ ॥
पूंजी बहु श्रम थोड़ हो, ऐसो जो बैपार।
नष्ट भये अरु होयेंगे, थोड़े दिनकी वार ॥ १६ ॥
पूंजी कम श्रम बहुत है, ऐसो ही बैपार ।
भारत में बरते सदा, नहि उसकी हो हार ॥ १७ ॥
मन्दे में ले राखनो, राखे तेजी आस।
ऐसे चोखे बनिक को, राजा कर ले खास ॥ १८ ॥
मन्दी तेजी ध्यान नहि, ले बेचे लगतार।
ऐसे बनिया साधु हैं, जगत करें उद्धार ॥ १९ ॥
लाभ उन्हीं को होत है, जो हैं साधू लोग ।
घटी बढ़ी मिलकर सदा, पाते अपना भोग ॥ २० ॥
कुछ बढ़ती दे मोलते, कुछ कममें दे बेच।
वाही को बैपार हो, जानत जो यह पेच ॥ २१ ॥
टानत है दर भाव जो, करत सदा अफ़सोस।
मन्दी तेजी लाभ हू, भागत है सौ कोस ॥ २२॥
ले बेचहि पछताय जो, भाग्य मान तेहि जान।
बिना किये पछताय जो, वही मूढ़ अज्ञान ॥ २३ ॥
आसा जिसकी है बड़ी, खरचा है बिस्तार।
उनके लेखे जगत से, डूब्यो सब रुजगार ॥ २४ ॥
मोटा खाना पहिरना, मोटी हो जेहि चाल।
उसका धंधा है बना, जो चाहे कर डाल ॥ २५ ॥

बैपार की रीत ॥ २४६ ॥

देसी बैपार हि कहैं, पूंजी जितनी होय।
उतनाही गेहना धरे, उतनहि थावर होय ॥ १ ॥
उतना रखना बकसमें, चड़े औसर दे काम।
या बिध बैपारहि करे, साव उन्ही का नाम ॥ २ ॥
सदा चले मर्य्यादहूं, सदा रहें तेहि नाम।
जितना लागत खर्च है, उतना लाभ हि काम ॥ ३ ॥
अंगरेजी कहैं रीत यह, पूंजी होय न होय।
काम चले कोइ रीतसे, प्रति पालन निज होय ॥ ४ ॥
नफ़ा घटी नहि देखना, कोइ बिध काम चलाय।
काम चले तब जगतका, सबको हो तब आय ॥ ५ ॥
मिलत नफ़ा फलही हुआ, मरें घटी में साव।
ईसानी को सोप कर, दूजा काम चलाव ॥ ६ ॥
रक़म न मारो सावको, पेट भरहि लेखाव।
दीवाला जितना अधिक, साक-उतना ही पाव ॥ ७ ॥
होय तजरुबा कामका, साहस अति बढ़ जाय।
माल निकासहि बहुत हो, साव नहीं अखराय ॥ ८ ॥
एक मुसद्दी करहि कर, करहि कमीशन ठीक।
माल देहि तेहि हाथ में, वह भी रहे निर्भीक ॥ ९ ॥
घरसे पांचहि देय कर, पचानबे लो साव।
सौको मालहि देयकर, घटिको रह्यो दबाव ॥ १० ॥
कहत चलानी मालकी, बीमा पालिस और।
रेल रसीदही साथ हो, डाकुमिन्ट यह तौर ॥ ११ ॥

डाकुमिन्ट बिल वेच लो, नगद हि रुपया पाव ।
फेर ख़रीदो मालही, दूजो फेर चलाव ॥ १२ ॥
पांच रुपये में लाखको, फेर चलत बाज़ार ।
एक तरफ़ा बैपार यह, कह्यो रफ़तनी कार ॥ १३ ॥
या बिध ही आमद भयो, बान हौस दे माल ।
ले रसीद बन हौसको, रुपये हीं बन्धक घाल ॥ १४ ॥
जब तक काम चला नहीं, लगत, डिपाजिट् काम ।
सौके माल चलानको, सौ दस धर दे दाम ॥ १५ ॥
सौको हुन्डी कर लिया, बंकहु हो गय तुष्ट ।
रहा डिपाजिट् हाथ में, हो रुजगारहि पुष्ट ॥ १६ ॥
कोई दसही देय कर, लेते क्रेडिट बिल ।
देसावर में माल सौ, बीजक परगे मिल ॥ १७ ॥
देवाले के आसरे, हो जबही रुजगार ।
कौन मुकाबिल कर सके, हिन्दूको बैपार ॥ १८ ॥

साक ॥ २४७ ॥

अपनी ओखी कहन की, देहु न काहू सीख ।
बिन मांगे मोती मिले, मांगी मिले न भीख ॥ १ ॥
मूरख दुख दिखलाय कर, और दिखाय अभाव ।
विनय बचन से चाहते, धनि से धन निकलाव ॥ २ ॥
उलटी बात बजार है, सच्चा साक हराय ।
कड़ा रहे अरु बे गरज़, कड़ी बाते धन पाय ॥ ३ ॥

जगमें तब तक आब है, गरज न काहु सुनाय।
स्वारथ की बातें चली, आब तुरत बह जाय ॥ ४ ॥
कर दलालके मारफत, गर्ज हि की जो काम।
गरज गयी दल्लाल सिर, अपना आंट हि आम ॥ ५ ॥
लेना देना रख खरा, हो बजार में नाम।
जिसकी साक बजार मे, पूंजी का क्या काम ॥ ६ ॥

गुजरान ॥ २४८ ॥

जगमें इक गुजरान को, पायी है सब जान।
अती धनी जो होत हैं, वह भाग्य हि धन मान ॥ १ ॥
मूरखता जब तक रहे, जब तक प्रबल फरेब।
बड़े धनी हूं भाग्य मे, तबही तक भर जेब ॥ २ ॥
जगमें जितना बढ़ चले, समझ बूझ अरु ज्ञान।
धनि होना तब बन्द हो, रह जावे गुजरान ॥ ३ ॥
चाहे जो कोई काम कर, सब में है गुजरान।
धनि होना जो चाहते, रहत वही हैरान ॥ ४ ॥
थोड़ा जो कोइ करत है, आवत अपने काम।
बिन प्रताप बहु करत जो, होत बुरी अंजाम ॥ ५ ॥
खेती बारी चाकरी, और कही बैपार।
इथ कारी आटी कहो, सबहि गुजर रोजगार ॥ ६ ॥

क़र्ज लेन देन ॥ २४९ ॥

धनदे क्लेश बुलावनो, करज़ देन को काम ।
धर्म शास्त्र वारन करे, और करे इसलाम ॥ १ ॥
बन्धक भोग न दोष है, नहि बैपारहि क़र्ज़ ।
चढ़ता बैपारी न जो, उसको है नहि फ़र्ज़ ॥ २ ॥
दबता बैपारी जो है, करे बज़ार हि नास ।
गिरते का चढ़ना कठिन, झट पट करी उदास ॥ ३ ॥
मीत-अरु हाकिमके लिये, कहते मुंह नहि मोड़ ।
बाज़े ख़र्च एक जान के, आस लेन की छोड़ ॥ ४ ॥
सूद ख़ोर को सब जगत, करते बहुत हकीर ।
दया कि उनके मनहिमें, रहत न एक लकीर ॥ ५ ॥
बड़े बड़े जो घर गये, राजा अरु ज़मिदार ।
सूद ख़ोर से क़र्ज़ ले, होते गये उजार ॥ ६ ॥
सूद ख़ोर अति कठिन जो, उनका है इतिहास ।
सुख जीवन देख्यो नहीं, बहु दरशी गन खास ॥ ७ ॥
क़र्ज़ लेन आदत न हो, देता नहि कोई क़र्ज़ ।
बड़ी बुरी आदत यहै, बैपारहि नहि हर्ज ॥ ८ ॥
निज खरचन के क़र्जकी, आदत पड़ि एक बार ॥
फेर जनम भर क़र्जसे, नहि बाकी उद्धार ॥ ९ ॥
बुद्धिमानको काम यह, घट कर बेचे चीज ।
तऊ नहीं बोवत कभी, क़र्ज़ लेन की बीज ॥ १० ॥
जगमें ऐसे जनहु है, यों हीं बहुत सहाय ।
करज लेय कर त्यागदे, दरशन करत लजाय ॥ ११ ॥

मातवरी किसकी ? ॥ २५० ॥

एक टका हू जेहि बचे, खरचे खुरचे बाद ।
सूदहु कुछ पाता रहे, राखो यह तुम याद ॥ १ ॥
पूंजी उसके हो न हो, देख भाल ईमान ।
काम नहीं कुछ देखना, मातब्बर ही जान ॥ २ ॥
खरचे बाद बचत नहीं, पूंजी लाख हजार ।
ब्याजहु देना पड़त है, हो वह साकेदार ॥ ३ ॥
तो भी उसको मातवरि, बहु दरशी नहि लेय ।
देन लेन जेहि ज्ञान हो, पैसा एक न देय ॥ ४ ॥
जो वस्तु प्रति दिन घटे, एक दिन उसका नास ।
नाशहि देखत आंख से, मूरख भोंकी खास ॥ ५ ॥

धनका बर्ताव ॥ २५१ ॥

तपको साधन राखनो, दानहु की विस्तार ।
राखत रीत सुभाव यों, धन गये हो न बिगार ॥ १ ॥
ताल छांह सम धन गिनो, नहि इसका बिश्वास ।
नष्ट भये नहि कष्ट हो, ऐसा कर अभ्यास ॥ २ ॥
धन रहते वह बीज बो, धन गय फलको पाव ।
ठाकुर अथवा देस हित, ऐसे काम लगाव ॥ ३ ॥
धन बरते इस भांत, काम काज बहु गुण बढ़े ।
नहि नष्ट हि भटकात, बहु प्रकार उपकार हो ॥ ४ ॥

साधु जनन के काम में, धन से दे घटकाय ।
यद्यपि धनहू नष्ट हो, बहु जन रहे सहाय ॥ ५ ॥
धन या बिध नहि छाड़नी, बंसहि कर दे लूंज ।
आपस में सब शत्रु हों, घर झगड़े की पूंज ॥ ६ ॥
धन यौजन यों कीजिये, बंसहि जो बेकार ।
शिक्षा बिन कुछ नहि मिले, केवल एक अधार ॥ ७ ॥
नहि विवेक जिस ज्वानके, उसको धन बल होय ।
ज्यों बन्दर हथ नारियल, फल एकहु नहि होय ॥ ८ ॥
जगमें बहु उपदेश पर, चलत बिधाता राह ।
सुधरें जो सब कोइ हो, हो सिल्सिला तबाह ॥ ९ ॥
लक्ष्मि स्थायी एक घर, कर सकता नहि कोय ।
जो घटके धन एक घर, नया धनी नहि होय ॥ १० ॥

लाभ ॥ २५२ ॥

श्रमसे सूद अरु झौंकसे त्रिविध लाभ को द्वार ।
चौथो द्वारहि भाग्यको, यही लाभ है चार ॥ १ ॥
बिन फ़रेब अरु मूर्खता, मिलत भाग नहि धन ।
पुरुषारथवाले पुरुष, देते उधर न मन ॥ २ ॥
पुरुषारथ बिन भाग्य धन, लाभ अगर हो जाय ।
महा तपस्या के सिवा, हज़म किया नहि जाय ॥ ३ ॥
आलस और बिलासिता, रोग सहज लगि जाय ।
बहति नदी सम लक्ष्मी, सबका हक़ हो जाय ॥ ४ ॥
हाथ लगे जिसका जिधर, उधरहि जाय बिलाय ।
जग कुबेर भण्डार में, या बिध धन खंड जाय ॥ ५ ॥

घोड़े गन्धी गायक-अरु, हलवइ बेश्या भांड़ ।
कुंजेर दूत हरे जौहरी, कपड़े शीशे भाड़ ॥ ६ ॥
भागहि धन दो भाग है, दूषित एक समाज ।
चोरी और फ़रेब की, ऐसी बहुतर काज ॥ ७ ॥
दूजी चलित समाज की, उसके बहुत प्रकार ।
पुरुषारथ वाले पुरुष, मारत उस पर धार ॥ ८ ॥
मुर्देकी धन भूम धन, अरु दत्तक ही पाय ।
जूआ में वा खेलमे, बे मिहनत मिल जाय ॥ ९ ॥
और निलामहुमे मिले, इश्तहार लुकवाय ।
खरीदारकी घूस दे, सस्ता ले बिचवाय ॥ १० ॥
सूदहु पर भी सूद हो, काटा बट्टा खांय ।
नगद जवाहिर धार कुछ, रजिस्टरी बनवाय ॥ ११ ॥

सच्चा लाभ ॥ २५३ ॥

सच्चा लाभहि है वही, हरजानिब फल जाहि ।
न जो भाग एक लाभ हो, कुफल भाग कोइ बाहि ॥ १ ॥
जिसमें कुछ भी कुफल हो, वह फल सच्चा नाहि ।
तार तम्यके भेदसे, मूरखता बल या हि ॥ २ ॥
बंटा ढकना होय ज्यों, पहलदार में चांट ।
घर चांट हि जब मिल गयो, सब घर मिलता साट ॥ ३ ॥
चोरी को जो लाभ है, गिनो नही वह लाभ ।
शुद्ध लाभ उसको कहे, जिसमें लाभहि लाभ ॥ ४ ॥

नहि काहूको कष्ट हो, नहि काहू को द्वेष।
प्रगट किये नहि लाज हो, सत्य लाभ यह शेष ॥ ५ ॥
कोइ काम का नाम ले, कह सकता नहि कोय।
फल देखे पर कह सके, सच्चा लाभ जु होय ॥ ६ ॥
जीवन से जंहं काम है, सच्ची बात न लाभ।
जगमें जब तक जीव है, अस्थिर सच्चा लाभ ॥ ७ ॥

अनायास लाभ ॥ २५४ ॥

अनायास जो लाभ की, भनक पड़े जब कान।
देखहु हक अपनो प्रथम, तब लेना तू ठान ॥ १ ॥
मिहनत सूद अरु झोंक की, रहे जो उसमें लाग।
तभी तो अपना हक समझ, नहीं तो दूर हि भाग ॥ २ ॥
वेहक लेने जात जो, आवत निजहु गंवाय।
ऐसो लाभ हि देख कर, मूरख ही ललचाय ॥ ३ ॥
चोरी माल खरीद में, कोइ जूआकी नाम।
कोइ नवाबहि को ठगन, कोइ रसायन काम ॥ ४ ॥
कोई लौट बनावने, अरु ऐसे ही काम।
जूआ चोरी से मिलहि, बनत असामी नाम ॥ ५ ॥
बदमाशन देते तिड़ी, लोभ हि जाय भुलाय।
बड़े होन की जात है, घरको देत गंवाय ॥ ६ ॥

धनागमकी राह बदलना ॥ २५५ ॥

धन आवत जेहि राहसे, उसी राह से जाय।
इस कारन ज्ञाता पुरुष, सावधान हो जाय ॥ १ ॥
धन पा उस रुज़गारकी, औरों के लिये छोड़।
फल पा उद्यम शिथिलहो, सहज काम एक जोड़ ॥ २ ॥
क्योंकी ताज़े उद्यमी, निश्चय देहि हराय।
तुम गाफ़िल अभिमानमें, उसी राह धन जाय ॥ ३ ॥
कामयाब हो इन्द्र पद, बलि है उद्यम शील।
बली पड़े अभिमानमे, खाते बामन कील ॥ ४ ॥
बचे तो बलिही इन्द्रहो, अटल नियम यह जान।
इन्द्र नही सवधान हो, धन चय अरु अपमान ॥ ५ ॥
भले इन्द्र जब जब हुए, बलिसे लड़न न जांय।
खुद बलिको अभिषिक्त करि, धन अरु मान बचाय ॥ ६ ॥

जाति विप्लव ॥ २५६ ॥

अपना पेशा बदल करि, अन्य करै उद्योग।
फल पाना अति कठिन है, घटे कोट दुर्य्योग ॥ १ ॥
जनमत ही निज काम में, रहता है संस्कार।
देख देख बिन सीखही, आ जाता है कार ॥ २ ॥
जनमत करता काम जो, कैसहु मूरख जान।
बढ़ा चढ़ा होता कहीं, पंडित करता आन ॥ ३ ॥

नही सुबीता होत है, उनसे कभि यह जान।
ज्ञाता जो है नीतके, जानत यही बखान ॥ ४ ॥
कोइ काम नहि दीजिये, फल पाने के हेत।
जो पक्का होता नही, ज्ञान काम संकेत ॥ ५ ॥
मूरख घर शिक्षा चले, पंडित बिरला होय।
मेल छूटि ग्लानी बढ़े, सुखहू दुर्लभ होय ॥ ६ ॥
बिरले ऐसे साहसी, बदल दियो जिन जात।
कामयाब हो जस लियो, हुआ न कुछ उत्पात ॥ ७ ॥
बहुतेरे इतके रहे, रहे न उतही बीच।
मूड़ मुड़ा फज़ीहत हुए, पहले से भी नीच ॥ ८ ॥
जीवात्मा जब देह से, जब ही करत प्रयान।
गुण विशिष्ट जो जीव हो, खोजत सम अस्थान ॥ ९ ॥
याते अपने काम में, पूर्व जन्म संस्कार।
बड़ी मदद देती यहां, मिलत न बदले कार ॥ १० ॥

शोचनीय बात ॥ २५७ ॥

बेपारी आदी सभी, होते जो बुधमान।
काम छोड़ रंग रंग की, जूआ काढ़त छान ॥ १ ॥
नाम माल को लेय कर, बिकरी होय खरीद।
माल जाल कुछ भी नही, हार जीत अब नीद ॥ २ ॥
सौ मन गेंहू राम से, दर दो रुपये भाव।
बेच्यो अव्वल करार पर, चैत मास में पाव ॥ ३ ॥

चैत मास की पून को, ढाई गेंहू भाव।
टर आठ-आने लाभ के, जीत श्यामजी पाव ॥ ४ ॥
या बिध खेल अफ़ीम को, अरु पानी की चाल।
गेहुम तीसी रूई हूं, खेलत बड़े बड़े लाल ॥ ५ ॥

मेले में जाना ॥ २५८ ॥

बहु मूरख एकत्र हों, और जहां पशु होय।
बिना खास अति लाभ के, जाना उचित न कोय ॥ १ ॥

काम काज की बाधा ॥ २५९ ॥

अंगरेज़ी जबसे भई, ऊंचे भये ख़्याल।
यह बाधा तब से बढ़ी, आलस ऐशहि चाल ॥ १ ॥
भारत में बहु काम को, चलन नहीं यहि काज।
ऊपरी लाभ बिना कोई, नहि आते हैं बाज़ ॥ २ ॥
नियमित लाभ हज़ार हो, ऊपरी हो नहि एक।
अपने पर अरु आय भी, नहि खुश होय बिशेक ॥ ३ ॥
नियमित हो कम लाभ भी, ऊपरी भी कुछ होय।
यामे हरषित सबहि हों, बुरा कहें नहि कोय ॥ ४ ॥
याही ते सिरजित भये, ग़निमत आदी शब्द।
लूट माल ग़नीमत कहे, गिनत बड़ो यह लब्द ॥ ५ ॥
चोरी धन ही को नहीं, वरञ्च चोरी साथ।
जब तक सिर पर नहि चढ़े, काम करे नहि हाथ ॥ ६ ॥

सबसे बड़ि बाधा यही, मिले काम का लोग।
सुख उपाय उसका करो, हो बिलास तब रोग ॥ ७ ॥
हाथ पैर की चालना, रुकती धीरे धीर।
मुंह को बल तब बढ़त है, बलहू रहत शरीर ॥ ८ ॥
जेहि चाकर जितने सुखी, करे उतना कम काम।
याते धनि गण लेत नहि, भलो करन को नाम ॥ ९ ॥
इस कारण कहते सभी, बिन अपने नहि काज।
एक चना क्या कर सके, भाड़हु को क्या भाज ॥ १० ॥
यह बाधा तबही मिटे, जनमत बाप-अरु माय।
काम करन के रोग को, दे अभ्यास लगाय ॥ ११ ॥
अफ़ग़ूनी ज्यों बिन निशा, कष्ट पाय बहुतेक।
त्यों खाली नहि रह सके, काम काज को फेक ॥ १२ ॥
जंगली धांगड़ कोलभिल, सत्य काम इन होय।
बाधा इन केहि काम नहि, ठगि प्रपंच नहि सोय ॥ १३
सभ्य संग जब ही भयो, इन पर भयो प्रकास।
सतयुगिया कलि रूप हो, खो बैठो सब आस ॥ १४ ॥

बिपत में रोज़गार ॥ २६० ॥

बिपत पड़े जब मनुष पर, देखे वक़्त ख़राब।
करो तबहि रोज़गार यह, रहे आब अरु ताब ॥ १ ॥
खरा रहे ले देन हूं, बनी रहे जो साख।
धनकी आफ़त नहि रहे, जो हो मिहनत ख़ाक ॥ २ ॥

करी नौकरी काम ही, दल्लाली मुख्तार ।
धंधा मालहि को न कर, मिहनत ही रख सार ॥ ३ ॥

पराधिकार चर्चा ॥ २६१ ॥

चर्चा पर अधिकार की, स्वामी हित ही काज ।
करते सो फल पात है, ज्यों वह गदहा आज ॥ १ ॥
एक धोबी को खर रह्यो, अरु एक कूकुर द्वार ।
जूठ कूठ खर ही मिलत, कुकुरहि पर उपकार ॥ २ ॥
लादी लादन फल प्रतच्छ, रखवाली अन देख ।
कूकुर को पूछत नही, खर ही दया बिशेख ॥ ३ ॥
चोरहि दीन्हो सेंध जब, गधा कहत रे स्वान ।
धनी जगावन काज तोहि, बैठा क्यों चुपकान ॥ ४ ॥
कूकुर कहे रे मूढ़ सुन, स्वामी शिक्षा नीत ।
कर्तव्य-अपनी मोड़ कर, उचित सिखावन मीत ॥ ५ ॥
मानत तेरो काम ही, मेरो मानत नाहि ।
मूरखता अकृतज्ञता, दूर करहु जग माहि ॥ ६ ॥
गदहा भक्तीसे चला, करने पर अधिकार ।
सीपों सीपों विकृत सुर, चिल्लाना लगतार ॥ ७ ॥
टूटत कच्ची नीद ही, रजक लेय हथियार ।
मारत मारत मारही; प्राण हि दियो निकार ॥ ८ ॥

खेती ॥ २६२ ॥

चास हि खेती जीव है, कोड़न और निकान।
उत्तम बीज-अरु सींचना, काम समय पर जान ॥ १ ॥
यही काम जो ठीक हों, नहीं खाद हू काम।
गोबर धूर गिदौड़ हूं, पाय तो फिर क्या नाम ॥ २ ॥
नहीं खेत जेहि आल है, वृथा कहत तेहि चास।
अटकत जल नहि खेतमें, रहत चरी अति वास ॥ ३ ॥
काटत जो बरसात में, कहते भदइ फ़सिल।
जाड़ा कहत खरीफ़ है, रब्बी गरमी मिल ॥ ४ ॥
अदरा माही पूजना, जा, पलास की गाछ।
दूध आम ब्राह्मण हि दे, देखो बीज हि पाछ ॥ ५ ॥
तीन बीज पालाससे, तीन फसिल हो ज्ञान।
पूरी बीया पूर्ण हो, कमतर कमतर जान ॥ ६ ॥
तीन बीजमें कौनसे, कौन फ़सिल पहचान।
अब तक निश्चय नहि भयो, पड़त अन्तमें जान ॥ ७ ॥
जहं तक व्यापक फल यही, बीज हो एक समान।
इरिक किर्तीमें खेतके, गाछ रोप फल जान ॥ ८ ॥
जल सिंचनको आसरा, नहि जो खेती होय।
दैव आसरे खेत जो, करत न जल्दी कोय ॥ ९ ॥
मानुष पुरुषारथ दियो, और जन्तु नहि कोय।
तेहि भार तेहि हाथमें, जन्तुन दैवहि होय ॥ १० ॥

जन्तुनको रोवां दियो, मोटो दियो है खाल।
घास भरो मैदान दे, देखो मानुष हाल ॥ ११ ॥
याको कुछ भी नहि दियो, दे पुरुषारथ ज्ञान।
निज काम हि निज हाथ दे, खबर लियो नहि आन ॥ १२ ॥
मानुष पशु सम होय ज्यों, राखे दैव हि आस।
जल सिंचनके आसरे, बिन जा खेत हि पास ॥ १३ ॥
ऊंची भूम हि देख कर, माटीसे दे घेर।
बरषा जल रख बांध कर, आहर कहते फेर ॥ १४ ॥
नदिसे पइन हि काटके, अथवा वहटा होय।
बरषा खीच हि जब पड़े, निखरच पटता सोय ॥ १५ ॥
पकई पड़ि अहरानमें, रब्बी बिस्वा बीस।
उद्यम जब पूरो करो, तब हि दे जगदीस ॥ १६ ॥
अहरा नहि बंगालमें, चटकत जल भरे धान।
पटना और बिहारमें, अहरा बहुत बचान ॥ १७ ॥
रब्बीमें सिंचन बने, कूआं हीं से सार।
लाठा कुण्डो मोट हू, चांड़ चलत लगतार ॥ १८ ॥
और करींगहि होत है, नदि पोखर तालाब।
दुबवा तिघवा करहि के, चाहो जहं ले जाब ॥ १९ ॥
धान जनोरा बाजरा, अरहर कहत खरीफ।
सुगम अगहनी कहत हैं, करते यही शरीफ ॥ २० ॥
माघ चले हर जाहि घर, अथवा कोड़े भूम।
सो बड़भागि गृहस्थ घर, अन्न हि राखन धूम ॥ २१ ॥
माघ हि जोता खेत हो, बिन जल जोता जाय।
रोहनिया बावग करे, दैब सके न उड़ाय ॥ २२ ॥

रोहन में बावग करे, बीमा तेहि बिक जाय ।
भरत नहीं कभि धान वह, चोर भलइ ले जाय ॥ २३ ॥
सूखे धान हि छीटना, कहें बावग तेहि जान ।
कादो में जो छींटते, लेवा उसको मान ॥ २४ ॥
एक जगह में बीज दे, रोपे अन्य स्थान ।
उसीको सब कोइ कहत हैं, यह रोपाको धान ॥ २५ ॥
साठी हूं एक धान है, भदइ फसिलके माह ।
बरखा रहत हि काटते, औस बंगालि माह ॥ २६ ॥
अदरेका लेवा कहें, बड़ भागिन घर होय ।
ठीक समय खेती बने, दूजो लाभ न कोय ॥ २७ ॥
पुक्ख पुनर्वसु बोवते, बीज हि को तब धान ।
अश्लेषा मग्घा कहें, रोपहु कादो सान॥ २८ ॥
पक्के जोइ गृहस्थ हैं, हो पानी आराम ।
रोहन अदरा पुनर्बसु, बीज बपनको काम ॥ २९ ॥
पुर्वामें भी करत हैं, रोपा को जो धान ।
बृथा परिश्रम आध हो, खखरो आधा धान ॥ ३० ॥
श्रावण कृष्ण हि पंचमी, कहते हैं नग पांच ।
पहरोपा उस दिन जो हो, औसर पायो सांच ॥ ३१ ॥
बड़ भागी गिरहस्थ वह, रोपा दिन एक शेष ।
इकसां उपजे धान सब, कुछ भी नहीं विशेष ॥ ३२ ॥
एक दिनहि के बीच में, रोपा खतम न होय ।
किता किता एक दिन करे, जनम साथ सब होय ॥ ३३ ॥
पहिले थी यह रीत हो, सब मिल गांवके गांव ।
किता किता करते खतम, उत्सव खाव खिलाव । ३४ ॥

बरषा उलती नहि चुए, तूना कहते ताहि।
उलती चूवन लग गई, चूना कहते वाहि ॥ ३५ ॥
कहत कृत्तिका तूव जो, बड़ी नहस यह बात।
सात नक्षत्र मारता, गड़बड़ हो बरसात ॥ ३६ ॥
मिरगिसरा भर जो तवे, विषधर हो विषनास।
हल कबहू नहि जोतना, जब तक मृगकी बास ॥ ३७ ॥
श्रावण शुकला सप्तमी, छिपके ऊगे भान।
बरषा तब तक होयगी, जब लग हो देवठान ॥ ३८ ॥
अहरा बांधन खोलना, करना यही हिसाब।
आगम बरषा जानिके, जलकी राखहु दाव ॥ ३९ ॥
हथिया बरखे खूब ही, चितरा जो मंडराय।
कहैं किसान घर बैठ ही, नाचत कूदत गाय ॥ ४० ॥
भुट्टा मडुवा मूंग है, सांवा कोदो कौनि।
साठी बोड़ा उड़िद है, कहत भदइ ही जौनि ॥ ४१ ॥
छुट बढ़ बरषा भदइ भलि, पूरी भलि है धान।
धान पानकी कहत है, चहिये नित अस्नान ॥ ४२ ॥
भदइ भई जिहि सालमें, खितिहर घर आनन्द।
खानेको भरपूर हो, नहीं दुक्ख नहि दन्द ॥ ४३ ॥
गहूं चना मसुरी मटर, जौ जै कुर्थि खिसारि।
अरहर हूं तेहि साथ हो, बांगा हू चकवारि ॥ ४४ ॥
रेंड़ी तिल बरें कहत, तीसी सरसो दान।
तिन्हिहन बीज हि, कहत हैं, रब्बी फसिल हि जान ॥ ४५ ॥
ढेला अपटा होत है, धूली होती सीच।
बिन पटाय अपटा कहै, सपटा सोचन बीच ॥ ४६ ॥

अपटा रब्बी धान हो, सपटा रब्बी होय।
कोयरी कुरमी करत है, चिकनी खेती जोय ॥ ४७ ॥
मिहनत हरहूं अधिक हो, ज़मी होय जब कम।
पैदा तब ही होत है, भल मानुष हो गम ॥ ४८ ॥
चिकनी खेती कहत है, बांगा हो अरु बारि।
ओर किराना कहत हैं, होय तरी तरकारि ॥ ४९ ॥
मटर खिसारी कहत हैं, हथियामें जो बोय।
क़ीम्हो ग्यारह दानें हो, चिता नव हो होय ॥ ५० ॥
स्वातीको कहें सात हैं, क़ीमी दाने होय।
समय गये क्या होत है, बैठ किसान हि रोय ॥ ५१ ॥
बरखा जल जहं नहि जमे, ऊंची होय ज़मीन।
पहिलहि बो उपजाय ले, चना मटरहि नवीन ॥ ५२ ॥
नव रात हि देवी चढ़े, चना किराव नवेद।
उद्यम शील गृहस्थको, धनका रहे नहि खेद ॥ ५३ ॥
सहज हुं खेती जब कहे, और सहज है धान।
यों तो रब्बी हाथ रख, जब देरहु बवमान ॥ ५४ ॥
लाही कुहरा कहत है, अति बरषा अरु शीत।
कीड़े शत्रू है बहुत, पाला हूं ले जीत ॥ ५५ ॥
अगहन दूना अन्न हो, कहते माघ सवाइ।
डेढ़ा बरसे पूस हो, फागुन घरसे जाइ ॥ ५६ ॥

अशराफ़की खेती ॥ २६३ ॥

खेती है अशराफ़ की, केवल भाग्य हि आस ।
मिहनत तो खुद हो नही, लाभ मजूरहि खास ॥ १ ॥
ससती करकी भूम हो, कमहु मजूरी होय ।
बे खरचे सिंचन बने, जो पूरी श्रम होय ॥ २ ॥
होय हुकुम परजान पर, हलवाही भी पाय ।
सबके पहिले काम हो, यह ही भाग्य कहाय ॥ ३ ॥
भागसे जितना लाभ है, लगे वही तब हाथ ।
अशराफ़ों को चाहिये, भागहि खेती साथ ॥ ४ ॥
दामहि मिहनत जो लगे, पूरा हो नहि काम ।
तब पूंजी कुछ चाहिये, घर सेती दे दाम ॥ ५ ॥
जो कोइ अपने हाथसे, पकड़े नही कुदार ।
खेती से फल हो यही, बेचे वह घर बार ॥ ६ ॥
पूरी खेती है वही, हल जो पकड़े आप ।
आधी उसकी कहत हैं, हल संग रहता चांप ॥ ७ ॥
जिसने पूछा और से, कहां चलत हल आज ।
बैल-अरु खेती छोड़ कर, उचित उन्हे जा भाज ॥ ८ ॥
थोड़े दिनमें दोष यह, सुधरे शहरों बीच ।
होगी जब प्रतियोगिता, मज़दूरों के बीच ॥ ९ ॥
ठीके पर सब काम हो, चुकती उमदा काम ।
एक एक पर गिरह्नि कर, सस्ताहू हो दाम ॥ १० ॥

बिगड़े पर दर होयगी, जीत कोउ नौड़ान ।
कटनी झाड़न आदि सब, हो ठीके पर जान ॥ ११ ॥
इतने पर अशराफ़ को, हो खेती में लाभ ।
जमी अगर बेशी रहे, घर बैठे धन चाभ ॥ १२ ॥
कहत पराशर हैं मुनी, ब्राह्मण जो तन जाय ।
जनक खुदहि हल जोतते, सीता को फल पाय ॥ १३ ॥
छूट गई यह रीतही, लोग भये ऐयास ।
चासा दिहकानी कहे, लोग हंसत हैं तास ॥ १४ ॥
हल मजुरि दस लाभ हो, अन्य काम के माहि ।
निज हल ताहि चलायवो, कहते काज बृथाहि ॥ १५ ॥

अंगरेज़ी खेती ॥ २६४ ॥

अंगरेज़ी खेती बिधी, चलन चाह सरकार ।
धन खोयो बहु तर तज़, निकल्यो नहि दरकार ॥ १ ॥
भारत खेती जीविका, नहीं माल रुज़गार ।
चार किता दस बंद हैं, भूम नहि लगतार ॥ २ ॥
पूंजी हूं घर में नहीं, कर्ज़ लेय दो चार ।
डेढी सूदहि जात है, कहं बिज्ञान गुज़ार ॥ ३ ॥
कहत तजरिबा कृषकको, भारत में है कार ।
उन करतब के सामने, बिज्ञान हि गय हार ॥ ४ ॥

खेत का खाद ॥ २६५ ॥

ख़ाद कहें बहु भांत को, दाम लगत जो बेस ।
भारत में विहवार नहि, लगत खरच की ठेंस ॥ १ ॥
भारत में घासहि अधिक, धूप ओस का सार ।
और पटावन जल कहें, ज़ादा यहि विहवार ॥ २ ॥
चिकनी खेतिन में कोई, धूर गिटौड़हि खाद ।
क्वचित भेंड़ बैठावते, सूखा गोबर याद ॥ ३ ॥
विष्टा हू व्यवहार नहि, शहरहि धन बरबाद ।
खल्ली देते कमहि हैं, तऊ न श्रम फल बाद ॥ ४ ॥

गोत ॥ २६६ ॥

गोतोंमें अब खरच है, भूसा और पोआल ।
इसको दर इतनो चढ़ो, अनसे बढ़ कर माल ॥ १ ॥
दे बरसात गृहस्थ जन, कुट्टी काट जुआर ।
सदा अगर दे गोत यह, दूजो नहीं अहार ॥ २ ॥
जल पटाय जो यह करें, जनमत बारह मास ।
दोय महीने बीचमें, चारा की ही आस ॥ ३ ॥
या बिध खेत हि एकमें, उपजत छः ही बार ।
कट्टे मे दस बोझ हो, पशुन हि बीस गुजार ॥ ४ ॥
तीन बिघे जो खेत हों, प्रति दिन कट्टा एक ।
काटे अरु बोये सदा, न हो कमी दिन एक ॥ ५ ॥

कढ़े में दस बोझ हो, बिगड़े में सब दोय ।
बोझे बारह सौ बने, छयो बार जो होय ॥ ६ ॥
भूसे के दर बेच लो, तौ भी लाभ अपार ।
लछमी भूमी में बसीं, खोजत फिरो बज़ार ॥ ७ ॥
छेकत ऊखहि खेत को, बरस दोय हो काल ।
चीना और जुआर हो, जनमे बारह हाल ॥ ८ ॥
लाभ सवाई सौ कहे, दूनो है नहि लाभ ।
फेर चले सोइ लाभ है, काल जात है चाभ ॥ ९ ॥

कन्या का बर ढूढना ॥ २६७ ॥

कन्या खोजत रूप है, माता हो धनवान ।
पण्डित चाहत आप है, ज्ञाति कहे कुलमान ॥ १ ॥
उदासीन चाहत यही, जहां भलो मिष्टान ।
अपने स्वारथ को सभी, करते बर सन्धान ॥ २ ॥
धीरज*खोजत एक हो, कर सकता जो काम ।
मनसे कामहि लगत है, ऊअन को नहि नाम ॥ ३ ॥
पिता दरिद्रहि होय तो, कन्या घर नहि जाय ।
जलहू वाको ले नहीं, और नहीं कुछ खाय ॥ ४ ॥
नाती जब तक हो नही, तब हो तक यह जान ।
नाती होने पर कहें, हो कन्या घर मान ॥ ५ ॥
धन यथेष्ट जेहि पुरुष है, वाको नहि है दोष ।
एक खाय दे चारहो, धन देकर संतोष ॥ ६ ॥

नातेमें करना नहीं, कभी ब्याहकी ठीक ।
निष्कर्मा सन्तान हो, दृढ़ मानो यह लीक ॥ ७ ॥

बिबाह में झगड़ा ॥ २६८ ॥

प्रथम झगड़ हो ब्याह में, देन लेन की बात ।
दूजो झगड़ा होत है, सिटना ही के गात ॥ १ ॥
तीजे ठट्ठा अरु हंसी, खान पीन के माह ।
चौथा झगड़ा दच्छिणा, अधिक पुरोहित चाह ॥ २ ॥
बिन झगड़े जो ब्याह हो, अति हर्षहि के साथ ।
बुरे फल-उसके कहत हैं, देखत हाथो हाथ ॥ ३ ॥

खर्च नाधना ॥ २६९ ॥

कितनाहूं कोइ खर्च करि, बिबाहादि सब कार ।
साधत है चतुराइ से, पर अपयस ही सार ॥ १ ॥
बड़े खर्च के काम को, नाधत है जो जान ।
बाढ़त सबहि खियाल तब, पूरा कठिनहि मान ॥ २ ॥
जितनी ताकत ख्याल है, साधन वह नहि राह ।
कमी ज्ञान हो जब भयो, अपयस ही हो ताह ॥ ३ ॥
छोटो नाधन काम को, सकुचो रहत खियाल ।
तनक चमक भी होनते, वाह वाह ही हाल ॥ ४ ॥
जग जस अपयस भय नहीं, भय लछमी अपमान ।
दो पैसे रोज़गार करि, लाओ तब ही जान ॥ ५ ॥

सीटना ॥ २७० ॥

जगके औटन में सदा, लिपटे है दिन रात ।
तनक भये बिन दिल्लगी, रटना नही सुहात ॥ १ ॥
जेसी रुचि जिसकी हुई, ले दिल्लगी निकाल ।
पंडित कबिता रस पिये, मूरख गालम गाल ॥ २ ॥
रुचि बदली तब दिल्लगी, बदली और हि चाल ।
रोजीना तो बदल गई, रही ब्याह में गाल ॥ ३ ॥
सब की रुचि तो सम नही, होती नीच अरु ऊंच ।
गुजे ख्याल खुल जात हैं, रुचि है भली कि पूच ॥ ४ ॥
जब कोइ बातहि सुनत है, बंधे अकार प्रकार ।
तब हि बात वह मन बसे, ध्यान करहि आकार ॥ ५ ॥
सती साध्वी गाल को, ध्यान करे आकार ।
कैसा वाको जी कहे, नारिन करो बिचार ॥ ६ ॥
सिटना में एक लाभ है, नारिन की पहचान ।
पर पुरुषन संग गाल में, कैसो वाको ध्यान ॥ ७ ॥

दिल्लगी ॥ २७१ ॥

काम काज के समय में, करके पूरा काम ।
थकनी दूरी करन को, दिल बहली है नाम ॥ १ ॥
अपने अपने ख्याल पर, लेय दिल्लगी ठान ।
दिल्लगी किहि तौर में, नीच ऊंच पहचान ॥ २ ॥

नीचन की है दिल्लगी, धुक्कम्पीट-अरु गाल ।
ऊँचोंके आमोद में, उमदा होय खियाल ॥ ३ ॥
गीत वाद्य रस काव्य में, समा लोचना देस ।
अथवा कसरत खेल में, कोई वा उपदेस ॥ ४ ॥
साले बहनोई जहां, मिलत कैसहू काल ।
नीच रुची यह जानिये, हो जो गालम गाल ॥ ५ ॥

मामी भौजाई से बर्ताव ॥ २७२ ॥

हिन्दू सभ्य समाज में, मामी अरु भौजाइ ।
माता के सम जानते, यही रीत बरताइ ॥ १ ॥
बहु समाज में रीत यह, चलन नहीं है आज ।
गुरु पत्नी गण बीच में, हंसि ठठोल नहि लाज ॥ २ ॥
जो कुरीत अब चलन है, बहु अनार्य्य के माह ।
आर्य्यहु वाको लेत है, लज्जा हो नहि ताह ॥ ३ ॥

जात रीत ॥ २७३ ॥

खाने को उसवाल है, पहिरन को श्रीमाल ।
भाखत महेसरि जात है, पिहन खत्री चाल ॥ १ ॥
खत्रीन मे बूढ़ो मरे, करते हास्य तमाश ।
युवा मरत एक साल तक, नित हि सियापा वास ॥ २ ॥

दखिना भोजहि हो जहां, बिन न्योते नहिं जाय ।
ऐसे ब्राह्मण कमहि अब, देखन हीं सब पाय ॥ ३ ॥

चतुरों का ढंग ॥ २७४ ॥

चतुरोंके जब पास कोइ, जाता लेने काम ।
देखत ही बुझि लेत हैं, मतलब की जो ठाम ॥ १ ॥
बिना कहे कह देत हैं, उत्तर की जो बात ।
करि प्रसंग यों कहत हैं, वह बोलन नहिं पात ॥ २ ॥

खेल ॥ २७५ ॥

मेले में या सैर में, या बाहर जब जांहि ।
तबहो खेलन उचित है, मेली के संग नाहि ॥ १ ॥
गुरु जनके संग खेलनो, गंजीफा शतरंज ।
चौपड़ भी कुछ नहि बुरा, धीरज होय न रंज ॥ २ ॥
खेलों में एक और है, बड़ी बात की जांच ।
जो सुभाव खुल जात है, बैमानी या सांच ॥ ३ ॥
बे मतलब की बात में, नीयत बिगड़ी जाहि ।
स्वारथ पर मौका लगे, चीन्ह लेहु तुम ताहि ॥ ४ ॥

पंचायत ॥ २७६ ॥

अई सदी बीती नहीं, थी पंचायत रीत।
सभी तरह का मामला, घरही हार अरु जीत ॥ १ ॥
नहि जाते कोइ एक भी, सिविल कोट जम द्वार।
कोड़ी पाते एक नहि, वकील-और मुख़्तार ॥ २ ॥
छोटी जातन मे चलन, है अभि पंच विचार।
न्याय पंच जो देखलो, जुलहे और कहार ॥ ३ ॥
जिरह गवाही पंच की, देखे अगर वकील।
बार बार सीखन चले, सत्य निकालन कील ॥ ४ ॥
न्याय उन्हो का देख कर, शरधा अति मन होय।
सभ्य अदालत जानकी, इच्छा रहे न कोय ॥ ५ ॥
न दृष्टाम्प वकील फी, कोर्ट फीस नहि घूस।
नहीं खर्च कोइ एक भी, रंज नही मखसूस ॥ ६ ॥

मसादहा ॥ २७७ ॥

चुकती का जब लेख हो, काम करो इस भांत।
साची को इज़हार ज्यों, बने ठीक सब बात ॥ १ ॥
बदला दो सब सामने, दसखतहू वहि भांत।
बिना सिखाये साची, आप कहे सच बात ॥ २ ॥
जब कोइ लिखो दलील ही, जांची हालत बात।
नाम धाम अरु ग्राम की, अरु हिसाब की बात ॥ ३ ॥

कहत वकील हि देखते, केवल ही आईन ।
हालत पर निज ध्यान ही, रखते कहत प्रवीन ॥ ४ ॥
दस्तावेज़ हि देखते, जो वकील बिन दाम ।
उसका मत बिश्वास कर, केवल देखन नाम ॥ ५ ॥
चुकती कहते हैं सदा, पाप आर्य के बीच ।
क्यों कि चुकती भंग को, रोप्यो मूलहि खींच ॥ ६ ॥
क्षण भंगुर जग को कहे, चुकती करता कौन ।
एक डेग नहि हल सके, दैव नियम बिन जौन ॥ ७ ॥
मानव आपुस में सभी, एक एक होय सहाय ।
इसी नियम पर काम सब, बिन चुक्ती बन जाय ॥ ८ ॥

बन्धक बिकरी ॥ २७८ ॥

बन्धक रखना होय जो, अथवा होय खरीद ।
अटल धनहि के जांच की, करो लाख ताकीद ॥ १ ॥
ठगना जो चाहे अगर, बचने की नहि राह ।
बद नीयत जो लोग हैं, उनसे भागत साह ॥ २ ॥
साधु मनुष को देख कर, पूरा देकर दाम ।
बिन आचें ले तो उचित, कभी नहीं नीलाम ॥ ३ ॥
पहिले लिखो दलील ही, करो रजिष्टर ताहि ।
चार मास फिर देखके, रुपया दो तुम वाहि ॥ ४ ॥
संपत आंचो जाय के, जहां पड़ी है भूम ।
चाकर अरु परोसि से, पूछन करो हजूम ॥ ५ ॥

सर्वं रजिष्टरि और हूं, सर्वं अदालत माहि।
क़िस्त बन्दि खुर पोश हूं, डिगरी है की नाहि ॥ ६ ॥
बम्बइ अरु मंदरास में, अरु कलकत्ता माह।
सर्वं महाजन घर करो, बन्धक दलिलहि राह ॥ ७ ॥

मुक़द्दमा बाज़ी ॥ २७६ ॥

हालत पर रहो ठीक ही, करहु पेच आईन।
बातनको सब ठीक रखि, बदले अर्थ प्रवीन ॥ १ ॥
सच ही पर निर्भर करहु, कभी न झूठ मिलाव।
सचसे बिगड़े काम जहां, मोक़दमा हि उठाव ॥ २ ॥
देख अवस्था लिख हि कर, संग्रह करहु प्रमान।
सत्यमूलको देख कर, तभी मुक़दमा ठान ॥ ३ ॥
पहिले देख नज़ीर ही, मेल करहु भलि तौर।
जांच बूझ कर देख लो, कर लो बहुत हि ग़ौर ॥ ४ ॥
जो कुछ अपना खोट हो, पहिले ही दे खोल।
खोट काटनको राहको, हेतु सब हि दे बोल ॥ ५ ॥
हालतकी तक़रार जो, हो सकता परमान।
झगड़ा उसका छोड़ कर, आप हि लीजे मान ॥ ६ ॥
अरज़ी और जवाबमें, दसख़त ख़ुद हि फ़रीक़।
हालतकी दरख़ास्तमें, लिख कर दो तसदीक़ ॥ ७ ॥
लिखनेमें यह ढब रहे, बोलहु यही बिचार।
बाते उधरहि जा गिरे, उस प्रमानकी भार ॥ ८ ॥

पहिले नकल हि लेय रख, फीस डबल मत देय ।
वक़्त हि पर सब काम कर, बाजे खर्च बचेय ॥ ९ ॥
हक़ की जोड़ दलील हो, नकल अदालत होय ।
हक़ निज पर इक़रार हूं, संग्रह करलो सोय ॥ १० ॥
कागज़ जब ही दे जला, सुनो अदालत बीच ।
पहिल हि सब संग्रह करो, देखहु ऊंच न नीच ॥ ११ ॥
अरज़ी और जवाब हू, करना ही जब ठीक ।
और सलाह सबूत की, असल मुक़द्दमा लीक ॥ १२ ॥
जो वकील हो योग्य हैं, धार्मिक हैं मशहूर ।
खर्च पड़े जो कुछ सही, दिखलाना हि ज़रूर ॥ १३ ॥
बे सलाह के मामिले, भले नष्ट हो जांय ।
अकसर लोग बिहार में, यहि चपेट हो खांय ॥ १४ ॥

पशु प्रसव ॥ २८० ॥

अदन्त घोड़ी कहत हैं, कहत दुदन्त हि गाय ।
माघ भैंस जो प्रसव हों, कहत गुसइयां खाय ॥ १ ॥
भादो में सिंह सूर्य्य हो, तब जो गाय बियाय ।
ईश्वर शक्ती देय जो, यह पशु दान कराय ॥ २ ॥
पाव सुयाव हि देखके, पशु कर देना दान ।
फल दान हि का बहुत है, सोचो बहु दे ध्यान ॥ ३ ॥
भादव महिना माघ हूं, रक्षा पशु बहु भार ।
असमय प्रसव पशुन को, मालिक का धन ख्वार ॥ ४ ॥

गोपालन की आवश्यकता ॥ २८१ ॥

गृहस्थ अभागे हैं वही, जिनके घर नहि गाय ।
घर में धन बहु रहत हूं, लक्ष्मी धरत न पाय ॥ १ ॥
घर भर में दारिद्र हो, श्री कब हूं न दिखाय ।
लड़के बाले दीखते, ज्यों कंगला बन जाय ॥ २ ॥
गोमय क्रय करि लीपनो, ईंधन लाय जलाय ।
गोरस के नैवेद्य को, ठाकुर भी ललचाय ॥ ३ ॥
पैसे दे जल मिल को, करना दूध खरीद ।
मृत्वत्सा को फूक दै, दानिस्ता अरु दीद ॥ ४ ॥
मक्खन निकल्यो दूध भी, सब कोइ लेकर खाय ।
देव पितर के काम में, उचित न भोग लगाय ॥ ५ ॥
कच्चे दूध हि डारि के, किचुवा दही जमाय ।
वही दही सब लेत हैं, तनकहु नहीं घिनाय ॥ ६ ॥
तेल और चरबी मिल्यो, घो सब ले कर खांय ।
तौ भी सेवा गाय की, सब करना नहि चांय ॥ ७ ॥
बालाई में बारली, मिल कर बिकत बजार ।
या बिध गोरस में बहुत, होता अत्याचार ॥ ८ ॥
हलवाई दूकान की, मीठाई फलिहार ।
हाड़ मिली चीनी पड़े, कहां रह्यो आचार ॥ ९ ॥
गाय भैंस को पाल कर, होता है बैपार ।
धर्म बचे तौ पाप नहि, गोरस को रोज़गार ॥ १० ॥

इंधन को जो खर्च है, और घीव का दाम ।
सेवा घन्टे आध की, एक सुबह एक शाम ॥ ११ ॥
इसी खरच में गौ पले, सेवा उत्तम होय ।
उसमें जितना घी मिले, करो गुज़ारा सोय ॥ १२ ॥
जो हूं बेशी खर्च हो, बचा धन मिल जाय ।
सत पात्र हिको बेच कर, रक्षा धर्म कराय ॥ १३ ॥
काल पात्र के भेद से, धर्म रीत बदलान ।
गौ गोरस विक्रय भला, या चरबी की खान ॥ १४ ॥
गौ दूध हि को देख लो, है यह गौ की रक्त ।
हिंसा बिन यह लाभ हो, देव होय अनुरक्त ॥ १५ ॥
शुक्र मधूको देख लो, है वह कौन पदार्थ ।
किस कारणसे शुद्ध है, समझो यह भावार्थ ॥ १६ ॥
दूध मलाई लेयके, लेलो घीय निकाल ।
दूध बचे जो खर्च करि, सो मावा कर डाल ॥ १७ ॥
गुड़ शक्कर को लेय कर, भूरा लेहु बनाय ।
घरहि मिठाई त्यार कर, ठाकुर भोग लगाय ॥ १८ ॥
रहत रात घंटा जभी, सब कोइ घर लोक ।
गौ सेवा में लगि रहे, बने लोक परलोक ॥ १९ ॥
सन्ध्या सेवा बांटि दे, केवल नारिन हाथ ।
और मिठाई शिल्प भी, सिखलावे तेहि साथ ॥ २० ॥
गौ सेवाके पुण्य से, देह होय मज़बूत ।
भोजन हू उत्तम मिले, नहीं कष्ट नहि छूत ॥ २१ ॥

जो कोइ चाकर पर धरे, गो सेवा को भार।
धन डूबे फल हो नहीं, पाप न वारापार॥ २२॥
निज सेवा नहि कर सके, खड़ा रहे जो पास।
तौ भी उनको पुण्य को, आधो रहतो खास॥ २३॥
गो सेवा के पुण्य से, बढ़त मनुष के बंश।
कहत बशिष्ट दिलीप से, पढ़ देखो रघुबंस॥ २४॥

गो सेवा की रीत॥ २८२॥

गो दरशन प्रातहि करो, गोमय देहु उठाय।
गोमय लखि निश्चय करो, लक्षण स्वास्थहि गाय॥ १॥
ढीला गोबर देखना, रातिब कुछ कम देय।
सूखा गोबर होय जो, कम नहि, अधिक हि होय॥ २॥
रातिव में खरि भूसि हो, भूसा कुट्टि निवारि।
जल दे मिश्रित करन को, रातिव सानि उचारि॥ ३॥
साफ़ करो बहु जतन करि, पहिले नाद हि धोय।
जाते बासी गन्ध सब, तुरत दूर ही होय॥ ४॥
पहिले भूसा अल्प ही, डारो नादहि माहि।
भूसा शुष्क न खासके, छोड़ बैसहि ताहि॥ ५॥
क्षुधा दीप्त जब होयगी, तब ही लीहे खाय।
थोड़ा भूसा खान पर, और देहु अधिकाय॥ ६॥
पेट भरे जेहि वज़न में, वासे कुछ कम देय।
अर्द्ध सेर खरि भूसि हो, तर वा सूख हि लेय॥ ७॥

जो गौ देती दूध है, जल दे सानि चलाव।
नहि जो देती दूध है, सूखा बाहि खवाव ॥ ८ ।
जब लौ देती दूध है, अन्न सेर दो आध।
भूसा थोड़ा सामने, सदा रहन कर साध ॥ ९ ॥
तीन बार जल सामने, दिन में देहु पिलाय।
प्रेम सहित हर बार ही, गात देहु सुहराय ॥ १० ॥
याद रहे यह बात हू, कही न कभि कटु बात।
डांटो भी हरगिज़ नहीं, मारन की क्या बात ॥ ११ ॥
प्रीत हि को रस दूध है, प्रीत गये नहि दूध।
प्रीत स्नेहहि वृद्धि हो, नियम रहे यह शुद्ध ॥ १२ ॥
पक्की भूमी होय जहं, तखता देहु बिछाय।
प्रति दिन सब ही साफ हो, माछि न लगने पाय ॥ १३ ॥
बाग बगीचा होय जो, गोबर खाद बनाव।
नही तो गोयठा ठीक कर, जारन माहि जलाव ॥ १४ ॥
अठवारे में एक ही, अथवा दो दिन होय।
प्रेम सहित नहलाय दो, गौ प्रफुल्ल तब होय ॥ १५ ॥
रात रहे घर बीच में, दिन राखो मैदान।
या बिध सेवा जिन कियो, उभय लोक तिन पान ॥ १६ ॥
ज़रा भी देखो भूख कम, देहु शराब पिलाय।
पूस माघ में प्याज़ हू, रोटी माहि खिलाय ॥ १७ ॥
महिने में दो एक दिन, निमक देहु कोड़ रीत।
खुद्दी कदु को भात दो, प्रसव हि दस दिन बीत ॥ १८ ॥

दूध जब हि गौ देत है, बेशी खाय अहार ।
सदा न बेशी देय कर, करो गाय की ख़्वार ॥ १९ ॥
अन जाने बहु भक्त जन, करत खिलाइ बेश ।
खर्च लगे रोगहु बढ़े, बंसहु हो निः शेष ॥ २० ॥
उत्तम गौ की बाछरा, सांढ़ हि देते छोर ।
सब साधारण पालते, मिनुसिपिल लै जोर ॥ २१ ॥
वैजिक तत्त्वहि कहत है, बाछी जैसी सांढ़ ।
पिता मही सम दूध दे, भर देती है भाड़ ॥ २२ ॥
सांढ़ जो उत्तम होयगी, सुधरत है तब जात ।
रुपये दसहि के गायसे, बाछी सौ को पात ॥ २३ ॥
सब स्वारथ की बातमें, लखना हित की बात ।
जो लाभ हि हो देश को, इसमे हो नहि घात ॥ २४ ॥
पालो तो देसिहि गऊ, नहि बिदेस की गाय ।
लाओ सांढ़ बिदेस से, देसी गौ सुधराय ॥ २५ ॥
यह नीयम नहि मान कर, लाओ और हि गाय ।
दूध मिले नहि, खर्च बहु, नियम भंग फल पाय ॥ २६ ॥

घोड़े पालना ॥ २८३ ॥

घोड़ी माफिक बायु जल, कहते पूसा घाट ।
बकसर घोड़ी के लिये, उठहि गई वह हाट ॥ १ ॥
रहत पचास हज़ार हो, घोड़े दोनो जाय ।
बिकरी बहु तर होय कर, होता था बहु आय ॥ २ ॥

पालत घोड़ी बहुत जन, करते यह रोज़गार ।
बच्चे जब लायक हुए, ले लेती सरकार ॥ ३ ॥
जो बच्चा सरकार करि, नापसंद दे फेर ।
फिर उसको बाज़ार में, बेचत नहि ही देर ॥ ४ ॥
रह्यो हेतु रोज़गार को, सीखत बहुतर काम ।
भाला अरु बन्दूक भी, घुड़ सवारि का नाम । ॥ ५ ॥
'शालि होत्र हू जानते, घोड़न की सब काम ।
लाभ कि आसा होनते, आप करत बिन दाम ॥ ६ ॥
खेतन में दाना करे, पैदा कर ले घास ।
रहत सईस हि नाम को, करते सब कुछ खास ॥ ७ ॥
एक एक जोड़ी निकलती, दो हज़ार तक दाम ।
बड़ा लाभ यह देस का, नष्ट भया है काम ॥ ८ ॥
यही लाभ ही नष्ट नहि, काम गये सब भूल ।
आदत घोड़े जनन की, देस भयो मजहूल ॥ ९ ॥
ज्यों जल कूआ खर्च नहि, आमद हो कम होय ।
पानी हू ज्यों भ्रष्ट हो, फल याही को जोय ॥ १० ॥
सब स्वाधीन हि जनन को, करना उचित य काम ।
नौकर और गुलाम को, नहि लेते हैं नाम ॥ ११ ॥
स्वारथ ही अरु देस हित, जो यह काम न जाय ।
जग में जनम हि लेय के, केवल खाद बनाय ॥ १२ ॥
खेतन में जो करत नहि, मूत्र मल हि को त्याग ।
खाद काम हू के लिये, देह न वाको लाग ॥ १३ ॥

घोड़े की रोज़गार को, रखते सब कोइ याद ।
निज स्वारथ हित देश भी, नहि होता बरबाद ॥ १४ ॥
एक बछेड़ा भी जो हो, होय बहुत ही दाम ।
सब गृहस्थ हों घुड़चढ़े, सोचो यह अंजाम ॥ १५ ॥
जो कोइ घोड़े पाल कर, खरचत घर की दाम ।
यह कुबेर को दंड है, उसका फल है खाम ॥ १६ ॥
घोड़े जो नहि चढ़ सके, मांस पिंड कहि ताहि ।
मानुष पूरा वह नहीं, घोड़ा चढ़ता नाहि ॥ १७ ॥
केवल धनको नष्ट कर, घोड़ा चढ़ते जोय ।
शत्रु कुबेर हि तेहि कहें, बिन फल पापहि होय ॥ १८ ॥
स्वारथ नहि उपकार नहि, ऐसे जो हैं काम ।
बहु दरशी तेहि जांच कर, पाप धरो है नाम ॥ १९ ॥
अगलोंके बहु यतनसे, बहु दरशिन बहु काल ।
शालिहोत्र बिद्या रच्यो, अब होता पैमाल ॥ २० ॥
बहु दरशी रोकर कहत, फूटी हियो हि देश ।
स्वारथ अरु उपकार तजि, अपन हि करते शेष ॥ २१ ॥

भेड़ी पालना ॥ २८४ ॥

पारस को फल देत है, सुम भेड़िन को जान ।
बैठत यह जिस खेत हो, सोना उपजत मान ॥ १ ॥
भारत में कम दाम में, सबसे बढ़ यह खाद ।
दो हज़ार भेड़ी बिघा, हो एक हि दिन याद ॥ २ ॥

दो दो घंटे बाद ही, पांच सात ही बार ।
उठा उठा दे रात भर, मल मूत हि बिस्तार ॥ ३ ॥
खेती जोकोइ करत है, भेड़ी तेहि दरकार ।
निज में भेड़ी पालना, अती कठिन है कार ॥ ४ ॥
एक गरेड़ी जात है, ताहि देहु दिलवाय ।
शर्त-अपना यह राख लो, खेत भेड़ बैठाय ॥ ५ ॥
निज की भेड़ी जो न हो, बैठाना हो भार ।
औसर पर पाते नहीं, रहत खेत बेसार ॥ ६ ॥
दो सौ में एक आदमी, रहते कुत्ते दोय ।
इनके केवल खाद्य हो, खर्च भेड़ की होय ॥ ७ ॥
इतने कम खर्चेहु पर, बैठावत सब नाहि ।
चासा दुखिया बहुत है, अच्छे चासी नाहि ॥ ८ ॥
कोइ कहत एक बार जो, भेड़ी का दे सार ।
बिना खाद जो होत है, आसा उसकी मार ॥ ९ ॥

गदहे पालना ॥ २८५ ॥

पशुवों में गदहा कहे, सबसे उत्तम जात ।
जैन धरम यह पालता, नही पाप नहि घात ॥ १ ॥
अति संतोषी जीव यह, बिन खाये आनन्द ।
धूली चाटहिं पुष्ट हो, कहे बैसाखा नन्द ॥ २ ॥
बड़े कामकी चीज़ यह, सस्ता इतना दाम ।
भारत वर्ष अभाग है, ले नहि इससे काम ॥ ३ ॥

भाग लाभ गदहन कहैं, खाय नहीं बहु काम।
सेवा हू कुछ लेत नहि, थोड़ा लगता दाम ॥ ४ ॥
खच्चर जनमें एक ही, दाम हि सौके पार।
ध्यान नहीं काहू इधर, क्या माया कर्तार ॥ ५ ॥
गदहे रहते हैं जहां, कृपा शीतला ठहांहि।
गदही दूध प्रतापसे, बहुत रोग ही जांहि ॥ ६ ॥
सब जात खर बीट को, रसवत कहते नाम।
बड़ी कामकी चीज़ यह, बैद लेत बहु काम ॥ ७ ॥
गदहे पर सब चढ़त हैं, अरब देसके माहि।
भारत काहि अभाग है, घृन्ना करते ताहि ॥ ८ ॥
गदहों की जो परवरिश, होती भारत माय।
ऊंचे घोर जतील हों, भूम न घसड़े पाय ॥ ९ ॥

कुत्ते पालना ॥ २८६ ॥

कुत्ता है बहु काम का, है पर नहीं पवित्र।
घर में शहर हि काम नहि, बन अरु ग्राम हि मित्र ॥ १ ॥
रखवाली जो यह करे, मानुषसे नहि होय।
भली जात कुकुरसे बढ़, प्रभू भक्त नहि कोय ॥ २ ॥

नकुल पालना ॥ २८७ ॥

नेवल हैं सब पालते, सांप हि भयके हेत।
छोटे बच्चन की तहां, नंगे रहन न देत ॥ १ ॥

बिल्ली पालना ॥ २८८ ॥

बिल्ली पालत हैं सभी, इसका क्या उपकार ।
चूहन सांप न भय रहे, इतना ही दरकार ॥ १ ॥
इससे जितना लाभ है, उतना ही दिक़दार ।
बस्तुन रचा यतन को, सिखा देत है कार ॥ २ ॥

झगड़े के जानवर पालना ॥ २८९ ॥

मेंड़ा हाथी लड़त हैं, बुल बुल लाल बटेर ।
मुर्ग लड़ाइ होत है, बाज़ी धर दिल सेर ॥ १ ॥
ऐयाशी यह काम है, पूरा है यह पाप ।
काम काजके आदमी, जात न देखन आप ॥ २ ॥

गाय बैलों की पहचान ॥ २९० ॥

चिकने चमकीले दीऊ, श्याम रंग ही कान ।
दुम जड़हूं से कोष तक, उत्तम बलद बखान ॥ १ ॥
सादे रंग पर गोल रंग, कहे बैरिया गोल ।
मैना भी रंग कोउ हो, ऐसे बैल अमोल ॥ २ ॥
चमक रूप सी होय जो, कहते रूपा धौर ।
मिलते ऐसे बैलके, लो, मत नहि कभि और ॥ ३ ॥
काला गोला कैलहूं, है यह रंग उतार ।
पूस माघके सीत में, यह सब जैहे हार ॥ ४ ॥

माथे महुअर रंगहो, होए पूछ धमार।
ऐसे बलद जो लेहिंगे, दाम हि जल में डार॥ ५॥
थनके पास हि लोम हो, ऊर्द्ध मुखो जेहि गाय।
चौड़ो जंघा तक जिते, तित हि दुध-अधिकाय॥ ६॥
ऊंचे हूं जितने उठे, ऊर्द्ध लोम जेहि गाय।
दूध देनके काल हूं, उससे जाना जाय॥ ७॥
थनसे चलि मल द्वार तक, ऊर्द्ध लोम जेहि गाय।
उतने दिन तक दूध दे, जितने फेर बियाय॥ ८॥
चूतड़के दोहाड़ जो, होय निकल कर कोन।
लक्षण है दूधार को, कहते जानत जौन॥ ९॥
आगा हलका होय जो, पीछा होए भार।
बहु दरशी जांच हि कहत, है लक्षण दूधार॥ १०॥
मांसल चूतड़ होय जो, और गढ़न हो गोल।
ऊर्द्ध लोम हूं कुछ न हो, दूध गयो अम्बोल॥ ११॥

इति समाप्त।

चौथा अध्याय।

मानसिक काम।

धर्म ॥ २९१ ॥

धर्म कहैं जो धरि रहे, गिरने नाहिन देय।
लोक होय परलोक वा, सब ही धर्म गिनेय ॥ १ ॥
ज्ञान लाभ हो धन बचे, फुरती हो तन माहिं।
काया रहे निरोगता, धर्म हि चार गिनाहि ॥ २ ॥
जग कामोंके बीच में, गुथा रहे जो धर्म्म।
वही धर्म जीता रहे, मरता मानस कर्म्म ॥ ३ ॥
दरशन सब उड़ पुड़ गयो, उड़ो योग अभ्यास।
ब्रह्म ध्यान सब नामको, ब्रत पूजा हि प्रकाश ॥ ४ ॥
स्नानादी सब कर्म ही, छूआ छूत विचार।
जाति भेदको ज्ञान अरु, गौ हिन्दू आधार ॥ ५ ॥
यह नीयम हो तो नहीं, हिन्दु जात बिलाय।
खनसामा गिरि नौकरी, जीवन होत उपाय ॥ ६ ॥
मसजिद और जिहादही, काम हि और नमाज़।
इतनो ही जीवित धरम, मुसल्मानको आज ॥ ७ ॥
पूजा देवी देवकी, अरु भक्ती जो गाय।
मोहर्रम बकरीदकी, झगड़ा धर्म जिलाय ॥ ८ ॥

क्रिश्चनकी जो धर्म में, केवल गिरजा काज ।
गिरजा साधनकि सिवा, कौन बात है आज ॥ ९ ॥
जैन धर्म मे पौत्तलिक, जीवित ही दिख छाय ।
ढुढिया आदी पंथ की, पता नहीं कोउ पाय ॥ १० ॥
हिन्दू और महम्मदन, गुथे हैं कामों बीच ।
जड़ इनकी पाताल में, नहि ऊपर बिच कीच ॥ ११ ॥
जग में बहुतर मूढ़ हैं, उनसे चलता धर्म ।
मोटी बात अरु काम ही, करना उनका कर्म ॥ १२ ॥
झीनी बातें बूझते, थोड़े ही जग माहि ।
उतने जनके मेलसे, कौम हि बनता नाहि ॥ १३ ॥
ज्ञानी सब ही धर्मके, सबकी एक हि राह ।
भेद, न हो जो धर्मका, काम हि सब मिट जाह ॥ १४ ॥
बड़े बड़े काम हि बने, बड़े भये जो लोग ।
धर्म भेद होता नही, काम बनन क्या योग ॥ १५ ॥
जगमें जो दरकार है, उन्नति अर्थ हि काज ।
आप आप ही होत है, यह ईश्वरकी राज ॥ १६ ॥

हिन्दू धर्म ॥ २८२ ॥

जिन धर्मों का नाम है, खास खास वह धर्म ।
हिन्दू धर्म हि नाम नहि, यही आम है धर्म ॥ १ ॥
हिन्दू भी नहि नाम है, नहीं आर्य्य है नाम ।
केवल धर्म हि नाम है, जगसे इसकी काम ॥ २ ॥

खास धर्मको अर्थ हो, ठीक ठीक हो काम ।
तब हि धर्म वह आम हो, हिन्दू धर्म हो नाम ॥ ३ ॥
ठीक महम्मदी जोई है, पक्का जो खृष्टान ।
जैन बुद्ध जो ठीक है, तेहि हिन्दु ही जान ॥ ४ ॥
दीन महम्मदी खृष्ट अरु, जैन आदि बुध धर्म ।
कुरां शरीफ-अरु बाइबिल, सूल वेद को मर्म ॥ ५ ॥
ठीक अर्थ अरु काम हो, सब है एक हि बात ।
आम धर्म हिन्दू कहें, और हि खास कहात ॥ ६ ॥
शरियत तरिकृत राहसे, जाय मारफ़त राह ।
हकिकृत हिन्दू एक हो, भेद तनक हू नाह ॥ ७ ॥
अब जो बरतत धर्म है, उसमें भी नहि फर ।
फेर पड़त उतनाहि है, रीत रसम को फेर ॥ ८ ॥
फेर जहां पर पड़त है, नहीं धर्म की बात ।
चपकन परदा गुस्ल वजु, चोटी दाढ़ी ज़ात ॥ ९ ॥
निराकार एक ईश है, जग है रूप सकार ।
ब्रह्म ज्ञान ही योग है, पूजा है साकार ॥ १० ॥
पूजा शब्द हि अर्थ में, करत महम्मदन भूल ।
फ़ेल मूतही ईश नहि, लाज़मि वा मजहूल ॥ ११ ॥
बुत्त परस्ती शब्द पर, घृन्ना हिन्दु करेय ।
माय बाप ताज़ीमको, कैसे उचित गिनेय ॥ १२ ॥
मुसल्मान जो बूझते, वह हिन्दू में नाहि ।
बुत हि खुदा हिन्दू कभी, माना मानत नाहि ॥ १३ ॥
बूझत जो कोइ अर्थ है, अद्वैत-अरु तौहीद ।
इम तुम वह यह भूल है, छूटी राह बईद ॥ १४ ॥

हम तुम वह कुछ हैं नहीं, एक वही है आप ।
हम तुम वह अरु तुम हू, बूझत है तहं पाप ॥ १५ ॥
एक मौलैकी राय सुन, करना मज़हब फ़र्क़ ।
जान बूझ होना हुआ, बहरे नदानी ग़र्क़ ॥ १६ ॥
बूझनकी अक्ली बिना, हो झगड़ा मत एक ।
अजब कहा अनमतिन में, नहि है जहां बिबेक ॥ १७ ॥
दस अन्धे एक आंखकी, हाथी देखन जाय ।
छू छू कर निर्णय करत, बरनन करि लग जांय ॥ १८ ॥
उखल सम कोइ लष्टिका, कोइ लक्कड़ कोई सूप ।
महाद्वेष करि करि लड़त, पड़त अज्ञान हि कूप ॥ १९ ॥
झगड़न लागे दसो जना, काकी माने कौन ।
उन जो देखा दृष्टिसे, तिन तो पकड़ी मौन ॥ २० ॥
दस नकटे एक नाकके, मिल बैठे एक ठौर ।
सब नकटन ऐसहि कहत, यही नाक बेडौल ॥ २१ ॥
जनम मरन का भेद है, लख चौरासी योन ।
ज्ञान-उद्यम से हो लघू, मुक्ति होत है तौन ॥ २२ ॥
भली बुरी बृत्तिन बिषय, सबका एक बिचार ।
वाकी चरचा करन को, यहां नहीं दरकार ॥ २३ ॥
जीव दयाकी बात में, सबका एक बिचार ।
काम करन में नहि चले, उससे हैं लाचार ॥ २४ ॥
बड़ा भेद आचार में, दिखलउवा यह बात ।
असल सभी का एक है, सोचत ही मिलि जात ॥ २५ ॥
फुरती धन अरु स्वास्थ्य को, नष्ट करत जो काम ।
आर्य्य गर्णों ने छान कर, पाप धरो है नाम ॥ २६ ॥

इसी मूल पर चलन है, धर्म एक आचार।
खान पान की कर्म सब, आप हि करना सार ॥ २७ ॥
मांसादि धन नष्ट कर, भोजन का है त्याग।
स्वास्थ हेतु छू छान की, उचित अती अनुराग ॥ २८ ॥
मह भारत में सार है, हिन्दू धर्म हि बात।
मन देकर जो बूझ ले, सब हि धर्म एक जात ॥ २९ ॥
मत को झगड़ा होत ज्यों, कोड़ी तीन-अरु साठ।
बुद्धि मान ही बूझते, करके सबकी पाठ ॥ ३० ॥
खृष्ट धर्म ही धर्म है, जैन धर्म की नीत।
हिन्दू और महम्मदन, लोक धर्म दोउ रीत ॥ ३१ ॥
पुस्तक धर्म हि उचित है, हो कंठस्थ हि पाठ।
लिखी छपी पुस्तक कभी, नष्ट गये नहि ठाठ ॥ ३२ ॥
हाफिज़ बेदुआ ब्राह्मण, जब तक है जग माह।
तब तक जारी ही रहे, बेद कुरान हि राह ॥ ३३ ॥
जगकी पुस्तक जो कहीं, कोइ कारण ही नष्ट।
सब हि लुप्त होगी नहीं, बेद कुरान स्पष्ट ॥ ३४ ॥
आद हि पुस्तक वेद है, अन्तिम कहे कुरान।
सबल नीव पर धर्म यह, हिन्दू मूसल्मान ॥ ३५ ॥
दोऊ अपने धर्म की, बूझ चले जो चाल।
तनक बिगाड़ छु हो नहीं, सुखसे रहे दोउ लाल ॥ ३६ ॥
भारत में इस्लामिया, है हिन्दू की ज़ात।
केवल बदलो धर्म है, खून एक ही पात ॥ ३७ ॥

आपद्धर्म ॥ २९३ ॥

मूल धनहु क्षय होय जब, ग्राह्य हो आपद्धर्म्म।
जल्दी धन को लाभ कर, न गन नीच भी कर्म्म ॥ १ ॥
मूल हि धन जब हो गयो, कर प्रायश्चित को कर्म्म।
तप व्रत ज्ञान हि रत रहो, साधन धन सुख धर्म्म ॥ २ ॥
लोभ हि जो जन पड़त हैं, करत न प्रायश्चित काम।
सदा धरत आपद्धरम, नीच जात तेहि नाम ॥ ३ ॥
पर कालहु जो नष्ट हो, यह कालहु दे खोय।
जात श्रेष्ट हु खोय कर, सदा नीच वह होय ॥ ४ ॥
ऊच जात में नीच जन, देखन जब ही पाव।
कारण आपद्धर्म है, जानो यही चिन्हाव ॥ ५ ॥
षटरस बेचत ब्राह्मण, बेचत दूध अरु घीव।
शिल्पी लेखक होय जो, पूजारी हो जीव ॥ ६ ॥
केवल लाभ हि लोभसे, करत रहे जो कार।
शिक्षा लेता नीच हीं, छोड़त गुण हि उदार ॥ ७ ॥

दया धर्म ॥ २९४ ॥

फेंक ढाल तलवारि, जैन बैष्णव धर्म ले।
गुर्जर अरु मडवारि, क्षत्रिन को खोत हि जर्हां ॥ १ ॥
ब्राह्मण धर्म दया रहा, दुर्बलता को मूल।
हरि क्षत्रिन करि आर्य कृत, तेज धर्म निर्मूल ॥ २ ॥

क्षत्रिन के बल बीर्य को, दया धर्म करि ग्रास।
गो-कुलकी उन्मूलता, बढ़ती चलि अनयास ॥ ३ ॥
क्षत्रिय मद्य लेते नहीं, दया जैन को धर्म।
भारत में घुसना कठिन, मुसल्मान का कर्म ॥ ४ ॥
दया धर्म वह पाल कर, शान्ती भोगत आप।
लाखो गउ बध होत है, यह किसके सिर पाप ॥ ५ ॥
दुष्टन पर ज्यों है दया, त्यों दुर्बल पर घात।
सुक्षम गति धर्म हि कह्यो, सोचत जान्यो जात ॥ ६ ॥

परकाल सुधारन उपाय ॥ २९५ ॥

दान करो वा यज्ञ हो, धर्म शाल अरु राह।
परकाल हि सुधरत नहीं, पंडित कहत सराह ॥ १ ॥
मन उदार जब होय गो, निर्मल हो जब ज्ञान।
ख़ाम खियाली दूर हो, परकाल हि शुभ जान ॥ २ ॥

जीवन्मुक्ति ॥ २९६ ॥

अद्वैत हि जेहि ज्ञान हो· हो वा पै विश्वास।
काजहु वैसे होय जो, करै करतब अनयास ॥ १ ॥
क्षणिक ज्ञान न वस्तु हो, बरतै सतके न्याय।
जलमें कमल हि ज्यों रहै, नहीं लिप्त हो जाय ॥ २ ॥
सब वृत्तिन को बरतते, नहि आदी हो जाय।
सब कामन को साधते, शान्ती को बरताय ॥ ३ ॥

जगमें सारी बस्तु पर, हो ईश्वरता ज्ञान ।
यही भाव पूरी रहे, काजहु ही बरतान ॥ ४ ॥
मृत्यु की भय भी न हो, हर दम पाय रिकाब ।
सदा नन्द तेहि रूप हो, झलकत शान्ति हि आब ॥ ५ ॥
जड़ता जीवहि जब मिटे, छुटत छुटत छुट जाय ।
तब हि ज्ञान जीमें जमें, सहज मुक्ति हो जाय ॥ ६ ॥
ज्ञान-अद्वैत हि प्रबल हो, निजहू जाय भुलाय ।
एक ज्ञान तब रहत है, आपहु एक हो जाय ॥ ७ ॥

नास्तिकता ॥ २९७ ॥

नास्तिक दोय प्रकारके, पंडित करत बखान ।
धर्म नहीं बिश्वास जेहि, नास्तिक शुद्ध पछान ॥ १ ॥
मुंहसे आस्तिक कहत हैं, कर्म हि अती अखोर ।
हाज़िर नाज़िर कहत हैं, सन्मुख ही वह चोर ॥ २ ॥
सब जनकी जो राय है, वह नहि मानत जोय ।
शत्रू जोइ समाज को, कट्टर नास्तिक सोय ॥ ३ ॥
सू बृत्ती पर रुचि नहीं, होय कुबृत्ती चाह ।
नास्तिक वाको कहत हैं, छाड़ो उसकी राह ॥ ४ ॥
धर्म ग्रन्थ मानत जोई, मानत नियम समाज ।
लक्षण लौकिक आस्तिक, कहते हैं यह आज ॥ ५ ॥

सरलता ॥ २९८ ॥

नेक नीयती सम कोई, जगमें नहि है चीज़।
कोई पांप लगता नहीं, रहे सरलता बीज ॥ १ ॥
सरल भाव है साधु गन, दुष्ट कपट आचार।
साधू सब सुख पावते, दुष्ट भोग दुख भार ॥ २ ॥
जो कछु सब प्राणीन सो, होय सरलता भाव।
सब तीरथ अभीषेक ते, ताकी अधिक प्रभाव ॥ ३ ॥

नम्रता ॥ २९९ ॥

नानक*नन्हा ही रहे, ज्यों नन्ही ही दूब।
बड़े बड़े बह जायेंगे, दूब खूबकी खूब ॥ १ ॥
भारी पत्थर भारसे, रहत नीचकी नीच।
पद सेवा करि धूलि रज, उठत पहाड़हु ऊंच ॥ २ ॥
दोष करत मूरख जहां, मुह न दिखावन जाय।
चमा करावन साधु हां, नम्र होय बड़े पाय ॥ ३ ॥

मिलन सारी ॥ ३०० ॥

तुलसी*या जग आयके, सबसे मिलिये धाय।
नहि जाने किस भेष में, नारायण मिल जाय ॥ १
जगमें जो कुछ देखते, सब नारायण रूप।
पूजनीय ताते सभी, नीच ऊंच अरु भूप ॥ २ ॥

तुलसी*या संसार में, भांत भांत के लोग ।
मिलना जुलना सब हि से, नदी नाव संयोग ॥ ३ ॥

सहन शीलता और धैर्य ॥ ३०१ ॥

तुलसी*साधू होय जो, सीख ऊंखकी लेय ।
जो अनरस तोहि से करे, ताहूको रस देय ॥ १ ॥
सज्जनको दुख हू दिये, दुर्जन पूरे आस ।
जैसे चन्दनको घिसे, सुन्दर देत सुबास ॥ २ ॥
सज्जन चितमें धरत नहि, दुर्जन जनके बोल ।
पाहन मारे आमको, तउ फल देत अमोल ॥ ३ ॥
धीरज सीखहु सीपसे, काटे मुक्ता देय ।
खान हु में गुण है यही, खोड़े धन भर लेय ॥ ४ ॥
जहां जहां गुण रहत है, सहन शक्ति तहां जान ।
जिसको है बरदाश्त नहि, निर्गुण ताहि पछान ॥ ५ ॥
परसत ज्यों हि बबूल को, कांटा देत चुभाय ।
निर्गुणसे क्या लाभ हो, छाया हू नहि पाय ॥ ६ ॥
विपत पड़े जो रख सके, धीरजता को थाम ।
निश्चे वाको जानिये, पलटे गो अइयाम ॥ ७ ॥
घटतीमें छोटा बने, काम हि ले मुरझाय ।
धीरजता लक्षण यही, बढ़ती पर लग जाय ॥ ८ ॥
बिपत हि धीरज जेहि गई, नीयत दई बिगाड़ ।
कभि वाकी बढ़ती न हो, आवत नहि कोउ आड़ ॥ ९ ॥

जिसके बिन सरता नहीं, सहिये उसकी बात ।
सहते गाय दुधार की, कहते हैं दो लात ॥ १० ॥
अगिन जलायो हाथ है, घर हूं दियो जलाय ।
जरत जरत ही कहत है, एक चिलम भर लाय ॥ ११ ॥
घर जलता तो उधर है, इधर कहत क्या आप ।
चौका सुलगाओ ज़रा, भूख हि है संताप ॥ १२ ॥

देश हितैषिता ॥ ३०२ ॥

अर्थ धर्म को त्याग करि, शिक्षा हुई बिदेश ।
सीखे देश हितैषिता, पर उपकार विशेष ॥ १ ॥
बिष्णु शरमाने कहा, दधीकरन मर्जार ।
कंगन वाले बाघने, सीखा पर उपकार ॥ २ ॥
सत स्वारथ को कहत है, भारत पर उपकार ।
देशहु का हित है वही, नहीं ठगी उधार ॥ ३ ॥
पढ़ि पढ़ि पुस्तक बैठ कर, तन अरु सिर भय शेष ।
पेट निज हि पूरत नहीं, बने हितैषी देश ॥ ४ ॥
कहीं कहत निहलिस्ट है, कहते सोशियलिष्ट ।
भारत में भी कहत हैं, देश हितैषी इष्ट ॥ ५ ॥
ख़बर नहीं कर्त्तव्य की, लेने चाहत चांद ।
"मेंव" भनक कान हि पड़त, जा भीतर घुस मांद ॥ ६ ॥

नियम प्रतिबन्धकता ॥ ३०३ ॥

मानव नहिं स्वाधीनता, चाहत ही स्वाधीन ।
ज्ञान बिना स्वाधीनता, बिगड़त दुनिया दीन ॥ १ ॥
या कारण बांधहि नियम, जकड़ बन्द कर दीन ।
तनक न हो स्वाधीनता, पाबन्दी बहु कीन ॥ २ ॥
बन्धन भयो समाज एक, अरु बन्धन ही धर्म ।
बन्धन राज आईन हो, बन्धन स्वास्थ हि कर्म ॥ ३ ॥
अज्ञानी पागल पुरुष, बन्धन ही कल्यान ।
मुक्ती अरु स्वाधीनता, हो जब पावत ज्ञान ॥ ४ ॥
जगमें मूरख नीच बहु, थे हैं और रहेय ।
थोड़े ज्ञानिन के लिये, बदल नियम नहि श्रेय ॥ ५ ॥

स्वाधीनता ॥ ३०४ ॥

सुवाधीन मानव नहीं, इच्छा इसकी होय ।
यहि इच्छा स्वाधीनता, मुकती देती सोय ॥ १ ॥
ज्ञान लाभ जब तक न हो, मुकती कबहुं न होय ।
तब तक जो स्वाधीनता, कारन बिपत हि सोय ॥ २ ॥
ज्ञान बिना स्वाधीनता, करती बहुत फितूर ।
कूटि खेल यों करत है, गदह लोट ज्यों धूर ॥ ३ ॥
रहत अधीन हि एक के, धर्म हि हो वा पाप ।
छुटकारा इस जीव का, ज्ञान बिना नहि आप ॥ ४ ॥

पराधीन कहते उसे, जो पाप हि आधीन।
पाकर मुकती पाप से, धर्म-धिन स्वाधीन ॥ ५ ॥
आदत् की पाबन्दि हो, करत परास्त बिबेक।
पराधीनता है यही, सुख उपजे नहि एक ॥ ६ ॥
सुवाधीनता बासना, काहू मन जो होय।
आदत और कुवृति तजि, धर्म बांध मन सोय ॥ ७ ॥
धर्माधीन हि रहन को, कहते हैं स्वाधीन।
इससे बढ़ स्वाधीनता, नहीं बिधाता दीन ॥ ८ ॥
पर पीड़न जहां देखिये, निज कष्टहु हो सार।
बरते हां स्वाधीनता, न हो कष्ट की कार ॥ ९ ॥
परदेसहि जब जाईये, कर स्वाधीन निवास।
शहर बन्धु गृह मत ठहर, रहु कृषाण अनयास ॥ १० ॥
शहर गृहस्थ हि नीच मन, ग्राम्य हि कृषक उदार।
नौकर से फरक हि भले, कष्ट उदार हु सार ॥ ११ ॥

एका ॥ २०५ ॥

फुट फुट धासन में नहीं, तनकहु बल की लेश।
एका करि रस्सि बटे, हाथी बंधत बिशेष ॥ १ ॥
एक जनहि को जीव बल, बहु जन दैबीबल।
बहु जन जब एक जीव हों, रोकन नहीं सहल ॥ २ ॥
क्रोधादिक बृत्ती सकल, खाली नहीं रहेय।
बहरी बिपद हि जब पड़े, एका सभी करेय ॥ ३ ॥

बहरी बिपद न होय जब, आपुस माहि लड़ेय ।
बिना बिपद एका न हो, नीयम यही चलेय ॥ ४ ॥
स्वारथ त्यागी मिल हो, क्यों कर त्यागा जाय ।
बकरी यारी दूब सी, करै तौ फिर क्या खाय ॥ ५ ॥

स्मरण शक्ति ॥ २०६ ॥

पूर्व जनम की बात सब, रह सकती तब याद ।
इसी जनम की बात को, याद न हो बरबाद ॥ १ ॥
स्मरण शक्ति जो प्रबल हो, हो वहि जीव सुभाव ।
बात यहां यहिं भूलते, उनकी बूझो भाव ॥ २ ॥
स्मरण शक्ति दुर्बल हुई, हुआ नियम जब लेख ।
मुद्रित पुस्तक होनते, मिमरन्डम हि बिशेष ॥ ३ ॥
स्मरण शक्ति को मार कर, जगत हि दियो निकाल ।
इसी जनममें यह दशा, अन्य जनम क्या हाल ॥ ४ ॥
व्यास भृगु कितनो रच्यो, पुस्तक भरि भरि भार ।
स्मरण शक्ति पूरब जनम, संग लियो औतार ॥ ५ ॥
जग उन्नत सब कहत हैं, ज्ञान बहुत बिस्तार ।
यूरपमें क्यों होत नहि, पहिलेसे तइयार ॥ ६ ॥
बीत्यो नहि एक सौ बरस, कलकत्ता नदि घाट ।
लड़ि गोरन नालिश कियो गवाह न पायो लाट ॥ ७ ॥
जगन्नाथ पंडित वहां, करत रहे अस्नान ।
अंगरेज़ी बूझत नहीं, गये गवाहमें टान ॥ ८ ॥

पंडितके इज़हारसे, खुल ही गई सब बात।
जिनने जो कुछ बात कहि, कीन्हो जो उत्पात ॥ ९ ॥
स्मरण शक्ति के ज़ोरसे, कान पड़े जो शब्द।
उच्चारण सब कह दियो, हुए अर्थ हूं लब्द ॥ १० ॥
वैसे प्राणी क्यों नहीं, लेते अब औतार।
स्मरण शक्ति हीनात्मा, पल्लव ग्राही सार ॥ ११ ॥
पूर्व जनमकी शक्ति बिन, हो नहि चम्मतकार।
साधन उसको उठि गयो, कैसे हो औतार ॥१२ ॥
बैपारी अनपढ़ ज़रा, उनमें है बू बास।
उन्ही जीवके सृष्टिमें, जो कुछ कहो सो आस ॥ १३ ॥
बेदुवा हाफ़िज़ होत हैं, पर तोतेके न्याय।
स्मरण शक्ति पाते नहीं, पर उच्चारण पाय ॥ १४ ॥
अंगरेज़ी तालीमने, कियो जगतको नास।
अपनी शिक्षा पाय कर, करो जो चाहो पास ॥ १५ ॥
शक्ती सब ही जगत की, परिमित रहती जान।
सब कोइ चाहे बांट ले, अथवा एक निधान ॥ १६ ॥
साधारन शिक्षा नियम, बहु दरशी दें रोक।
पूरे पंडितके बिना, जगत हि भोगत शोक ॥ १७ ॥
घटना से घटना घटे, रहती अस्मरणीय।
घटना संग घटना करो, कभी न बिस्मरणीय ॥ १८ ॥
जगमें घटना है बड़ी, इष्ट देवकी बात।
सब कामोंके आदमें, चलत फिरत अरु खात ॥ १९ ॥
जाको जैसा भाव हो, सो तैसो बरताय।
लिखके कहके करहुके, सब घटना हि लगाय ॥ २० ॥

आदि भनिता देवकी, घटनामें लगि जात ।
फली चढ़ौवा चढ़त है, याद कबहुं नहि जात ॥ २१ ॥
कोई बहाने बन पड़े, आद हु में अरु अंत ।
सब घटनामें जोड़ दो, सरीकार भगवंत ॥ २२ ॥
उद्देश हि जो हो नहीं, याद रखन वृत्तान्त ।
क्यों कर होगा याद वह, तुरत हि होता अन्त ॥ २३ ॥
ऐसा करना नहि कभी, भूल चूक बल्लाह ।
ताड़ी पीयत ज्यों कहें, पहिले बिस्मिल्लाह ॥ २४ ॥

स्मरण शक्ति और मेधा ॥ ३०७ ॥

स्मरण शक्ति अरु ज़िहनका, कहते चार प्रकार ।
बेग चिरा उत्तम कहें, चिर चिरा कहत उतार ॥ १ ॥
बेग हि बेगा मध्य है, चिर बेगा हि कार ।
अधम ही उसको कहत हैं, पूर्व करम आधार ॥ २ ॥
जल्दी बूझे बातको, सदा रहे जो याद ।
बेग चिरा कहते उसे, इसमें नहि कुछ बाद ॥ ३ ॥
देर हि बूझे याद रहे, चिर चिरा कहते ताह ।
जल्द बूझ झट भूल हो, बेग बेगाकी राह ॥ ४ ॥
चिर बेगा वह है मनुष, समझत जल्दी नाह ।
समझे तो झट भूलता, नीच हि जानो ताह ॥ ५ ॥
या बिध जांच हि कर करी, लड़कोंकी तालीम ।
शिक्षा पात्र हि बूझ कर, लाभ हि होय अज़ीम ॥ ६ ॥

बिचार शक्ति ॥ २०८ ॥

जब कोई बात संदेहकी, आन पड़े तोहि पास।
करना या करना नहीं, रहे बिचारके आस ॥ १ ॥
भला बुरा झट पट करो, इधर या उस ही पार।
फल पर ध्यान लगायके, सीखो करन बिचार ॥ २ ॥
ग्वाला एक महाबली, जाता जंगल माह।
जोरू उसकी साथ थी, बाघ हि छेकी राह ॥ ३ ॥
ग्वाले ने पकड़ा झपटि, कब्जे दोनों आध।
एक पेड़ में साट कर, जोरूकी कहा बांध ॥ ४ ॥
जोरू पड़ि सन्देहमें, नंगे कैसे होंय।
साड़ी खोलेंकी नहीं, देर लगी छन दोय ॥ ५ ॥
बाघ मनुसकी युद्धमें, ग्वाला थका अपार।
हाथ छुटत ही भख भयो, लगी नहीं कुछ बार ॥ ६ ॥
शक्ति बिचार हि जो अगर, रखती उस वन मांहि।
झट साड़ी से बांधती, स्वामी मरता नाहि ॥ ७ ॥
बिचार शक्ति की साधना, कुश्तीमें बहु होय।
पेंच काट, लख, काम भी, एक मुहूरत होय ॥ ८ ॥
गतका फरि इस काममें, बड़ ही हैं अकसीर।
बार काट लखना तुरत, फुरती होत शरीर ॥ ९ ॥

अधैर्य्यता ॥ ३०९ ॥

पक्का अपना छोड़के, कच्चे पीछे दौड़ ।
पक्का अपना खोय दे, कच्चेका वहि तौर ॥ १ ॥
एक हि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय ।
जो तू सींचे मूलको, फूले फले अघाय ॥ २ ॥
राय बदलना जब चहे, पहला रख ले डेग ।
पहला डेग जमाय कर, डेग उठावे वेग ॥ ३ ॥
मालिक नीच न होय जब, छोड़ चाकरी जाय ।
लोभ हि दूजे काममें, फल पा फिर पछताय ॥ ४ ॥
नई बात जब ठानना, बहु दरशिनसे पूछ ।
जब पूरा बिश्वास हो, तब ही करना कूछ ॥ ५ ॥
बिपद काल धीरज तजो, छल बल बिपत कटान ।
या बिध सोचत नीच हैं, दबते का, न उठान ॥ ६ ॥
धीरज धर्म हि त्याग कर, बढ़ सकता नहि कोय ।
बहु दरशी देख्यो बहुत, धीरज बिन सब खोय ॥ ७ ॥

छ रिपु ॥ ३१० ॥

काम क्रोध अरु लोभ मद, मत्सर-मोह गिनाय ।
रिपु इनको सब कहत हैं, पर रिपु हैं यह नाय ॥ १ ॥
सच पूछो यह मित्र हैं, इनका सत बरताव ।
अर्थ धर्म अरु काम भी, मोच इन्ही से पाव ॥ २ ॥

खोटा जब कोई करत है, इन सब का बरताव ।
तबही रिपु यह होत हैं, स्वर्ग हि नरक बनाव ॥ ३ ॥

मत्सरता ॥ ३११ ॥

पर सम उन्नति के लिये, मत्सरता भइ स्टष्ट ।
नीच पराये को गिरा, समता राखत दृष्ट ॥ १ ॥
शक्ती जो बिधना दई, सब साधन है इष्ट ।
नीच संग रिपु होय कर, तब कहलाती दुष्ट ॥ २ ॥

काम शक्ति ॥ ३१२ ॥

स्टष्टिकरन की शक्ति यह, नहि है यह सुख भोग ।
खोय शक्ति रोगी बनत, बुद्धि भ्रष्ट को योग ॥ १ ॥
जनन क्रिया गोजात की, कहते हैं उत्कृष्ट ।
साधू मानव बरतते, वही रीत ही स्टष्ट ॥ २ ॥
शक्ति सकल नापी बनी, परिमित कर बर्ताव ।
अति व्यय जब ही होयगो, शक्ति चय हि ही भाव ॥ ३ ॥
व्यभिचारी निज शक्ति को, करत शीघ्र हैं नास ।
नहि केवल तन नष्ट हो, नासत बंसहु आस ॥ ३ ॥

क्रोध शक्ति ॥ ३१३ ॥

क्रुद्ध भये तन जरत है, यह जानत सब कोय ।
अपनो तन जारे बिना, क्रोध न उपजे कोय ॥ १ ॥
धर्म कामके कारने, तन जारन ही सिद्ध ।
स्वारथ हिंसा के लिये, क्रोध हि कियो निषिद्ध ॥ २ ॥
क्रोध भये रोगी बने, जाये बुद्धि बिलाय ।
गर्म लौह दब जात है, ठंढ हथौड़ी पाय ॥ ३ ॥
दुष्ट दमन के हेत, स्टष्ट भयो है क्रोध को ।
बल बाढ़त है खेत, पापी की बलह्रास हो ॥ ४ ॥

लोभ शक्ति ॥ ३१४ ॥

अपने हक़ की लोभ की, उचित न कबहू हार ।
बे हक़ लाख करोड़ हो, खड़ी मार दे धार ॥ १ ॥

मोह शक्ति ॥ ३१५ ॥

ममता सब सो राखनो, नहि करनो अफ़सोस ।
करतब सब यों साधनो, जल ज्यों कमल बिलोस ॥१॥
कठिन मोह बन्धन स्वजन, मरत कभी परदेस ।
आकर्षण अति दूर हो, तत छण बोध कलेस ॥ २ ॥

तारतम्य ज्ञान ॥ २१६ ॥

भली बुरी कोई बस्तु नहिं, एक से एक गिनात।
तरकारी चुनि लेत सब, सब बिकरी ह्वै जात ॥ १ ॥
सुख दुख कोई बस्तु नहि, पाप पुण्य नहि चीज़।
छोटी बड़ि कोई बस्तु नहि, एक हि निस्बत बीज ॥ २ ॥
एक कि निस्बत एक ही, तार तम्य ही नाप।
बड़े पुण्य निस्बत कहें, छोटा पुण्य हि पाप ॥ ३ ॥
बड़े पापके सामने, छोटा होता पुण्य।
तार तम्य को ज्ञान जेहि, वही पुरुष है धन्य ॥ ४ ॥
पाप कि निस्बत कहत हैं अल्प पुण्य ही खोट।
अति छोटे से छोट बड़, बड़े से वह हूं छोट ॥ ५ ॥
दया क्षमा सत्पात्र पर, होता पुण्य स्वरूप।
दुष्टन पर तेहि भात ही, दया पाप तद्रूप ॥ ६ ॥
देश काल अरु पात्र पर, होता यही बिचार।
हरिक बात निश्चय नहीं, करे तो पापा चार ॥ ७ ॥

आत्म ज्ञान ॥ २१७ ॥

आतम ज्ञान हि के बिना, जीव रहत है नीच।
अपने को जो चीन्ह ले, तब देवन के बीच ॥ १ ॥
अपने को नहि चीन्ह कर, मान लेत खुद नीच,
बिन जांचे आलस हि से, जानत दुर्बल बीच ॥ २ ॥

काइत गुडैत हि गांव के, पटवारी बस होय।
महा बली अति होत हूं, ज्ञान बिना सब खोय ॥ ३ ॥
अपना बल वह जान ले, एक चपेटा देय।
कभी न गारी दै सके, ज्ञान बिना सब हेय ॥ ४ ॥

लौकिक ज्ञान ॥ ३१८ ॥

आंख खोल कर देखना, खोल हृदय सन्धान।
कर्मन को फल जानि कै, भला बुरा पहचान ॥ १ ॥
अपनी अरु पर कर्म को, पूरी रख सन्धान।
इतिहासी पुरुषन हु को, कर्म अरु फल को जान ॥ २॥
प्रति दिन अपने कर्म को, लिखा करहु एक ठांय।
फल को उसके देख के, लिख लेहू तिहि माय ॥ ३ ॥
या बिध ही पर कर्म को, खोज करै हर बार।
फल अरु दिन को टीप करि, कालहु करै बिचार ॥ ४ ॥
कौन कर्म का कौन फल, कितने दिन की देर।
पंडित बहु दरशी वही, जग जो करता सैर ॥ ५ ॥
बार बार यह जांच कै, जब पक्का ठहराय।
उस नीयम को याद कर, ज्योतिषि ही हो जाय ॥६॥
देखत ही पल एक में, भविष बात कहि जाय।
जो जावे उस राह पर, बहु दरशी कहलाय ॥ ७ ॥
सब भूतन को तत्व लखि, कर्म योग पहचान।
मनु सम्बन्ध हि लेय लखि, सो पंडित गुणभान ॥ ८ ॥

तत्व ज्ञान और संस्कार ॥ २१९ ॥

ज्ञान कहैं जानन हि की, बूझत ही अति खेद ।
संस्कार अरु तत्व के, ज्ञान हि हैं दो भेद ॥ १ ॥
समझ बूझ या देख सुन, विश्वस हो जो बात ।
सत्यासत निर्णय बिना, संस्कार कहलात ॥ २ ॥
सत्य बात जो जच गई, है वह तत्व ज्ञान ।
ख़्यालहि में फल ऊपजे, संस्कार तेहि मान ॥ ३ ॥
गाली से जो दुख भयो, प्याज गंध से कष्ट ।
जेल दिवानी कष्ट भी, संस्कार सस्पष्ट ॥ ४ ॥
कर्म भोग के कारने, संस्कार ही ज्ञान ।
बिना कष्ट के कष्ट को, ले लेता है मान ॥ ५ ॥
पाप रहित जो जीव है, नहि तेहि ख़ाम ख़ियाल ।
सत्यहि वाहि बिचार हो, फसत न माया जाल ॥ ६ ॥

इच्छा ॥ २२० ॥

इच्छा उसको कहत हैं, जब ठाने कोइ बात ।
दुख सुख को सब सोच कर, वही ख्याल लगि जात ॥ १ ॥
कैसी भी बाधा पड़े, कभी न मन हहराय ।
कारज अथवा साधले, अथवा प्राण हराय ॥ २ ॥

उत्साह ॥ ३२१ ॥

उत्साही वह जीव है, जब देखे कोइ बात ।
बिन सोचे तेहि करन की, मन वाकी ललचात ॥ १ ॥
काम हि में जब लगि गयो, आगे देख्यो कष्ट ।
उलट गई श्रद्धा तभी, फेक फाक सब नष्ट ॥ २ ॥

दया ॥ ३२२ ॥

पर दुख से जो दुख भयो, दया न वाकी नाम ।
उसि दुख के प्रति कार की, कहना स्वारथ काम ॥ १ ॥
दया पात्र को खोज करि, करते जो उपकार ।
उसी दया को जैन ने, कियो बड़ो बिस्तार ॥ २ ॥

चमा ॥ ३२३ ॥

चमा बराबर काम नहि, होय पात्र बरताव ।
साधू पर ज्यों दंड है, त्यों दुष्टन सद भाव ॥ १
चमा हुं पापी करत हैं, देखत अपनो दोष ।
चलनी देखत छिद्र कहिं, भरी पाप से कोष ॥ २ ॥
नर को भूषन रूप है, रूपहु को गुण जान ।
गुण को भूषन ज्ञान है, चमा ज्ञान को मान ॥ ३ ॥

न्याय ॥ ३२४ ॥

सांच झूठ निर्णय करे, नीत निपुण जो होय।
राज हंस बिन को करे, छीर नीर को दोय ॥ १ ॥
स्वारथ नीच, न होय अरु, तपका साधन होय।
तभीं न्याय की ज्ञान हो, बिरला ऐसा कोय ॥ २ ॥
कभी किसी से रंज हो, दोषी कर नहि वाह।
ताली बजती है कभी, एक हाथ की राह ३ ॥
जब कोइ बाते भेद की, आजाये तोहि पास।
आप वकीलहि शत्रु बन, धरो न्याय की आस ॥ ४ ॥

बिबेक ॥ ३२५ ॥

मन मतंग झूमत फिरे, ज्ञान महावत संग।
जब जब चलत कुराह पर, तब तब अंकुश जंग ॥ १ ॥
जौन शक्ति से हो सके, भलो बुरो को भेद।
मानुस को है गुर यही, कहिं बिबेक तेहि बेद, ॥ २
इस गुर के उपदेश पर, चलते हैं जो लोग।
लाभ होय सब लोक में, ज्ञान मान अरु भोग ॥ ३ ॥
नीच दुष्ट के संग मे, जेहि शिक्षा आधार।
गुरु विवेक निश्चय कहें, पाप करावत हार ॥ ४ ॥
कहत बिवेक बलाबलहि, शिक्षा पर है भार।
तारन हार विवेक तेहि, शिक्षा जाहि उदार ॥ ५ ॥

संतोष ॥ ३२६ ॥

जब कोइ कामहि हाथ दे, फल की राख, न आस ।
कृष्णार्पण फल को करो, कह गे हैं यह ब्यास ॥ १ ॥
काम रहित जो कर्म है, मुकती देता सोय ।
काम सहित बंधन बढ़े, दुख सुख भी तब होय ॥ २ ॥
या बिध साधन कर्म को, जानत है जो कोय ।
संतोषी वह जीव हैं, जीवित मुकतहि होय ॥ ३ ॥
झंझट को डरि आलसी, करता नहि कुछ काम ।
दुर्बलता के हेत से, सन्तोषी नहि नाम ॥ ४ ॥

प्रीत ॥ ३३७ ॥

कोइ कहत है प्रीत को, शक्कर दूध हि मेल ।
कभी मेल नहि होत तेहि, जैसे जल अरु तेल ॥ १ ॥
सत गुण रीझन रीत है, दुर्गुन घिन बरताव ।
ईश्वर नीयम है यही, यही जगत को भाव ॥ २ ॥
भय से जगत हि होत है, पंडित कहते प्रीत ।
कवी युवा भूलत सदा, अर्थ करन की रीत ॥ ३ ॥
सत गुण पर बहु प्रीत हो, यही नियम बहुतेक ।
पादरि वायज़ फिरत है, करत धर्म को एक ॥ ४ ॥
सुर नर मुनि सारे जगत, सबही की यह रीत ।
स्वारथ ही के कारने, करते सब ही प्रीत ॥ ५ ॥

नि: स्वारथ कोइ कहत है, कहते निर्मल प्रीत ।
बिन मतलब कोइ काम नहिं, स्वारथ उचहि रीत ॥ ६ ॥
प्रीत हु सोखो ऊंख पै, है जहां रस की खान ।
जहां गांठ तहां रस नहीं, यही प्रीत की बान ॥ ७ ॥
सज्जन दुर्जन से कहें, लगी प्रीत मत तोड़ ।
कातन वाली सूतसी, जिमि टूटे तिमि जोड़ ॥ ८ ॥
सम्मन*डोरा प्रेम का, मन तोड़हु चटकाय ।
तोड़ो तो फिर जोड़ते, बीच गांठ रहजाय ॥ ९ ॥
सूत सदा जुट जात है, डोरा कभी जुड़ै न ।
स्वारथ बात छिपाव बिन, कबहूं प्रीत कटै न ॥ १० ॥
सब रस को रस नेम है, नेमहु को रस प्रेम ।
जा घर नेम न प्रेम है, ता घर कुशल न चेम ॥ ११ ॥
जग भूखो है प्रीत को, पशु मानुष जड़ जान ।
प्रीत हि मिले प्रफुल्लता, प्रीत हि सुख की खान ॥ १२ ॥
मानव भरमत फिरत है, खोज करत है प्रीत ।
जानत नहिं गुण प्रीत को, भटकत मृग की रीत ॥ १३ ॥
कोऊ खोजत धनहि में, कोऊ सन्तति माहि ।
विभव में कहते प्रीत कोइ, पर है मनके मांहि ॥ १४ ॥
आप चहत जग प्रीत है, देन न काहू चाह ।
प्रीत दान जो करत है, फूलत वहि जग माह ॥ १५ ॥
नीच प्रीत तहां देत है, श्री देखत वा नाम ।
बांटत घृन्ना आम को, उदासीन को काम ॥ १६ ॥

साहस ॥ ३२८ ॥

साहस बिन बल बुद्धि हूं, करहि सकत नहि काज।
बिन हिम्मत किम्मत नहीं, वही चील वहि बाज ॥ १ ॥
अन्त हि हमला जय करे, थक जाने के बाद।
बल बुद्धी वहं काम नहि, साहस के परसाद ॥ २ ॥

सुख ॥ ३२९ ॥

सब से पहला सुख यही, काया रहे निरोग।
घर में माया पूर हो, दूजा सुख संयोग ॥ १ ॥
दारा अरु सन्तान सुख, तीजो चौथो जान।
यश पंचम को कहत हैं या बिध कियो बखान ॥ २ ॥
ज्ञान होय कर्त्तव्य जो, बरतत हो तेहि काम।
होत भोग इन सुखन के, नहीं तो दुख अंजाम ॥ ३ ॥
माया भ्रम से भूल कर, कहत भोग आराम।
तप से सब सुख मिलत है, और मिलत है राम ॥ ४ ॥
इच्छित वस्तुन लाभ को, सब ही मानत सुक्ख।
थोड़े दिन अभ्यास से, वही होत है दुक्ख ॥ ५ ॥
जब जैसी हालत रही, तब तैसा ही सुक्ख।
कल जिसको हम सुख कहें, आज होय वह दुक्ख ॥ ६ ॥
सुख दुख असली कुछ नहीं, है वह एक खियाल।
ज्ञान बिना सब धूल है, और कहत जंजाल ॥ ७ ॥

गरमी फेंक लिहाफ़ को, और दुपट्टा ओढ़ ।
जाड़े में फिर वही लियो, दियो दुपट्टा छोड़ ॥ ८ ॥
असल बात कहि देत है, कर लो सोच बिचार ।
काम काजमें लगि रहो, सुखका यहि आधार ॥ ९ ॥
काम काज जो लगि रहें, हैं वह पूरे मर्द ।
सब हालतमें खुश रहे, नहीं तो पूरे बर्द ॥ १० ॥

गुण ॥ २३० ॥

ईंधन चन्दन जात एक, गुण अवगुण को भेद ।
चन्दन माथे देत हैं ईंधन चूल्हे खेद ॥ १ ॥
कुलहु भयो तो क्या भयो, जो पै गुण नहिं होय ।
छोटे कुल साधू भये, पूजत है सब कोय ॥ २ ॥
रूप डौल खासी भयो, जन्मे उत्तम कूल ।
गुण बिन कुछ शोभा नहीं गन्ध हीन ज्यों फूल ॥ ३ ॥
गुण बिन कुल क्या करत है, बृथा गर्व आयास ।
खायो घी दादा कभी, पोते के मुंह बास ॥ ४ ॥
ऊंचे गुण सब गुण रहे, सामरथी के माह ।
दुर्बल के गुण गुण नहीं, दुर्बलता की राह ॥ ५ ॥

अनुराग बिराग ॥ २३१ ॥

ध्यान अनूठा होय जब, तब ही हो अनुराग ।
तत्व ज्ञान जब ही भयो, तब ही होत बिराग ॥ १ ॥

चर्म हि सर्प दिखाय के, अचरज दर्शक होय ।
नट सेवक व्यापत नहीं, माया जानत सोय ॥ २ ॥

कीर्ति ॥ ३३२ ॥

अस्थावर कोइ वस्तु जो, बनी रहे बहु काल ।
देखत जान हि नाम हो, कीरत वही कमाल ॥ १ ॥
अथवा कोई काम हो, रहे जारी बहु काल ।
कीरति जिसकी है बनी, चलत सालहा साल ॥ २ ॥
जग में आते जोइ जन, मरते हैं सब कोय ।
कीर्ति छोड़ जोई गये, अमर वही जन होय ॥ ३ ॥

स्वार्थ ॥ ३३३ ॥

स्वारथ ही उपकार है स्वारथ ही अपकार ।
सत स्वारथ को जान के, साधू करी बिचार ॥ १ ॥
स्वारथ सागर पार बिन, गावत जो उपकार ।
ऐसे कपटी आलसी, चढ़न योग नहि द्वार ॥ २ ॥
अपना स्वारथ साधना, यहि पूरा उपकार ।
खाना कपड़ा जो लिया धन का सोची कार ॥ ३ ॥
भूम हि पैदा जो जिनिस, दाम लगा तेहि माह ।
ज़मीदार राजा प्रजा, मुटिया बैल अरु साह ॥ ४ ॥
मोदी दरजी धोबि भी, अरु दलाल गड़िवान ।
सब को धन वह बट गया, धर्म ही पहिरन खान ॥ ५ ॥

यही धर्म फल हो उन्हें, जिन को होय बिबेक।
खान पान स्वारथ नहीं, हेतु धरम को एक ॥ ६ ॥
मूरख भोगत धनहु को, अपना स्वारथ जान।
दर परंदे उपकार ही, फल बिहीन अज्ञान ॥ ७ ॥
घट में राम बिराजते, ढूढ़त नगर मकान।
भाव भाव को फल जुदो, भेद लहै बिन ज्ञान ॥ ८ ॥
कर्म फलों के भोग से, बच सकता नहिं कोय।
ज्ञानी भुक्ते ज्ञान से, मुरख भुक्ते रोय ॥ ९ ॥
स्वारथ नीचहिं टान कर, जाते हैं सब हार।
भाग्य हि को तब प्रवल कहि, उद्यम देते मार ॥ १० ॥
नीचन को है ज्ञान नहिं, धीरजता गुन नाय।
स्वारथ टानत दिन कटे, लाभ भयो नहिं ताय ॥ ११ ॥
ज्यों गुड्डी के सूत को, पकड़त लूटन हार।
धीरज धरि खींचत नहीं, पावत सूत हि सार ॥ १२ ॥
जल्दी करि जो खींचते, टुटत हाथहि सूत।
स्वारथ टानन हार हूं, रोते बैठ सकूत ॥ १३ ॥

स्वप्न ॥ ३३४ ॥

करत काम जड़ देह जब जागृत है वह काल।
लिंग देह का काम तब, सपनहि का हो हाल ॥ १ ॥
रोग शोक चिन्ता रहैं, दुरा कांच जब होय।
मत्तहि दर्शन स्वप्न को; वृथा करत तब सोय ॥ २ ॥

यह हालत जब नहि रहे, शान्ती करै बिराज ।
ज्ञानी और उदार हो, सत ही स्वप्न हि कार ॥ ३ ॥

अनसुनी ॥ ३३५ ॥

मूरख को मुख बिम्ब है निकसत बचन भुजंग ।
वाको उत्तर मौन है, बिष नहि व्यापत अंग ॥ १ ॥
तुलसी*बुरा न मानिये, जो गंवार कह जाय ।
जैसे घर की नर्दमा, बुरी भली बह जाय ॥ २ ॥

अति हौसला ॥ ३३६ ॥

छट्ठी में अति हौसला, अती हौसले व्याह ।
अति हौसल घर बांधनो, और मुक़दमें माह ॥ १
बहू काल बहु दरशिता, शुभ फल देख्यो नाय ।
नहि प्रकाश कारन कछू, जो संदेह हि जाय ॥ २ ।
दुख सुख की नीयम यही, होय कोइ परिमान ।
निश्चय जल्दी खरचते, पूरा होय निदान ॥ ३ ॥
बालक जब अति हर्ष से, हंसि हंसि जाय लुटाय ।
रोवत तबही देखलो, सकत न कोउ बुझाय ॥ ४ ॥
पर उपकार-अरु धर्म को, काम काज के माह ।
अती हौसला चाहिये, निज भोगन में नाह ॥ ५ ॥

अति हर्ष ॥ ३३७ ॥

ज्ञान बिना अति हर्ष से, फूले जी न समाय।
लड़के हों वा ज्वान हों, निश्चय रोना पाय॥ १॥
सांचे बन्धू होंय जी, झट पट देय भुलाय।
नहीं तो थोड़ी देर में, महा बिपद पड़ जाय॥ २॥
संपत मे नहि हर्ष हो, बिपत हि नही बिषाद।
झगड़े में धीरज रहे, बिरले पुरुषहि याद॥ ३॥

अति सब बुरा ॥ ३३८ ॥

लंका गइ अति दर्प से, कौरब गय अति मान।
अति दानहि से बलि बंधे, अती बुरा बहु जान॥ १॥
अति भोजन से मृत्यु हो, अति श्रम से हो चीन।
अन्ध होय अति पाठ से, अति हि दान से दीन॥ २॥
सुख दुख भोगा भोग सब, परिमित है सब चीज।
जो अति बेशी खर्च हो, होय नाश तब बीज॥ ३॥

विश्वास ॥ ३३९ ॥

उद्यम अरु सवधानता, तजिले परसे काम।
आलस करि फल भोगले, बिश्वस उसका नाम॥ १॥

विश्वास घातक के लक्षण ॥ ३४०

दगा बाज की रीत है, बात करत मुस्काय।
ज्यों मिहदी के पात में, लाली लखी न जाय ॥ १ ॥
ज्यों कमान झुकि चोट करे, डसत जोंक वे दन्त।
नीच मधुर जब बोलि हैं, दगा करेंगे अन्त ॥ २ ॥
ऊंचो जाहि सुभाव नहि, बड़पन जो दिखलाय।
निश्चय तब ही जानिये, दगा करन की राय ॥ ३ ॥

विश्वास घातक का दंड ॥ ३४१ ॥

पाप लोप सब हो गयो, रह्यो हि बिश्वस घात।
बिश्वासी नहि होय जो, कलि में पाप न बात ॥ १ ॥
बिश्वासि हि दंडी प्रथम, बिश्वस घातक बाद।
कारन विश्वस घात को, वही भयी है आद ॥ २ ॥
उद्यम अरु सवधानता, दो बृत्ती बहु मूल।
यही नष्ट करि करत है, आलस की अनुकूल ॥ ३ ॥

माया जाल ॥ ३४२ ॥

आलस प्यारी लगत है, मिहनत अति अकुलाय।
तप पर रुचि होती नहीं भोग षती मन भाय ॥ १ ॥
धन संचय होता नहीं, भोग हि में दें खोय।
परोपकार में रुच नहीं धन चिन्ता अति होय ॥ २ ॥

स्वारथ में व्याकुल फिरत, स्वारथ एक बनै न।
माया जाल इसे कहें, जाने सो भी करै न॥ ३॥
कहत चाह धन की अती, मिहनत करता नाय।
मित व्ययि हूं होता नहीं, भोग हि में बिलटाय॥ ४॥
मिहनत करि अरजन करो, वा व्यय देहु घटाय।
दोनो पथ को छोड़ कर, क्यों कर होये आय॥ ५॥
ज्यों ब्याधा पची धरत, दाना फांद पसार।
दाना पची देखता, जाल, न देखत पार॥ ६॥
चाहत है धन पान को, नहि जाते तेहि राह।
माया जाल हि गुण यही, लोभी बुध रहे नाह॥ ७॥
जानत हित को है वही, हित करता है नाहि।
अहितहु को सब जानता, चलत अहितहि राहि॥ ८॥
वृत्तिन रूपी जाल में, जीवहि दियो फंसाय।
माया में लिपटे वही, जीव मुक्ति क्यों पाय॥ ९॥

आसा॥ ३४१॥

सुख जगमें नहि मानते, केवल आसा माहि।
आसा पूरी हो गई, सुखहू दुख वन जाहि॥ १॥
पंडित का भाव हि जुदा, उनका और खियाल।
निर आसा सुख मानते, आसा कहें जंजाल॥ २॥

भेद ॥ ३४४ ॥

एक बात पर दोय मत, कहते उसकी भेद ।
झगड़े की यह बात है, जनम पाप अरु खेद ॥ १ ॥
कोई बात जब भेद की, आन पड़े तोहि पास ।
आप हि न्यायी होय कर, करहु मेल अनयास ॥ २ ॥
भेद भाव स्वारथ तजी, सोचत भेद हि भाव ।
ईश्वर नीयम है यही, तुरत मेल पा जाव ॥ ३ ॥
यह शकती सब में न हो, महा पुरुष ही जान ।
यही बात सब सोच ले, धरती स्वर्ग बखान ॥ ४ ॥

लज्जा ॥ ३४५ ॥

लेन देन विद्या गृहण, अरु अहार व्योहार ।
लज्जा जो कोइ करत है, नित हो उनकी हार ॥ १ ।
नारिन को लज्जा जहां, तहां पाप को ख्याल ।
नही लाज तब रहत है, बुढ़िया हो जब हाल ॥ २ ॥
पाप बिना लज्जा नही, पाप बिना नहि भेद ।
पाप विना भय हो नहीं, पाप विना नहि खेद ॥ ३ ॥

भय ॥ २४६ ॥

शंका हानी हीन की, भय कहते सब कोय ।
ज्ञान हीन को कहत है, भय अतिशय ही होय ॥ १ ॥
बड़ी हानि तन धन हि की, मानत है सब लोग ।
क्षण भंगुर दुइ बस्तु है, डरत न ज्ञानी लोग ॥ २ ॥
उभय बस्तु के नाश का, पल पल रहता योग ।
रहना ही अचरज कहत, नित नष्ट हि संयोग ॥ ३ ॥
इसी ज्ञान से जय बने, भय पर ही परभाव ।
भय को जीत हि लाभ हो, साहस की बरताव ॥ ४ ॥
भय को तब तक भय गिनो, पहुंच्यो नहि जब पास ।
आय गयो जब निकट ही, भय मत करो क़ियास ॥ ५ ॥
शत्रू वाको जानि के, अति दुर्बल ही मान ।
बुद्धी बल फैलाय के, निज करतल में आन ॥ ६ ॥
भय के पहले कहत हैं, सावधानता कार ।
आ पहुंचा जब भय निकट, साहस है दरकार ॥ ७ ॥

दुःख ॥ २४७ ॥

भेद लाज भय शोक से, जब पड़ता है काम ।
दुख को फाटक खुल गयो, दुख ही है अंजाम ॥ १ ॥
मन की भाई बस्तु जब, नहि लगती है हाथ ।
दुख कहते पर ज्ञान से, बदलें सुख के साथ ॥ २ ॥

धीरज असली दुख वही, नहि भरता जब पेट ।
अरु रोगी जो नित रहे, नहीं धरम सी भेट ॥ ३ ॥
जो जानत कर्तव्य है, नहि जानत वह दुःख ।
आदत भोग बिलास ही, कारन दुःख, न सुक्ख ॥ ४ ॥

हिंसा ॥ ३४८ ॥

हिंसा, केवल, जीव, बध, नहीं अर्थ है सार ।
जीव सतावन अर्थ में, हन् धातू व्यवहार ॥ १ ॥
जीव सतावन अर्थ ही, व्यापक होता अर्थ ।
जो, बधहू वा में बन्यो, और सतावन व्यर्थ ॥ २ ॥
जो बधने की बात में, समय कष्ट कम होय ।
जान छोड़ जो कष्ट दे, जीते जी भर रोय ॥ ३ ॥
दारत जब डुब जलहि में, झट पट क्यों मर जाय ।
कष्ट काल को बर्द्धन हि, हरि सों सहा न जाय ॥ ४ ॥
कष्ट काल को भाग करि, वृद्धि काल को पाप ।
उतनहि गुण भुकतन पड़े, यह बल दुखियन शाप ॥ ५ ॥
जोन जीव को शक्ति हूं, रक्षा की बिधि दीन ।
दया पाव उनसे अधिक, जो है समरथ हीन ॥ ६ ॥

बिद्वेष ॥ ३४९ ॥

सृष्टी को करता पिता, उस नाते को भाइ ।
भाई से बिद्वेष करि, क्यों हो पिता सहाइ ॥ १ ॥

द्वेष त्याग जो करत हैं, जगमें जग को काम।
उनके ही कारज सदा, करदे जग अरु राम॥ २॥
द्वेष भाव को प्रगट करि, शत्रु गढ़त जो आप।
कारज में उनके सदा, पड़े धक्का अरु शाप॥ ३॥

मान॥ ३५०॥

मान न होता मनुष में, हो जाते सब नीच।
बड़े होन की चाहना, इसी मान के बीच॥ १॥
नीच प्रकृति जब होत है, गिरने की परधान।
स्वारथ रूपी कूप में, गिरने देत न मान॥ २॥
मान हि से सत काज हो, नीच धनिन के हाथ।
मान लोभ नहि होय जो, धन ले जाते साथ॥ ३॥
मानुष को है सीख है, चन्द्र*कहत कर टेर।
सम्पद मांही नम्रता, आपद माहि करेर॥ ४॥
सम्मन*यह,न सुहाय, अमी पिलावन मान विन।
पर विष देन बुलाय, मान सहित मर वो भलो॥ ५॥
भाव नहीं आदर नहीं, नहीं नैन में नेह।
तुलसी*वहां न जाइये, कंचन बरसै मेह॥ ६॥
नीच जनन को लाभ हो, श्री सम्पत एक साथ।
मानहि रिपु तव होय कर, करत सुभाव हि हाथ॥ ७॥
मानहि रिपु जब ही भयो, निकट पतन ही काल।
ज्यों चूंटीके पर भये, निकट मरन ही हाल॥ ८॥
नदी तीर के वृक्ष ही, सिखलावत बहु नीत।
बरखा बाढ़ हि वेग में, किस पर कैसी बीत॥ ९॥

मान भरे जो अड़ गये, टूट फूट बह जाय ।
श्रवु बेग जानत नहीं, अपन हि प्राण गंवाय ॥ १० ॥
बेत वृच्छ ही बच गयो, सिर ही दियो नवाय ।
राह बेग ही पकड़ ली, आप हु दियो बहाय ॥ ११ ॥
महा बेग की बाढ़ तो, चण ही जाय बिलाय ।
ज्यौं की त्यौं बेत हि पुनी, सुखी खड़ा रह जाय ॥ १२ ॥
नोकरिया चोरी कर हि, नौकरि छोड़न जाय ।
मान हेतु यह वृत्ति ही, भाग हि मान बचाय ॥ १३ ॥
उचित धनिन को है तभी, मान हि देय बचाय ।
सन्धानहि करि काढ़ लें, धन चोरी जो खाय ॥ १४ ॥
मूढ़ धनी धन छोड़ कर, चोरी पकड़न जाय ।
मान गये धन कौन दे, इज़्ज़त जब चलि जाय ॥ १५ ॥
मान बचावन हेत ही, सब दुख सहते लोग ।
मान हि कारण जगत में, बहु जन की ही भोग ॥ १६ ॥

घृणा ॥ ३५१ ॥

लोक सुधारण के लिये, घृणा भई है स्टष्ट ।
घृन्नित के तजि देन की, घृन्ना नही अभिष्ट ॥ १ ॥
मल बस्तु अरु नीच से, रक्षक स्वास्थ समाज ।
घृन्ना वृत्ति प्रगट हो, जाते ही न अकाज ॥ २ ॥
सच पूछो घृन्ना बिषय, अलस लोग घृन्नाई ।
दुष्टहु झंझट जो झले, वह है बहुत कृपाई ॥ ३ ॥

ठेस पाय वह सुधरिहै, लगि निश्चै सतकाज ।
उकठाहे बेंगट भले, नहीं सरल बेकाज ॥ ४ ॥

शाप ॥ ३५२ ॥

ऐसे काम न कर कभी, जो मन काहु दुखाय ।
मन एकाग्रहि शाप हो, तुरत फलहि पड़ जाय ॥ १ ॥
दस जन जाको कोसते, बुरा तुरत ही ताहि ।
सावधान होना सदा, न कर समाज बुराहि ॥ २ ॥

भूल भ्रम ॥ ३५३ ॥

नियम सुभाव हि है यही, काम हि बदलत जात ।
एक काम के समय में, सोचत और हु बात ॥ १ ॥
साधन जब की सिद्ध,हो, बिन मन होता काम ।
बिन सिद्धी बे मन क्रिया, भूल हि ठाम हि ठाम ॥ २ ॥
धीरज शिक्षा जाहि नहि, मन चाहत दो काम ।
सिद्धी बिन कैसे बने, भूल होय अंजाम ॥ ३ ॥
मनकी फुरती व्यग्रता, काम करन की चाह ।
धीरज की तालीम बिन, गुण जा आलस राह ॥ ४ ॥
मनोयोग सब नष्ट हो, स्थिरता मन नहि होय ।
या कारन सब काममें, भूल करत है सोय ॥ ५ ॥
लड़के माला में पढ़े; पढ़ते सुरहिं बढ़ाय ।
डोल डाल कर पढ़त है, मन रहें और हि ठांय ॥ ६ ॥

याही ते सब भूल ही, रहत न पाठ हि याद।
एक हि सिद्धी बिन किये, अन्य लगन बरबाद॥ ७॥

वृथा गौरव॥ ३५४॥

भीतर तो खोल्हड़ करे, बाहर करते नाम।
ऐसी मूरख जानते, गौरव का यह काम॥ १॥
अपने बूते से अधिक, करत समाज हि रीत।
गौरव उसमें है नहीं, बरन होय अपकीर्त॥ २॥
ऐसो जाहि सुभाव है, रहत सदा ऋन ताहि।
अपने मन मिट्ठू बनत, जानत गौरव वाहि॥ ३॥
जाकी जैसी हाल है, सब ही रहत प्रकास।
ऋण, ले आडम्बर करन, गौरव की क्या आस॥ ४॥
बघछल ओढ़हि खर चल्यो, खेत खान के हेत।
भली भांति पूजा कियो, कृषक जानि संकेत॥ ५॥

वृत्तियों का झगड़ा॥ ३५५॥

वृत्तिन में मत भेद को, होय कभी जो जंग।
सदा बिवेक हि जय रहत, हारत आदत संग॥ १॥
आदत पाबन्दी बुरी, भली बुरी जो होय।
कर्तव्य-और बिवेक को, आदत देतो खोय॥ २।

बिलास रोग॥ ३५६ ॥

पुरुषारथ बिन भाग्य धन, तप बिन पचता नाय।
रोग बिलास हि हो,तभी, लक्षण यह बतलाय॥ १ ॥
यह लक्षण जामें न हो, तपसी वाको मान।
पूजनीय बह देश हो, महा पुरुष तेहि जान॥ २ ॥
बिन मिहनत धन मिलगयो,भयो अजीरन ताय।
प्रगटो रोग असाध्य हो, लक्षण यह बतलाय॥ ३ ॥
गरमी को जाड़ा करे, जाड़ा गरम करेय।
स्वाभाबिक कोइ भोगही, अपने भोग न लेय॥ ४ ॥
सुस्वादू भोजन अती, क्षुधा रहत अति मन्द।
क्षुधा से उनको दुख नहीं, होय अति हि आनन्द॥ ५ ॥
क्षुधा जगत को देय दुख, उनको सुख को काल।
भूखे नंगे हैं दुखी, कैंसे हो यह ख्याल॥ ६ ॥
सदा रहत बेकार ही, होता तसमा पाय।
बिपत पड़े कबहूं ज़रा, भागहु सकते नाय॥ ७ ॥
सब कोइ सत उपदेश हो, अति आदर से लेय।
मन भाया जो नहि कहे, निर आदर करि देय॥ ८ ॥
जग की जितनी रीत है, इन की सब उलटीय।
सुख दुख इनका अलग है, धन ईश्वर करनीय॥ ९ ॥
कोइ रोग की औषधी,. जब करने यह जाय।
फल पाने के पूर्व ही, अत्याचार बढ़ाय॥ १० ॥

साधि क्षुधा कर औषधी, सेवत उत्तम देश।
अतिशय भोजन करहि ले, होत अजीर्ण हि शेष ॥ १२ ॥
मानुष को हि सुभाव जो, सब उल्टो ही जाय
आलस आय प्रधान हो, देह ढील पढ़ जाय। ॥ १३ ॥
इन्द्रिय जल्दी शिथिल हो, बढ़ हि लालसा जाय।
दुख सुख कुछ नहि बूझते, अपने भोग सिवाय ॥ १४ ॥
पुष्टइ पाचक की सदा, बनी रहे दरकार।
स्तावक बैंद-अरु ज्योतिषी, बहु पावत प्रतिकार ॥ १५ ॥
कटु कसैल औषध कभी, करत नहीं व्यवहार।
देर लगे आरोग्य में, बैद से हो बेज़ार ॥ १६ ॥
प्रति दिन भोजन में सदा, करते टालम टाल।
रोग दिखाई जब हि दे, भोजन बिन बेहाल ॥ १७ ॥
दुर्बलता के हेतु से, बिश्वस अति बढ़ जाय।
बिश्वस घातकता बढ़े, तौ भी गम खा जाय ॥ १८ ॥
दुर्बलता मन की बढ़े, चक्षु लाज बढ़ जाय।
कष्ट सहन को शक्ति नहि, दृष्टि कृपण हो जाय ॥ १९ ॥
आंख देख कर दे नहीं, दाब खाय सह लेय।
साधुन को हूं चोर करि, वंचकता सिख देय ॥ २० ॥
मस्तिष्कहु दुर्बल जो हो, बूझ सकत नहि बात।
सुर ही पर बहु ध्यान हो, शब्दारथ न जनात ॥ २१ ॥
जो कोइ जोइ बूझाय दे, वही हो पक्की बात।
जो कोइ हरदम साथ हो, चलत उसी की घात ॥ २२ ॥

निन्दा के सुर अस्तुती, होती निन्दा रूप।
वैस हि अस्तुत निन्द्य सुर, अस्तुति हो तद्रूप ॥ २३ ॥
हाथ तले चाकर जो हों, मंत्री गुप्त सिवाय।
दिक सिक करते ही रहें, दगधें घात हि पाय ॥ २४ ॥
नीचन की सुहबत रहै, भले भलों से हीन।
घर से बाहर निकलना, बुरी बात मन कीन ॥ २५ ॥
मुर्दा वा बीमार की, और भयानक बात।
ख्यालहु दुर्बल होत है, ख्याल करी नहि जात ॥ २६ ॥
बड़े लाभ के लोभ से, झगड़ा लेते मोल।
उपकारी हो मित्र हो, लोभ हि जाते डोल ॥ २७ ॥
युद्ध मनुष अरु पशुन को, देख अति हरखांय।
अपने मन पर तर्क सुन, महा रुष्ट हो जाय ॥ २८ ॥
विवेक न कुछ भी रहत है, हठ प्रधान बन जाय।
सत्य न्याय पर रुचि नहीं, मन माना मन भाय ॥ २९ ॥
क़दर नहीं गुणि साधु की नींच होय परधान।
स्तावक गण सब मित्र हो, सचे की अपमान ॥ ३१ ॥
ग़रज़ हि भान दिलायके, पावहु पूरी मान।
ग़रज़ नहीं जब जान ले, वृथा करत अपमान ॥ ३२ ॥
पिता पुत्र वा कोइ हो, मन नहि काहू साथ।
अपने घात सिवा कभी, चलत न एकहु हाथ ॥ ३३ ॥
उदासीन अरु शत्रु फल मित्र भक्त छलि देय।
बिश्वस घात कृतघ्नता, राज नीत कर लेय ॥ ३४ ॥

जगमें काहू की भली, तनक सही नहि जाय।
आश्रित लोगों की ज़रा, बृद्धी सुनि जरि जाय ॥ ३५ ॥
करे जो इनके कोप पर, तनकहु बचन उपाय।
पर उपाय सह नहि सके, नया क्रोध बढ़ि जाय ॥ ३६ ॥
बैठे भलभानुष रहे, पास हि में दस बीस।
उठन कहें गुपतंत की, होय साधु को रीस ॥ ३७ ॥
आलसता से छोड़ दे, दामी बहुतर चीज़।
आलसि चाकर ले चुरा, नाम सबन को छीज ॥ ३८ ॥
कहत बिलासी जगतमें, होय महज़ बेकार।
इनके मल अरु मूत हूं, काम लगत नहि सार ॥ ३९ ॥
जगमें जितने मनुष हैं, सबके साथी होय।
बिपत पड़े इन पर कभी, साथी एक न होय ॥ ४० ॥
लगि विलास ही रोग यह, मानुष भी हैवान।
शान्त जब हि यह होयगे, भारत तब कल्यान ॥ ४१ ॥
पहिले हीं यह जानवर, सिंह बाघ की रूप।
खी खा कर हो बेहया, स्वान बिडाल स्वरूप ॥ ४२ ॥
जैसा दुख यह सह सके, याते है यह बात।
कैसा भी दुखिया जो हो, मानुष से न सकात ॥ ४३ ॥
इन के लक्षण पूर्ण यह, कुछ जो करत न काम।
करते कुछ भी काम जो, तार तम्य हो आम ॥ ४४ ॥
छोड़ ममत तप जो करे, तभी राग यह जाय।
नहि तो मान अरु धन सभी, खोय खाय पछताय ॥ ४५ ॥

धनिक पुत्र जो साधु हों, तपी वशी ही जाय।
कुल धन दोऊ लाभ करि, महा पुरुष कहलाय ॥ ४६ ॥
धन्य राज्य वह देश धन, धनिगन साधू होय।
धन्यं भाग परजान की, एक दिन होगा सोय ॥ ४७ ॥
बहु दरशी यह कहत हैं, यह होना कभि नाय।
सोन हि कलि की बास है, नीयम यहि बरताय ॥ ४८ ॥
जन्म धनी घर साधु हो, धन भी बढ़ता जाय,
नया धनी फिर हो नहीं, जग रीत हि उलटाय ॥ ४९ ॥
भारत में धनि कम नहीं, देखहु आंख उठाय।
सौ बरस हि के बीच में, सब ही गये बिलाय ॥ ५० ॥
भाग नहीं जेहि राज हो, बिकरी हो नहि भूम।
अब तक चलते घर वही, रही धर्म जहां धूम ॥ ५१ ॥
कहां गये काहू धनी, कहां सेठ गुजरात।
कहां जगत्सेठहु गये, धन्ना सेठ हु बात ॥ ५२ ॥

धीरज का फल ॥ ३५७ ॥

तुलसी*धीरज के धरे, कुंजर मन भर खात।
टूक टूक के कारने, स्वान घरा घर जात ॥ १ ॥
आपद में धीरज धरत, ऐसहि बढ़ते लोग।
धीरज गइ तो सब गया, मिला न कुछ पर शोग ॥ २ ॥
स्तुति निन्दा कीऊ करहि, लक्ष्मी रहहि कि जाय।
मरे कि जिये, न धीर जन,धरे कुमारग पाय ॥ ३ ॥

दसरथ राज हि देत हो, अरु पठवत हो बन।
राम भाव एक हि रह्यो, यहि है धीरज पन ॥ ४ ॥

बिद्या का फल ॥ ३५८ ॥

बिद्या से गुण होत हैं, धन गुणही से होय।
धन से धर्म-अरु धर्म से, सब सुख आनंद होय ॥ १ ॥
बिद्या से गुण ही नहीं, नहीं होय सत्पात्र।
शिक्षक पापी होय वह, शिक्षा दियो अपात्र ॥ २ ॥
जिन कुपात्र शिक्षा दियो, सृज्यो तिन पाखंड।
उनहि राज द्रोही रच्यो, जो से यूरप खंड ॥ ३ ॥
देत दुहाई हैं सभी, स्वाधीन हि आईन।
कै दिन जेल निवासि को, क्यों न करत स्वाधीन ॥ ४ ॥

पात्र गुण ॥ ३५९ ॥

सद्‌गुण सब सत्पात्र में, रहते गुण के रूप।
वह गुण होंय कुपात्र में, होता दोष स्वरूप ॥ १ ॥
साधू बिद्या सीख कर, फल पाते हैं ज्ञान।
मूरख झगड़न के लिये, शस्त्र लेत हैं मान ॥ २ ॥
साधू धन को पाय कर, काम लगावत दान।
मूरख के धन होय जो, बहुत बढ़त अभिमान ॥ ३ ॥

साधू बल को पाय कर, रचा करते दीन ।
मूरख बल को लाभ करि, पर पीड़न ही कीन ॥ ४ ॥

बिद्या ग्रहण ॥ ३६० ॥

उत्तम बिद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय ।
पड़े अपावन ठौर में, कंचन तजे न कोय ॥ १ ॥

बुराई का बिचार ॥ ३६१ ॥

जो देखत हम लोग हैं, भले बुरे जग काम ।
भली बुरी बातें बहुत, लाखों उनका नाम ॥ १ ॥
यह सब ईश्वर ने नहीं, पैदा किया है काम ।
मानव ही सब काम करि, रखते गे हैं नाम ॥ २ ॥
पर बस्तू छिपि हरन को, चोरी रक्ख्यो नाम ।
बल पूर्वक धन हरन को, कहते लूटन काम ॥ ३ ॥
पहिले जिसने शुरू किये, यह सब खोटे काम ।
उसी नमूने पर हुआ, बुराई इस का नाम ॥ ४ ॥
उसी नमूने पर हुई, बड़ी बड़ी तालीम ।
छोट बड़न के काम सो, बढ़ गइ ढेर अज़ीम ॥ ५ ॥
तनक बुराई हूं करे, नहि जाती वह फेर ।
चन्द्र सूर्य्य जब तक रहे, रहत बुराई ढेर ॥ ६ ॥
स्वारथ में सत त्याग को, कर् यो नीव मज़बूत ।
अश्वत्थामा हत कह्यो, धर्म राज को पूत ॥ ७ ॥

मालिक तोषन के लिये, उचित करन हैं पाप ।
सुन्यो न द्रोपदि बात को, भीषम जी खुद आप ॥ ८ ॥
बड़ो बड़ो की बात में, करना नहि एतराज़ ।
यही नमूना देख कर, चलते हैं हम आज ॥ ९ ॥
कैसे छोटे नरहु हों, होते सब के मित्र ।
मित्र नमूना लेत हैं, तैसेहि होत चरित्र ॥ १० ॥
पुन कुछ ऐसी वस्तु नहि, बड़ी "बुराई त्याग" ।
जो इस के माहात्म्य को, जानि बूझिहै लाग ॥ ११ ॥

ओछी और दूरदर्शीनीत ॥ ३६२ ॥

ओछी नीती है वही, लाभ सामने चाह ।
बूनी बोया खाय ले, फल तक धीरज नाह ॥ १ ॥
दूरदर्शि वह नीत है, सहन योग जो कष्ट ।
थोड़े दिन सह कर मिले, अपना अपना इष्ट ॥ २ ॥
नारद ने कहि कंस करि, कृष्ण भ्रातृ को नाश ।
परिछित पूछत रुष्ट हो, नारद क्या बदमाश ॥ ३ ॥
शुकदेव कहे महराज यह, दूरदरशि की नीत ।
करे पाप पापी जित हि, सत्वर हो अपनीत ॥ ४ ॥

तबियत दारी ॥ ३६२ ॥

परकी संग मिलि भेद को, छेदहि ज्ञान कुठारि।
स्वारथ को जो दाबि दे, कहते तबियत दारि ॥ १ ॥
श्रेष्ट अती यह गुण कहे, तप से ही अति भारि।
यह गुण पायो जो पुरुष, पायो दल सरदारि ॥ २ ॥

समाप्त।

पांचवां अध्याय।

स्त्रियों का विषय।

स्त्रियों के काम, स्वभाव और हक़ ॥ ३६४ ॥

गर्भादिक की पीड़ से, सकत, न कर पर काम।
अपनी गृह को काज तजि, काम न कोई है बाम ॥ १ ॥
कड़ि मिहनत स्वाधीनता, नारिन को नहि काम।
कोमलता अरु भोग ही, पायो बिध से बाम ॥ २ ॥
नर नारी हक़ सम नहीं, कहत भेद ही दोय।
सबही भिन्न बिरुद्ध गुण, दोउ मिल पूरण होय ॥ ३ ॥
कब्जा जैसे सम नही, नर मादगि द्वय होय।
दोउ मिलहि द्वारे जड़ें, पल्ला लग खुल होय ॥ ४ ॥
दो टुकरे सम गुण रहे, अलग अलग ही काम।
तैसहि बिन दोऊ मिले, नही होत आराम ॥ ५ ॥
घर नारिन के हाथ ही, बाहर पुरुषन हाथ।
सुख कपाट तब ही खुलत, जब हों दोनो साथ ॥ ६ ॥
नारिन के रुज़गार की, यहां नही दरकार।
एक पुरुष की आयसे, चलत खूब संसार ॥ ७ ॥

यूरप हिन्द समाज में, बहुत फेर की कार।
बहु धन मासिक लाभ हो, तबहू रहत उधार ॥ ८ ॥
पुरुषन सी बढ़ कर कहे, गुण दोष हि सब बाम।
दुर्बलता के हेत से, दुर्बल ही सब काम ॥ ९ ॥
नारी नारिन सामने, नग्न होत नहि लाज।
लज्जा पुरुषन के सदा, भारत यही समाज ॥ १० ॥
सत नारी पूजित सदा, देवी सम तेहि मान।
नीच नार दासी कहै, सिर पर नहीं उठान ॥ ११ ॥
नीचे हि बहु तायत रहत, उच्च वस्तु कम जान।
नीच विरोधी नियम ही, चलन सधारन मान ॥ १२ ॥

स्त्रियों की स्वाधीनता ॥ ३६५ ॥

सुआधीन अबला जहां, करत पुरुष सा काम।
स्वाधीन हि चल फिर करत, जिस समाज की बाम ॥ १ ॥
आंख खोल कर देखिये, उस समाज का हाल।
घर तजि बन हो अधिक सुख, छोड़ छाड़ जंजाल ॥ २ ॥
जो चाहे तिय दास हो, भोग हि दुख अरु शोक।
एक हया को छोड़ दे, जीते तीनो लोक ॥ ३ ॥
जगमें थी स्वाधीनता, नारीगण की आद।
बहु दरशिन ने देख के, दिया रोत वह बाद ॥ ४ ॥
पुरुषगण सी स्वाधीनता, नारी गण जो पांय।
दाढ़ी मोछ जमें तभी, नारी पन हि हरांय ॥ ५ ॥

लज्जा नेव हि सी गये,   भ्रष्ट हो गर्भ स्थान।
पुं लक्षण धारण करत,   गई आस संतान ॥ ६ ॥
दुख सुख अनुभव शक्ति नहिं, बहु दरशी हूं नाह।
सोचन को समरथ नहीं,   सुवाधीनता चाह ॥ ७ ॥

परदा नशीनी ॥ ३६६ ॥

परदा भारत रीत नहि,   नहि राखत तिय कैद।
बे परदी सी है नहीं,   सतिपन बचन उमैद ॥ १ ॥
व्यभिचारहु नहि रीत है,   भारत कोइ समाज।
यों तिय परदे बीच ही,   देखत हैं हम आज ॥ २ ॥
दक्खिन में परदा नहीं,   नहि परदा गुजरात।
नहि परदा पंजाब में,   मरवार हु यह बात ॥ ३ ॥
परदा है बंगाल में,   और कहत बेहार।
मुसल्मान परदा कठिन,   पच्छिम कम बिहवार ॥ ४ ॥
नग्न नारि शुकदेव की,   देखत नहीं लजांय।
व्यास देख कपड़ा लियो,   परदा पुरुष बनाय ॥ ५ ॥
बंगाला बेहार में,   ज़मींदार बेकार ।
परदा याही ते अधिक,   भयो यहां बेहवार ॥ ६ ॥
परमेसरि नोटहु कियो,   बंगाला बहु पाप।
काम काज नहि भोग बहु,   पर्दा हू बहु खाप ॥ ७ ॥
पुरुष निकम्में हैं जहां,   काम काज नहि काम।
कठिन जतन सो राखिये,   पर्दा माही बाम ॥ ८ ॥

पर्दा वहां न चाहिये, नैक चलन जहां धीर।
तऊ औसर नहि दीजिये, नारी गन की थीर ॥ ८ ॥

स्त्री शिक्षा ॥ ३६७ ॥

पुरुषन की शिक्षा प्रवल, नही होय जिस काल।
नारिन की शिक्षा वहां, होना अती कुचाल ॥ १ ॥
बय बल विद्या ज्ञान से, नारी सम वा न्यून।
किधौ नियम यह आर्य्यगण,लोक चरित को घून ॥ २ ॥
विद्या से जब रस मिले, हो बिलासिता काम।
पुस्तक पाठ हि के सिवा, अन्य काम नहि नाम ॥ ३ ॥
बिद्या हूं अध्ययन करि, और सिलाई काम।
जांचि भांति देख्यो बहुत, रोग होत है बाम ॥ ४ ॥
बैठ बैठ कर मन लगा, लगा तार हो काम।
रोगग्रसित होनहि पड़े, बिन श्रम अरु व्यायाम ॥ ५ ॥
गृह काज हि पर हाथ दै, धन अपचय बे तौर।
रोग इधर उपज्यो जुदा, बंसहि खोना और ॥ ६ ॥

स्त्रियों का बाल्य विवाह ॥ ३६८ ॥

युवा ब्याह बहु यत्न से, होता यूरप देश।
तो भी लाख तिलाक हो, यह क्या सत उद्देश ॥ १ ॥

दो मानव एक राय हों, सब सम्भव नहि बात ।
जो बातें होनी नहीं, वही करनेही जात ॥ २ ॥
मजबूरी बिन होत नहि, दो मानव एक राय ।
तातें नियम तिलाकको, भारत दियो उड़ाय ॥ ३ ॥
कन्या छोटी घर हि कीं, प्रकृति हि में मिलि जाय ।
पक्की ठोठ जो आवती, अनमिलि हो भुंभलाय ॥ ४ ॥
बाल ब्याह की रीत से, फल प्रत्यच दिखाय ।
निश्चय ही एक लाखमें, अनमिल हो की नाय ॥ ५ ॥
बाल ब्याह की रीत से, जनमे जो सब सूर ।
सरकारी फ़ौजों हि में, झलकत उनको नूर ॥ ६ ॥
कन्या बर को भेद वय, बरस आठ की जान ।
ऐसो ब्याह हि ब्याह नहि, इह कहो वागदान ॥ ७ ॥
ठीक ब्याह ऋतु शान्ति है, यही शास्त्र आधार ।
भंग करत नीयम जोई, उससे हैं लाचार ॥ ८ ॥

पुनर्विवाह ॥ ३६९ ॥

नर से नारी जन्म की, संख्या कहते बीस ।
क्वारी "नन" यही काज को, हुकुम बजायो ईस ॥ १ ॥
भारत में है रीत यह, फूटा जिसका भाग ।
बिधि प्रबन्ध पूरा कर हि, पुरुष हि करती त्याग ॥ २ ॥
एक हि की पत्नी कहें, वेश्या बहु जन नार ।
पुनर्ब्याह दूजो पुरुष, सती नहीं स्वीकार ॥ ३ ॥

जिन में रीत हु चलन है, नहि करती वह ब्याह।
भारत सी जितनी सती, होती हैं कहुं नाह ॥ ४ ॥
दोष-अरु गुण सब काम में, रहता है जग माहं ।
बेशी जिसका भाग हो, नाम होत है ताह ॥ ५ ॥
दोष व्यभीचार हि कहत, सधवा विधवा दोय ।
ताको परिहार हि कभी, पुनर्व्याह किम होय ॥ ६ ॥
पुनर्व्याह कर्तव्य है, नही किये हो पाप ।
कहते ऐसी कोइ नहि, तब काहे की छाप ॥ ७ ॥
कहत पराशर हि मुनी, विधवा करे न ब्याह ।
पूजनीय वह देवि है, तप ब्रत पालन राह ॥ ८ ॥
जो विधवा नहि रह सके, वेश्या होने जाय ।
आब छोड़ कर ब्याह हो, मानहु खो पछताय ॥ ९ ॥
एक बचन "नष्टे मृते" "मृत भर्तेंच" और ।
दोनों ही भारत चलन, जात जात कर गौर ॥ १० ॥
नीच हि करते ब्याह हैं, ऊंच न दूजो ब्याह ।
शास्त्र रीत दोउ चलत है, अपनी अपनी राह ॥ ११ ॥
अर्द्धंगी तहां होत है, जहां न विधवा ब्याह ।
पुनर्व्याह नीयम जहां, विश्वस रहता नाह ॥ १२ ॥
"नन" की क्वांरी रहन की, कौन कहत है जाय ।
जहां रीत यह चलन है, कौन कहत तेहि नाय ॥ १३ ॥
बिधना के जो नियम हैं, वही प्रवृत्ति कराय ।
इसका खंडन जो करे, पाप वही बरताय ॥ १४ ॥

बालक सके न बूझने, बहु दरशी की बात।
बूढ़े ही तब सूझिहै, ठेकेगी जब गात ॥ १५ ॥

बिबाह ॥ ३७० ॥

जीवन फल में ब्याह अरु, काम काज का फन।
काम बिना जग आंधरा, घरनी बिन घर बन ॥ १ ॥
नाते में एक गोत में, करना नहि कभि ब्याह।
दुर्बल मन अरु देह हो, जात नष्ट ही राह ॥ २ ॥
नाते में जो ब्याह हो, अमि तपि जन्म न होय।
न ही अंक की ज्ञान हूं, अति बिलासि ही होय ॥ ३ ॥

विवाह भार ॥ ३७१ ॥

युवा बुद्धि पक्की नहीं, उन पर गुरु तर भार।
ब्याह करन की डार मत, होता रूप ठगार ॥ १ ॥
यूरपियन खुद जांचते, अकसर होत तिलाक।
बहु दरशी मां बाप से, बचे न हीं चलाक ॥ २ ॥

विवाह व्यय ॥ ३७२ ॥

अर्थ शास्त्र की रीत से, धनवरोध बहु पाप।
हेर फेर धन शिल्प फल, ब्याह हि क्रिया कलाप ॥ १ ॥
नीच कृपण स्वारथ बिना, धन नहि हाथ लगाय।
ऐसी रीत हि मेटना, देश अनिष्ट कराय ॥ २ ॥

निर्धन को जो कष्ट हो, मूरखता है मूल ।
ज्ञान उन्हें जब होयगी, स्वयं होय अनुकूल ॥ ३ ॥
मुष्टि दान की रीत ज्यों, व्यय विवाह तद्रूप ।
व्यय विवाह से लाभ है, बनत घर हि को रूप ॥ ४ ॥
यथा शक्ति सब करत है, व्यय विवाह साहाय ।
ताते घर भरपूर हो, खर्च ब्याह को जाय ॥ ५ ॥
ऋण करके करना नहीं, कभी खर्च ही ब्याह ।
उचित समाज हि रीत यह, बंद करन ऋण ब्याह ॥ ६ ॥

बहु विवाह ॥ ३७३ ॥

बहु विवाह में सुख नहीं, फसत पुरुष महा जाल ।
तारतम्य के भेद से, होता कभी बहाल ॥ १ ॥
सन्तति की आसा न हो, आज्ञा ले कर नार ।
खीर पीअ तेहि ठीक करि, दूजी ब्याह हि सार ॥ २ ॥
बृथा करन बहु ब्याह जो, प्रीत हि जात घटाय ।
अप्रीत हि तेहि भोग हो, घर ही नरक बनाय ॥ ३ ॥
एक पुरुष बहु नार से, हो सकता संतान ।
एक नार बहु पुरुष से, नहि युक्ती न बिधान ॥ ४ ॥

कुल कन्या से बर्ताव ॥ ३७४ ॥

कुल कन्या गण की जहां, है नहि पूरी मान ।
लक्ष्मी की नहि बास हो, होय दरिद्र प्रधान ॥ १ ॥

बहुदरशी बहु देख कर, बतलायी यह भेद।
घर घर घुस कर देख लो, सुख भोगत अरु खेद ॥ २ ॥
मात पिता खुद होत है, सन्तानहि औतार।
सुखं दुख दौड़त खूनसे, ज्यों बिजली को तार ॥ ३ ॥
एक पेट के खून को, दूरी कोस पचास।
दुखं सुखं की यों भोग हो, मानो बैठो पास ॥ ४ ॥
माया खेल हि फसि रहे, मूढ़ न बूझत बात।
निर्मल प्रेम हि लखि पड़े, बिद्वेषण रुक जात ॥ ५ ॥

कुल बधुवों से बर्ताव ॥ ३७५ ॥

कुल बधुगण को कीजिये, यथा योग्य सन्मान।
ताते सुख सम्पत बढ़े, बढ़त बंस की शान ॥ १ ॥
बधुगण के सुख हेत, यथा शक्ति कीजे जतन।
पीछे अपने हेत, नहि तो निश्चय ही पतन ॥ २
बधुगण की शिक्षा यही, देहु काम को भार।
गृह कारज पर लक्ष हो, होय शक्ति बिस्तार ॥ ३ ॥
कहत भली जो नार है, लक्ष्मी की औतार।
घर भर मिल पूजन उचित, यहि आज्ञा कर्तार ॥ ४ ॥
भली नहीं जो नार हैं, दासी गनना ताहि।
सिर पै नहीं चढ़ावनो, फिर कभि नहि सुधराहि ॥ ५ ॥
धन वाको नहि दीजिये, गोतियन संग कर बास।
मरने पर वारिस न हो, खोर पोश हो आस ॥ ६ ॥

सती ॥ ३७६ ॥

जानत वा अंजान में, करै कैस हू पाप ।
रहे भक्ति पति पर अचल, सत्य सती वह आप ॥ १ ॥
तारा अहिल्या द्रौपदी, कुन्ति मंदोदरि जान ।
भोर हि उठकरि नाम ले, बहुत सती तरि मान ॥ २ ॥
मन जिसका है हाथ में, दोष लगत नहि ताह ।
मन बिकार हो पाप हैं, कर्मेन्द्रिय कुछ नाह ॥ ३ ॥
भारत रीत हि यों बनी, सतिपन की हो रीग ।
बहु यत्न हु पर नहि बने, असतित्वहि संयोग ॥ ४ ॥
मूढ़ पुरुष सन्देह करि, बिन प्रमाण बधे नार ।
भारत रीत न होन दे, असती की कभि कार ॥ ५ ॥

असती ॥ ३७७ ॥

नियत हि साधन व्यसन की, करता जो अभ्यास ।
अभ्यासी अहिफेन ज्यों, होत अभाव प्रयास ॥ १ ॥
बिन ऋतु नारी संग की, जो करता अभ्यास ।
बुद्धी अरु श्री अंग को, नष्ट रोग हो त्रास ॥ २ ॥
नारिन स्वामि अभाव में, नष्ट सतीपन होय ।
मनसा अथवा कर्मणा, असती करता सोय ॥ ३ ॥

भली स्त्रियों के लक्षण ॥ ३७८ ॥

रात भोर सोवत उठत, देख सके नहि कोय ।
सब के पहिले उठत है, सब के पाछे सोय ॥ १ ॥
स्वामी स्वामीबन्धु से, हिल मिल ऐसो होय ।
मानी जनमी सोइ घर, पर घर की नहि कोय ॥ २ ॥
हंस मुख चिहरा सर्बदा, दुख सुख जाती पीय ।
दोष करै घरमें कोऊ, कहती निज करनीय ॥ ३ ॥
घर को दासी जान निज, स्वामी को घर दास ।
करै कमाई पुरुष हूं, तौभी मानै सास ॥ ४ ॥
सास ननद का भार सब, आपहि लेय उठाय ।
काम करन कोउ जाय जब, पहिलेहि ले सपराय ॥ ५ ॥
बिस्तुर नहि एक बस्तु हो, सब रखती है साज ।
समय समय पर करत है, सब हो पूरे काज ॥ ६ ॥
देखत चिहरा बूझ ले, सब के मन का भाव ।
बिना कहे तुरत हि करै, जो है काम लगाव ॥ ७ ॥
फुरती पर सवधानता, रख कर करती काज ।
टूट फूट गिर पड़न को, भूल चूक बहु लाज ॥ ८ ॥
रहे साफ़ सुथरी सदा, जूंय न सिर में एक ।
बदबू कपड़ों में न हो, छूआ छूत विवेक ॥ ९ ॥
घर बाहर दिन की समय, रखती मोटी चाल ।
करें सिंगार जब रात हो, होय न काहु ख़ियाल ॥ १० ॥

लज्जा दृष्ट हि में रहे, काम्र न होए लाज ।
जहां बिगड़ता देख ले, तजे लाज की काज ॥ ११ ॥
लड़कन की तालीम में, और घर हि सब काज ।
आलस तनक न होय तो, है लच्मी वह आज ॥ १२ ॥
बच्चों के भोजन वज़न, मन करि राखे ठीक ।
गड़बड़ भोजन में न हो, करतहु बहुतर टीक ॥ १३ ॥
आटा पीसत आप ही, दले दाल भी आप ।
चौका आप हि करत है, भोज्य अन्य नहि खाप ॥ १४ ॥
कांसा पत्थर पात्र को, देय न काहु कुलाय ।
सदा रहत लगि काम में, कभी न अस्कतियाय ॥ १५ ॥
या बिध अपने काम में, पैसा लेय बचाय ।
पैसा पात्र हि दान करि, महा महा पुण्य कमाय ॥ १६ ॥
अतिथि जो आवे घर हि में, पहिले करत जुगाड़ ।
पीछे घर के काम में, सुख दुख आवत आड़ ॥ १७ ॥
ज्ञाति कुटम्ब हि काम में, सब के आगे ठाढ़ ।
तन से मन से धनहु से, बूझत सब के गाढ़ ॥ १८ ॥
हाथ कसा अति ही रहत, दयाहु राखत गाय ।
पूरो करती काम सब, फाज़िल खर्च बचाय ॥ १९ ॥
भोजन की कोइ बस्तु हूं, नहि लेती तइयार ।
सब कुछ करती आप ही, हलवाई बेकार ॥ २० ॥
सम्पद में पति की कभी, रहन न दे बेकार ।
बिपद पड़े ढाढ़स कर हि, आप हि ले ले भार ॥ २१ ।

या बिध तिरिया पावती, तन धन जन की सुक्ख ।
जितनी होती गुण कमी, उतनहि भोगत दुःख ॥ २२ ॥
बहुदरशी देखत नित हि, नारिन को बहु रोग ।
घर हिं अभागे गृहस्थ के, काम नहि बहु भोग ॥ २३ ॥
काम छोड़ बहु भोग करि, रोगी होती नार ।
प्रसव काल चिन्ता अती, खेल प्राण ही सार ॥ २४ ॥
जो सब गुण ऊपर कहे, उलटे हो जेहि नार ।
दुष्ट नारि तेहि जानिये, बर्नन दोष नकार ॥ २५ ॥
उत्तम नारी हैं सदा, पूज्य देवता तुल्य ।
नही तो दासी जानिये, बेश्या सम निर्मूल्य ॥ २६ ॥
पति के संग जीवन मरन, पति हरखे हरखाय ।
स्नेहमयी कुल नार की, उपमा लखी न जाय ॥ २७ ॥
भारत की सब रीत ही, नारिन सती बनाय ।
अन्ध पती गंधारि ही, पट्टी आंख बंधाय ॥ २८ ॥

भूत भरना ॥ ३७९ ॥

खोटी नारिन को नही, मिलता घर में मान ।
मान लाभ के हेत से, भूत भरावत जान ॥ १ ॥
अथवा सास ननन्द हूं, अरु स्वामी दुख देय ।
भली नार उपदेश सुन, यह प्रतिकार करेय ॥ २ ॥
घर वाले मूरख रहे, पूजत भक्ति लगाय ।
भक्तिन ओझा पीर पै, झाड़ फूक को जाय ॥ ३ ॥

जाकी पूजा लेन की, हो जब ही मन चाह।
उनके मृत प्रिय नाम ले, पूजित होय अघाह ॥ ४ ॥
या बिध फल को पायकर, करती सखि उपदेश।
भूत लगन कारन भयो, चली प्रथा यह देश ॥ ५ ॥
थोड़े दिन से लोग की, गई रुची बदलाय।
भूत लगन की बात हूं, अब कम सुनने पाय ॥ ६ ॥
भूत भरावन साधना, करत बायु को कोप।
पीछे रोग हि होय कर, सुख को होता लोप ॥ ७ ॥
भूत हु से बहु गुण अधिक, बायू में बल जान।
जहां न हो कारन यही, उसे रोग पहचान ॥ ८ ॥
मनो योग की शक्ति से, बल अरु ज्ञान अपार।
भूत भरत भाषा परहु, कर देती उच्चार ॥ ९ ॥
अन जानी बातें बहुत, कहने लगती सार।
भोले भूल न करत हैं, आयुर्बेद-उपचार ॥ १० ॥
झाड़ फूक फल देत हैं, पर साधुन को जान।
बदमाशन को छोड़ कर, उत्तम करी निदान ॥ ११ ॥
कहिं कहिं सच्चे भूत हूं, भरते देखा जाय।
नीच दूर हो मंत्र से, उच्चाराधन पाय ॥ १२ ॥
नकली भूत हि कष्ट से, तत्क्षण ही छुटि जाय।
सब हालत में कष्ट से, नहिं है उचित उपाय ॥ १३ ॥
निर्बुद्धी डरपोकही, बहुतर देखत भूत।
असली क्वचित हि देखते, बिरले कोइ सपूत ॥ १४ ॥

गंवार औरतों का झगड़ा ॥ ३८० ॥

झगड़ा हरदम होत है, कारन है वहियात ।
मूरखता की बात में, झगड़त है दिन रात ॥ १ ॥
रमाने आंचल फाड़ली, श्यामा का इस हेत ।
उसके मरि इसके जनम, संतानहि बुभि लेत ॥ २ ॥
श्यामा से वह भिट गई, भेटी पीपल गाछ ।
साड़ी उसकी पहन ली, भेट लई है पाछ ॥ ३ ॥
मरि औरत के नाम ले, साड़ी दई पहनाय ।
सास आय झगड़न लगी, उकट पुरान कथाय ॥ ४ ॥
कहते औरत भेटती, गाछ तभी सुख जाय ।
उसके लड़का होत है, वृच्छ हि जीयत नाय ॥ ५ ॥
या बिध टुटका वह्म बहु, करती मूरख नार ।
झगड़त है इन बात में, कोउ न बूझन हार ॥ ६ ॥
सास करत बहु दिक बहू, काम काज सब बात ।
बहू हुं चुगली सास की, स्वामी से दिन रात ॥ ७ ॥
गुतनिन में लड़ झगड़ करि, जुदो करावत भाइ ।
इजमाली परिवार में, हक पा सकती नाइ ॥ ८ ॥
बहुवन को यह करम है, करती दान हि दाइ ।
इजमाली धन नष्ट करि, आखिर करत जुदाइ ॥ ९ ॥
जहां बैठी दोचार जन, निन्दा और लड़ाइ ।
हंसी खुशी का नाम नहि, लड़ने का हो बाइ ॥ १० ॥

बातें निकसत मूह से, जाते होय लड़ाइ ।
भली भली गम खाय जो, फिर फिर दे उसकाइ ॥ ११ ॥
लड़के लड़के जो लड़े, आपुस में लड़ि जांय ।
निर्दोषी निज को कहत, वाको पीटत जाय ॥ १२ ॥

डायन ओझा ॥ ३८१ ॥

अती लालसा चाहना, निर उपाय निर आस ।
ऐसे मन जाके रहे, कड़ी नज़र हो तास ॥ १ ॥
वैसहि मन से बस्तु जो, वह देखे मन देय ।
टूट फूट कर नाश हो, रोगी होय मरेय ॥ २ ॥
अती चाह एकागृता, कहत वाहि बल योग ।
पुरुषण को ओझा कहें, नारी डायन लोग ॥ ३ ॥
काला डोरा लोह भी, कड़ी नज़र अटकाय ।
रक्षोघ्न हि बस्तू सकल, आयुर्बेद बताय ॥ ४ ॥
ताते भलि बस्तुन सकल, राख नज़र अटकाय ।
बच्चे बछरून गाय के, अरु लड़कोरी माय ॥ ५ ॥
भोजन बस्तुन ढांकि रख, और सुहावनि चीज़ ।
इस उपाय से बचत है, भोजन काहु न धीज ॥ ६ ॥
अन जाने के सामने, भोजन को दे त्याग ।
उत्तम भोजन बस्तु को, ढाक राखिये काग ॥ ७ ॥

पति को भेड़ा बनाना ॥ ३८२ ॥

काम रूप में कहत है, भेड़ा पति हि बनाय।
दुर्बल पति होते जहां, चतुर स्त्री ही पाय ॥ १ ॥
सेवा पति की बहु करे, मन ही हाथ कराय।
जोड़ राह पतनी कहे, पती उधर ही जाय ॥ २ ॥
कहत स्त्रैन हि वह पती, स्त्रैन हि निन्दा पाय।
हाड़ मांस कहे वाहि की, कूकुर गिद्ध न खाय ॥ ३ ॥

समाप्त।

छठां अध्याय।

वस्तुओं का विषय।

धन ॥ ३८३ ॥

मनुस काम की वस्तु सब, बिकरी जिस की होय।
उस को ही धन कहत हैं, यह जाने सब कोय ॥ १ ॥
रूपा सोना धन नहीं, जब तक बिकरी होय।
तब ही तक वह धन रहे, नही तो मिट्टी सोय ॥ २ ॥
सोना रूपा खाय कर, नहि जी सकते लोग।
बहुतर खान हि जो मिले, कौन काम के योग ॥ ३ ॥
जग नोयम यह जानिये, सिक्का जब ही तेज।
तब हि माल मन्दा पड़े, तब सुख सोओ सेज ॥ ४ ॥
सिक्का धन दो चीज़ है, गुण बिरुद्ध है दोय।
एक मन्दा एक तेज़ हो, उलटे पुलटे दोय ॥ ५ ॥
चांदी का सिक्का यहां, चांदी मन्दी होय।
बहु धन को मिट्टी कियो, धन तेज़ हि सब सोय ॥ ६ ॥
आबहवा बहु काम का, बिकरी उसकी नाह।
उस को भी धन नहि कहें, धान गाय धन माह ॥ ७ ॥

मूल धन हि कहे अन्न है, और कहत हैं गाय ।
अटल धन हि धरती कहे, निर्धन को कहलाय ॥ ८ ॥
जाहि निकट यह तीन नहि, जोइ देश यह नाहि ।
निर्धन वहि जन देस है, या में संशय काहि ॥ ९ ॥
धन पुर्णा जेहि घर बसे, काम धेनु जेहि गाय ।
कल्प तरू जेहि बाग़ में, वृथा धन हि ललचाय ॥ १०

पाप का धन ॥ ३८४ ॥

रहे न कौड़ी पाप की, ज्यों आवे त्यों जाय ।
लाखों का धन पाय के, मरत न कफ़फ़न पाय ॥ १ ॥
धन आवन की राह जो, नहि आया उस राह ।
धन की क़दर न होत है, जाता बे परवाह ॥ २ ॥
जो धन बे मिहनत मिला, आता नीयत फेर ।
और सता कर पाप धन, करता है बहु जेर ॥ ३ ॥
भाग्यवान के पाप धन, रहता नहि है पास ।
दुर्भागे के पास ही, रह कर देता वास ॥ ४ ॥
है विवेक जो घटहि में, हो घृन्ना निज कर्म्म ।
लज्जित हो दिन रात ही, होय व्यथित तेहि मर्म ॥ ५ ॥
शान्तिसुखहिनहिहोयतेहि, तरह तरह के रोग ।
घेरे रहते हैं सदा, होत भोग ही शोग ॥ ६ ॥
कुष्ट रोग से ग्रसित हो, और होत निर्वंस ।
बहुदरशी देखत सदा, रहे जो पाप हि अंश ॥ ७ ॥

एक ध्यान एक प्राण हो, आपत जो मज़लूम ।
सब हि दशा हो जात है, सब को है मालूम ॥ ८ ॥

मूल धन ॥ ३८५ ॥

कहते उसको मूल धन, जिस में चले शरीर ।
धर्म कर्म सब ही क्रिया, बे उद्यम बे पीर ॥ १ ॥
मोटो झोटो खाद्य हो, मोटो बस्तर गाय ।
बास करन की झोपड़ी, जल प्रकाश अरु वाय ॥ २ ॥

चौदह रत्न सृष्टि ॥ ३८६ ॥

जग सागर जब हो मथ्यो, देव असुर मिलि दोय ।
निकल्यो चौदह रत्न हो, सभ्य काल भय सोय ॥ १ ॥
लक्ष्मी कौस्तुभ कहत है, पारिजात को फूल ।
सुरा कहत धन्वन्तरी, चन्द्र प्रकाश हि तूल ॥ २ ॥
काम धेनु ऐरावत हु, घोड़ अप्सरा जान ।
अमृत और हरि धनु कहे, शंख-अरु विष हू मान ॥ ३ ॥
भयो चलन सिक्का जभी, धातु भयो पहचान ।
भयो जवाहिर जब प्रगट, फूल हि बाग लगान ॥ ४ ॥
मदिरा देवी दरस दे, दियो दिखाई रोग ।
तब हो प्रगटे वैद हूं, आयुवेद सहयोग ॥ ५ ॥
रोशनिहू निकली नई, दीपक कहे महताब ।
गौ निकली अरु भैंस भी, हस्ती हू बरताव ॥ ६ ॥

वेश्या हू चमकन लगी, काम मनज ही जाय।
रण चातुरता हीन ते, घोड़े काम लगाय ॥ ७ ॥
अम्मृत भोजन तब कढ़्यो, धन्वादी हथियार।
रण बाजा शंख हु मिल्यो, औषधि विष दरकार ॥ ८ ॥
ऐयाश हि बहु होन ते, काढ़ा नहीं पसन्द।
भोग रोग दोऊ चले, बिषही भयो प्रबन्द ॥ ९ ॥

नव रत्न ॥ १८७ ॥

हीरा मानिक कहत हैं, पन्ना अरु पोखराज।
नीला लहसुनिया कहें, मोती मूंगा साज ॥ १ ॥
गोमिदक एक रतन है, संग ढंग अरु रंग।
मोल तभी हो रतन को, नहीं तो केवल संग ॥ २ ॥
रत्ती पर तेहि मोल हो, मोलहु नहि परमान।
राजा के व्यवहार में, रतनो ही को मान ॥ ३ ॥
पतन काल जब निकट हो, होय गृहस्थहु चाह।
धन नाशन के काज को, रतन बड़ी है राह ॥ ४ ॥
आयुवेद सम्मत कहें, रतनों के परभाव।
दुख सुख को तासीर बहु, रतन हि देखन पाव ॥ ५ ॥
धन के खानेहार में, पहिला रतन हि जान।
और इमारत कहत हैं, नाशक धन हो मान ॥ ६ ॥
तीजो वेश्या जानिये, घोड़े चोथा जान।
कफ पित वायू खून को, सन्निपात ज्यों मान ॥ ७ ॥

सोना रूपा ॥ ३८८ ॥

ईसानी के आसरे, गहना नारिन देन।
यो रीत फैली बहुत, बैपारिन की चैन ॥ १ ॥
बीस बरस बीते नहीं, गहने की थी रीत।
चांदी घर घर पहिरते, अब वह हुई कुरीत ॥ २ ॥
घर घर सोना लद गया, ठोस होय वा फोक।
सोना बिन सूना रहे, हंसते रूपा लोक ॥ ३ ॥
सोना जितना खान में, निकसत है जग माह।
भारत गहना रूप हो, बहुरि खान के माह ॥ ४ ॥
रूपा को आदर गयो, सोना नारिन देह।
रूपा मिट्टी हो गयो, सोना की अति नेह ॥ ५ ॥
हर जहाज़ सोना चढ़्यो, तऊ न मन्दा होय।
आवत ही छू उड़ गयो, गहना बन गय सोय ॥ ६ ॥
भारत मे गहना चले, रूपा की फिर आज।
बढ़े खान जो और भी, तऊ न दर घटि काज ॥ ७ ॥
जग पैदा सोना खरच, बारह आना हिन्द।
बहु धन गहना खात है, फेर जगत ही बन्द ॥ ८ ॥
बासन बरतन आदि में, रहा जो थोड़ा खर्च।
जरमन सिलवर से हुआ, बड़ा एक यह हर्ज ॥ ९ ॥
चांदी भारत वर्ष में, आइ गई टकसाल।
चांदी मन्दी बात में, नहीं करत कोइ ख्याल ॥ १० ॥
टकसाल हि के कारने मन्दीं नहि दिखलाय।
चांदी मन्दी है कि नहि, बहु जन जानत नाय ॥ ११ ॥

बिकरी का दरकार नहि, सिक्का बन गइ आप ।
उस दर से ऊंची चढ़े, तब ही बिकरी खाप ॥ १२ ॥
ऊंचे दर चांदी बिकै, या सिक्का बन जाय ।
चांदी इस कारन कीऊ, मन्दा दर नहि पाय ॥ १३ ॥
चांदी खान हि में बहुत, निकल्यो भिन्न हि देश ।
सस्ता दाम हि होय कर, चढ़ी बस्तु पर बेश ॥ १४ ॥
बारह आना दाम है, सोलह आना रूप ।
रूपा जो जन राखते, कोना उड़ गय खूप ॥ १५ ॥
पतनी है ज़मिदारि जेहि, और मुकर्रीं जान ।
कर पूरो हूं पाय कर, जमा चौथ नुक़सान ॥ १६ ॥
पहिले बरस पचास ही, दियो मुकर्रीं जौन ।
धान भावली तीन सो, मन पैदा थ्यो तीन ॥ १७ ॥
एक रूपय को तीन मन, जमा एक सौ वाहि ।
उसी जमा को धान अब, सौ मन मिलता नाहिं ॥ १८ ॥
पैदा ज्यों को त्यों रह्यो, लाभ मुकर्रींदार ।
ज़मीदार दो भाग उड़ि, सिक्के में भय ख़्वार ॥ १९ ॥

गहना ॥ ३८९ ॥

गहना नारिन के दिये, यह इस का परताप ।
धनसा रचित होन की, इच्छा जनमत आप ॥ १ ॥
कुछ भी लो, हर माह में, सोना नगद उधार ।
भरते का श्टंगार है, भूखे का आधार ॥ २ ॥

बचन की गहना नहीं, हरगिज़ दो पहिराय।
पड़ि चोरों के हाथ में, कितने मारे जाय ॥ ३ ॥
गहना ऐसा कीजिये, टांका लगे न ताहि।
मज़दूरी बेशी न हो, सु श्री गढ़न जनाहि ॥ ४ ॥
बीमा जीवन बेचना, अथवा करना फंड।
सब से बढ़ यह रीत है, इस में नहि है दंड ॥ ५ ॥

पूंजी ॥ ३९० ॥

पूंजी बिन मिहनत सिरिफ़, देता प्राण अधार।
पूंजी श्रम दुहों हु हो, भर ले धन भंडार ॥ १ ॥
पर की पूंजी सूद पर, ले करते रोज़गार।
साहु मलाई चाटले, मिहनतिया बेगार ॥ २ ॥

ज़मींदारी हक़ ॥ ३९१ ॥

तहसिलदारी हक़्क़ है, रक़म लगी तेहि सूद।
कारण बेशी हक़्क़ का, है कुछ नहो वजूद ॥ १ ॥
ज़मीदार का हक़ अगर, हो ज़मीन पर भेद।
परजा सब एक बारगी, हो सकती उच्छेद ॥ २ ॥
ज़मीदार सब एक को, चाहैं रहन न देय।
जगदीशहि यह नियम नहि, हक़ बास हि सब लेय ॥ ३ ॥
राजा ही कर के सिवा, रखता कोइ हक़ नाइ।

ज़मीदार की बात क्या, हक़ इनका है छार ॥ ४ ॥
कर दे कर भू भोग सब, हक़ परजा का ठीक ॥
जन्मा जो है भूम पर, बूद बाश हक़ लीक ॥ ५ ॥
बूद बाश हक़ भूम पर, सब ही का सम जान।
ज़मीदार राजा प्रजा, कम कोई मत मान ॥ ६ ॥

ज़मीन पर हक़ ॥ ३९२ ॥

भूमी का हक़दार वह, जिस का बल एकीस।
बहु दरशी कहें जांच कर, लाठी जिसकी भैंस ॥ १ ॥
दुर्बलता जब आ गई, हक़ भूमी हो छार।
जोतदार राजा हि हो, और होय ज़मिदार ॥ २ ॥
राज शान्ति जब रहत है, दुर्बल को बलराज।
रहत सिलसिला हक़ तभी, राज बल हि के काज ॥ ३ ॥
दुर्बल को कोइ हक़ नहीं, भोग जगत में आज।
साधन नहि कर्तव्य को, दुर्बलता यह काज ॥ ४ ॥
भोग से आलस होत है, आलस से ही पाप।
पापी को हक़ हीं रहे, ईश्वर कौन प्रताप ॥ ५ ॥

अस्त्र शस्त्र ॥ ३९३ ॥

शस्त्र अधिष्ठाता सभी देवन करी समाज।
यह बिचार सब करन को, कौन बड़ो है आज ॥ १ ॥

डिनमाइट कहैं बज्र को, टरपेडो बरुणास्त्र ।
धिष्टाता एकत्र सब, देवन सब सत्पात्र ॥ २ ॥
डिनमाइट पति इन्द्र हैं, अग्नि हि अगनी बान ।
बाण पती बायू बहां, धूस हि लक्ष्मी जान ॥ ३ ॥
टर पेडो पति बरुण हैं, लष्ठी भैरव नाथ ।
असि पति दुर्गा हैं वहां, विष पति भोला नाथ ॥ ४ ॥
घर फोड़न पति हैं वहां, बिभिषण उन का नाम ।
इन्द्र कियो प्रस्ताव तहां, सभापती को काम ॥ ५ ॥
सत्य धर्म साहस बलहुं, सब गुण बरते जाहि ।
छल प्रपंच नहि होय जेहिं, करहु सभापति ताहि ॥ ६ ॥
कहे भैरव सब गुण चही, एक हि दुर्गा माह ।
सभा पति हि है योग वह, सब हि कह्यो बह वाह ॥ ७ ॥
सभा पती दुर्गा वहां, बोल उठी झुल्लाय ।
असभ काल तुम लोग को, दगा बाजि की राय ॥ ८ ॥
दूर हि से दुर्बल जनहु, मारत जादू रीत ।
सत्य नही साहस नही, धर्म हु की बिपरीत ॥ ९ ॥
सभ्या वस्था जगत अब, तुम सब लेहु बिदाय ।
सत्य धर्म बल साहसी, भैरव ही रह जांय ॥ १० ॥
यह सुन सबही देव गण, तन मन अति हरषाय ।
सभी उठे बरवान दे, दुर्गा हाथ जोड़ाय ॥ ११ ॥
सत्य धर्म के काल मे, तुम दोनो का वार ।
युद्ध अन्त तब होय गो, लाठी या तलवार ॥ १२ ॥
दुर्गा बिन केहि काल में, भयो न अन्त हि युद्ध ।
अब भी कभी न होय गो, दुर्गा बिन युध शुद्ध ॥ १३ ॥

हाथ जोड़ि दुर्गा कहे,　करहु और एक गौर ।
ऐसे सभ्यहु काल में,　तुमरे शस्त्र ले और ॥ १४ ॥
कहत देवगण नीच सों,　करिये नीच बिचार ।
छल बल सों जूझो सदा,　मुठ भिड़ाव हो तार ॥ १५ ॥
और सुनो एक बात यह, सभ्य जगत के माह ।
बहु विलास बढ़ जायगो, शक्ति रहे नहि काह ॥ १६ ॥
युध जूआ सम होयगो,　चित अरु पट के माय ।
हार जीत ह्वै जायगो,　शान्ती यों वरताय ॥ १७ ॥
शान्ति न वरतन हार है, शक्ति घुसत मुख माय ।
केवल वाक्य हि बीरता,　सब ही शत्रु बनाय ॥ १८ ॥

नमक ॥ ३८४ ॥

जनमे जो जिस देश में,　तंह जनमी जो चीज ।
हित कर सब बहि होयगी,षटरस मुख्य हि बीज ॥ १ ॥
षटरस देसी चलन है,　मुख्य निमक है नाहि ।
याको फल का होत है,　जानत है हम नाहि ॥ २ ॥
हिन्दू सब अशराफ हो,　सेंधा लवन हि खाय ।
पकुवा को जानत नही,　क्या गुण हो दिखलाय ॥ ३ ॥
एक कषारस कुड़नड़न,　भारत कीन्हीं नाश ।
निमक जहाजी खाय जो, उचित फल हि तानाश ॥ ४ ।
नीयम कहता है यही,　रस देसी हित मान ।
परदेशी नमक हि कहा,　जानो तत्त्व हि जान ॥ ५ ॥

सांभर सेंधा खात जो, नये रोग कम ताहि ।
लीवर और मलेरिया, नये रोग हैं नाहि । ६ ॥
सरकार हि की है उचित, कौन नमक को खाय ? ।
कौन रोग केहि जात हो , ताहि खबर मंगवाय ॥ ७ ॥

काम धेनु ॥ ३९५ ॥

बन के पड़ती घास ही, चरती जब ही गाय ।
दूध होय अति अल्पही, बछरू हो पलिजाय ॥ १ ॥
गृह पालन की रीत जब, निकल्यो रातिब खान ।
स्तन्य बस्तु जान्यो जभी, दूध हि बहुत बढ़ान ॥ २ ॥
बचारू पलता तभी, पावत दूध हु काम ।
जातहु बढ़गी तब लगी, काम धेनु हो नाम ॥ ३ ॥

गोरस ॥ ३९६ ॥

देव भोग गोरस कहे, नहि मानुष की खाद ।
देव शक्ति जिनकी मिले, वही होयेंगे बाद ॥ १ ॥
जो कोइ श्रम यों करत है, घाम हो सिर का पैर ।
पचा सके गोरस वही, बिधि से हो नहि बैर ॥ २ ॥
देव भोग जब जब लगे, मानुष लेहि प्रसाद ।
निज भोजन के बीच में, गोरस को दी बाद ॥ ३ ॥
निज भोजन बरतावमें, गोरस हो प्रति दीन ।
फल इसको यों होयगी, वंश होयगी क्षीन ॥४ ॥

प्रति दिन गोरस खावते, अन्नादिक से स्नेह ।
शक्ति गृहण की नष्ट हो, नाजुक होता देह ॥ ५ ॥
जनमत आदी जो न हो, दूध घृत हि की जान ।
वृद्ध भये पर दूध घी, महा रसायन मान ॥ ६ ॥
दुर्बलता का अन्त फल, होत वंश ही नाश ।
बहरी चिकना गृहण का, करना मत अभ्यास ॥ ७ ॥
मानुष गणना जब हुई, आंख खोलि जिन देख ।
घटती है वह जात हो, गोरस खांय विशेख ॥ ८ ॥
सिद्ध भयो नीयम यही, दूषित गोरस सेव ।
गोरस जो सेवत नहीं, बढ़ती उनकी नेव ॥ ९ ॥
कारन उसका खोजते, पाते और एक बात ।
बच्चे का हक़ दूध है, मानुष करते घात ॥ १० ॥
गोरस को सब कहत हैं, स्वाभाविक आहार ।
नारी दूध हि वह कहो, लगता नहि व्हां तार ॥ ११ ॥
घात पाप को फल भलो जग में पावें लोग ।
नास्तिक सारा जगत हो, क्या नीयम क्या योग ॥ १२ ॥
बचा पी कर छोड़ दे, तब दूहो तुम गाय ।
ठाकुर भोग लगाय के, बांट चूंट कर खाय ॥ १३ ॥
या बिध गोरस को सदा, राखत जो व्यवहार ।
रंग रूप धन बुध बढ़े, पड़े न पाप हि भार ॥ १४ ॥
धर्म उसे जानो नहीं, जिस से होता हान ।
कम दूहन से हान हो, मूरख लेते मान ॥ १५ ॥

गौ गृहस्थ बेचत नहीं, ताते मया न वाहि।
मूल्यवान बछरून की, दूध न देते याहि ॥ १६ ॥
कृषक घरहि यह पाप नहि, बछरे आते काम।
अहंर हि में यह पाप है, बेचन लेत न नाम ॥ १७ ॥
गौ बेचन ही पाप है, धर्म करन की जाय।
बछरून का हक मारि के, हिन्दू ही कहलाय ॥ १८ ॥

अमृत ॥ ३९७ ॥

जग सागर मन्थन करी, रत्न निकाल्यो देव।
रतनों में सब से अधिक, पड़ी अमृत की नेव ॥ १ ॥
अगले कालों में अमृत, इमली गुड़ मिलि होय।
पिछले में चीनी दही, सिखरन कहते सोय ॥ २ ॥
रेचक पाचक पुष्टि कर, कारक हृदय प्रफुल्ल।
धारक रेचक बहु गुणद, अन्य वस्तु नहि तुल्ल ॥ ३ ॥
इस गुण के पकवान बहु, बिन हिंसा जो होय।
तृप्ति होय जेहि खावते, अमृत हि कहते सोय ॥ ४ ॥
देवहि पायो अमृत है, असुर, न भाग मझार।
देव करत है आप ही, असुरन लेत बजार ॥ ५ ॥
घर बजार ही एक सा, अमृत नही तइयार।
शुद्ध वस्तु शुध प्रेम पुट, नहि है अन्य हि कार ॥ ६ ॥

पौशाक ॥ १९८ ॥

कपड़ा ऐसा पहनिये, बचे शीत अरु धूप।
विपत पड़े झट खोल ले, काढ़े कभि जल कूप ॥ १ ॥
बांध छांध के भी लिये, आ जावे कभि काम।
धोती गमछा के सिवा, नहि दूजा आराम ॥ २ ॥
हित कर अपना बूझ कर, हो पौशाक हि रीत।
जल वायू शीतोष्ण पर, देश देश विपरीत ॥ ३ ॥
अन्य देश पौशाक की, अन्य देश बरतान।
तत्त्व ज्ञान तेहि है नहीं, संस्कार बस जान ॥ ४ ॥
अधोआई यह बस्त्र दो, आर्य्य कियो है दूर।
जल अग्नी से घात हो, निश्चय विपत जरूर ॥ ५ ॥
मतलब की जो भूल करि, करै बढ़िया पौशाक।
लक्ष्मी लीको नाश है, शोभा क्या है खाक ॥ ६ ॥
अपना रूप दिखावना, ठगने का यह काम।
रूप दिखाता प्रीत से, नहि बहरी सरजाम ॥ ७ ॥
पहिले मतलब दोय था, सज्जाही पौशाक।
नारिन मोहन के लिये, और जमावन साक ॥ ८ ॥
अंगरेज़ी अब फैल कर, सभ्य भयी पहचान।
बिन कपड़े के गुजर नहि, सभ्य समाज हि जान ॥ ९ ॥
जिस समाज की चाल में, बढ़ गई है पौशाक।
अपने गुण से दाब कर, छींटो उस पर खाक ॥ १० ॥

आर्य्य नियमको ग्रहण करि, परजहु धन गुन ज्ञान।
सब ही हाथ पसारिहैं, जे गरज़ी रख मान ॥ ११ ॥

बिछौना ॥ ३९९ ॥

नरम बिछौना करत है, सदा जोड़ व्यवहार।
निद्रा दुख भोगैं नहीं, हो जाते बेकार ॥ १ ॥
कंकड़ पर जो सो सकै, बिस्तर तेहि इक होय।
सदा बिछौना सोय जो, आदत सुख का खोय ॥ २ ॥
जाड़ें टाट पियाल पर, कम्मल देहु बिछाइ।
बिस्तर उम्दा है यही, गरमी में चटाइ ॥ ३ ॥
कुश कम्मल बानात की, छोटी आसन होय।
जुदी जुदी बैठो सभी, छूत बिचार न कोय ॥ ४ ॥
लरछुत बहु तर रोग हैं, छूवत ही लगि जात।
खाना पीना बैठना, अलग रहे नहि घात ॥ ५ ॥

कटि बन्धन ॥ ४०० ॥

सोना रूपा करधनी, यह है नहि कुछ काम।
फल उसको सब उड़ि गयो, बिलस रोग यह जाम ॥ १ ॥
कमर जोड़ नहि ढील हो, कटि बन्धन दरकार।
कमर ढील हो जान ते, प्रगटे रोग अपार ॥ २ ॥
जोड़ कमर कसि राखना, ज्यौं असवारि कहार।
कोष बृद्धि रोग-अन्त्र की, ढील कमर औतार ॥ ३ ॥

कसी कमर से भाग्य हो, ढील भाग्य को हीन ॥
भू, को भार बढ़ाय के, रोगी हो अरु छीन ॥ ४ ॥
कमर बंध लंगोट को, साधु नियम है जान ।
यह साधन राखन उचित, और बनै नहि आन ॥ ५ ॥
दो धज्जी में होत है, लंगोट हि को कार ।
कमर बन्द हूं होत है, बे झंझट बेबार ॥ ६ ॥

बही खाता ॥ ४०१ ॥

बहि खाता जिसके नहीं, न कर ताहि बेहवार ।
कारना दस्तावेज़ पर, नहि तो हो तकरार ॥ १ ॥
बहि खाता जिसका सिजिल, नहि हो बिद्द मिलान ।
रोवा जिसका है नहीं, खाता बे परमान ॥ २ ॥
प्रति दिन करे मिलान जो, रोकड़ ब्योरा देय ।
पैसा रुपया रेज़गी, जुदा जुदा लिख लेय ॥ ३ ॥
पहिले जो लिख लेत है, पीछे ले या देय ।
घटी बढ़ी बिध होय जो, कागज़ से ले लेय ॥ ४ ॥
भूल चूक से घटी बढ़ी, जिस दिन जो कुछ होय ।
घटी बढ़ी का जमा खरच, उस ही दिन लिख लेय ॥ ५ ॥
ऐसे कागज़ का बहुत, माने पंच प्रमान ।
देत लेत लिखते जहां, वही बही सच जान ॥ ६ ॥
देने लेने के समय, लिखी गई जो बात ।
मन का मात्र प्रकाश हो, दूजी नहि यह बात ॥ ७ ॥

कार बार कुछ ही न हो, कुछ है आमद खर्च ।
उस ही की खाता बही, रखने में क्या हर्ज ॥ ८ ॥
जमा खर्च बूझे नहीं, कागज़ रखता नाहि ।
काम भार दे कर उन्हें, निश्चय होय तबाह ॥ ९ ॥
राज व्यवस्था ज्ञान हूं, जमा खर्च को ज्ञान ।
जिस मानुष में है नहीं, उन को भोला मान ॥ १० ॥
मानुष जन्म सफल तभी, जीव नहीं बरबाद ।
जमा खर्च आईन की, ज्ञान हि बन्यो खराद ॥ ११ ॥

मच्छड़ खटमल ॥ ४०२ ॥

मच्छड़ खटमल जो न हों, सोते सब दिन रात ।
श्रम पर निद्रा लेय जो, कष्ट न जान्यो जात ॥ १ ॥
ऐसे बंधू हैं यही, वृथा पड़न नहि देत ।
देख उनीदा देत है, काम करन की चेत ॥ २ ॥
खाय जहू हलका करे, करे जोंक का काम ।
भोजन बेशी हू किये, कब हुं न होय बिराम ॥ ३ ॥

जड़ पदार्थ ॥ ४०३ ॥

इन्द्रिन से हो ज्ञान जेहि, कहत पदार्थ हि सोय ।
जड़ बस्तू ताको कहें, वाको जात हि दोय ॥ १ ॥
एक कहें निर्जीवही, अन्य सजीवहि जान ।
दोनों ही को जड़ कहें, जात भेद ही मान ॥ २ ॥

वाहि कहत परमाणु है, जो है मूल पदार्थ ।
उनसे छोटी और कोइ, वस्तु नहीं भावार्थ ॥ ३ ॥
परमाणू पर हैं कहें, मानव इन्द्रिय ज्ञान ।
अन गनती परमाणु मिल, रूप वस्तु हो मान ॥ ४ ॥
कहत कपूर-अरु मुश्क बू, लवन जल हि में घोल ।
घ्राण स्वाद से ज्ञान हो, देखन में हो गोल ॥ ५ ॥
सूक्ष्म भाग मुश्क हु लवन, देख सकत कोउ नाहि ।
तब परमाणू बूझना, अक्षी है फिर काहि ॥ ६ ॥
नित्य कहें परमाणु है, अजर अमर कहें सोय ।
पंच तत्त्व संयोग से, मिल कर वस्तु हि होय ॥ ७ ॥
जड़ वस्तु हि आकार हो, लंब ऊंच चौड़ाइ ।
जगह छेकती है कछू, टूट फूट जुड़ जाइ ॥ ८ ॥
केवल बदलत रूप है, मूल नष्ट नहि होय ।
अमर कहत जड़ वस्तु सब, बदल गठन हो होय ॥ ६ ॥
अपनी इच्छा से नहीं, हल चल अरु ठहराव ।
हलना चलना ठहरना, पराधीन वरताव ॥ १० ॥
गुण खिचाव है वाहि में, आकर्षण कहलाय ।
अरु दुराव हू कहत है, विद्वेषण बतलाय ॥ ११ ॥
प्रथम तत्त्व आकाश हो, गुण कहते हैं वाहि ।
छिद्र रहत हर वस्तु में, फैलत सकुचत ताहि ॥ १२ ॥
दूजो कहते तेज है, आकर्षण गुण जाहि ।
अन्तर्तेज हि को कहें, वहि विकर्षण माहि ॥ १३ ॥

अन्तराग्नि से घन हि जो, फैलावत बहिर-आग ।
गुण हि खिचाव दुराव को, कहते तेज हि भाग ॥ १४ ॥
जल वायू द्वय तत्त्व यह, कहते यामें भार ।
भाप समूह हि जानिये, जितने भाप प्रकार ॥ १५ ॥
सभी भाप द्वय वस्तु में, न्यूनाधिक के भेद ।
जल वायू द्वय वस्तु हो, जीवन यही उमेद ॥ १६ ॥
भारहि कारण भरत है, जहं पावत है फांक ।
वायु भरे बिन फांक नहि, राख खुला वा ढांक ॥ १७ ॥
वायू छेकत है जगह, होय न काहू प्रवेश ।
औंधा गगरा जल हि में, दाब न जल की लेश ॥ १८ ॥
वज़न दार परमाणु सब, और सकल हो भाप ।
तेज व्योम एकत्र सब, पृथिवी कहत प्रताप ॥ १९ ॥
एक अकास हि एकला, द्वय मिल कहते तेज ।
तेज अकास-अरु वायु मिल, कहत वायु बन्धेज ॥ २० ॥
तीनों वह्नि अरु जल कहें, जल हि तत्त्व यह चार ।
पांचो मिल पृथिवी कहें, तत्त्वन को संचार ॥ २१ ॥
तारतम्य हो तत्त्व से, होता द्रव्य हि भेद ।
जड़ पदार्थ ब्योरा सुनो, या बिध कहता बेद ॥ २२ ॥
कहत विराट हि रूप में, सारे जग को जान ।
उपादान जग जोड़ है, वस्तु वस्तु वहि मान ॥ २३ ॥
तारतम्य हो वजन को, अरु मिश्रन को भेद ।
ईश्वर महिमा हेतु हो, वस्तु भेद कहें बेद ॥ २४ ॥

ओंकार शब्द ॥ ४०४ ॥

प्रथम शब्द ओंकार है, मिलता सुर के साथ ।
पहिले बोलत है शिशू, ओंकार हि मह गाथ ॥ १ ॥
आकार ईकार आदिस्वर, तम मिल हो नहि तार ।
अति साधन सुर मेल हो, बिन साधन ओंकार ॥ २ ॥
सम सुर को मेल हि नियम, कारन कहे न कोइ ।
वायु बेग कंपन नहीं, बिधना जानत सोइ ॥ ३ ॥

इजमाली खान्दान ॥ ४०५ ॥

मिल बल हिं सम बल नहीं, जग में दूजो कोय ।
बंस अपने परि वार के, सहज मिल यह होय ॥ १ ॥
छूटत भूसा धान से, बीज काम नहि देय ।
अपना छूटत साथ ही, उन्नति को हर लेय ॥ २ ॥
बहु रूपा यह जग कहत, प्रति चण बदलत रूप ।
जग कामहु सब बदलते, सब बदलत तद्रूप ॥ ३ ॥
मिली बस्तु हूं बदल करि, छूटि भिन्न हो जात ।
होय बदल भिन बस्तु हूं, अन्त हि फिर मिल जात ॥ ४ ॥
बीच बीच जो रहत है, मिले रहत अरु भिन्न ।
ताको बदलहु तै सोई, सदा मिलि अरु भिन्न ॥ ५ ॥
इजमाली संपत रहे, भिन्न भिन्न हो बास ।
अलग अलग निज काम करि, बालहु बचे पास ॥ ६ ॥

प्रीत बृद्धि कभी हो नही, मिले जुले बिन जान।
एक बरस एक बार भी, मिलना कोइ दिन ठान ॥ ७ ॥
खा पीकर जो लाभ हो, इजमाली कर देहु।
नौकर मैनेजर रहे, घर को कोउ न लेहु ॥ ८ ॥
स्थावर धन ही राखनो, नगद न कौड़ी एक।
नष्ट होय तो लाभ ही, मूल न होय विशेक ॥ ९ ॥

जाति ॥ ४०६ ॥

प्रकृति भिन्न अरु भिन्न रुचि, सृष्टि हुई उपनीत।
सम से करना उचित है, बैर ब्याह अरु प्रीत ॥ १ ॥
पानी से पानी मिले, मिले कीच से कीच।
उत्तम से उत्तम मिले, मिलत नीच से नीच ॥ २ ॥
ईश्वर नियम है यही, जाति हो आप हि आप।
जानो वा जानो नहीं, जाति बिना नहि खाप ॥ ३ ॥

जाति भेद ॥ ४०७ ॥

जाति भेद अति उचित है, होता है सब देश।
शृंखल इसका तब रहे, नेता होय नरेश ॥ १ ॥
सूची बिन पुस्तक जिम हि, जाति भेद बिन देश।
सभ्य भेद पशु बृक्ष हूं, मानुष क्यों न बिशेष ॥ २ ॥
जितनी बाढ़त सभ्यता, भेद सूचि बढ़ जाय।
जाति भेद अति सूक्ष्म जेहि, सभ्य वही कहलाय ॥ ३ ॥

जाति भेद नहिं होय जो, जात हि हित नहिं होत ।
थोड़े मुख मिसरी भरे, गुड़ सब की न पुरीत ॥ १ ॥
देखत ही बिन पूछने, पड़त लखाई जात ।
अंगरेजीदां कहत हैं, रीती यह वहियात ॥ २ ॥
जाति भेद या बिध जहां, जाति वहां है शुद्ध ।
इसको दूषत जोइ है, बूझहु उनकी बुद्ध ॥ ६ ॥
जहां जाति व्यवसाय पर, सदा शान्ति वह देस ।
चत्री पंडित सब जहां, सिजिल न राज नरेस ॥ ७ ॥
जब कजिया हो देस में, चिंता चत्रि हि पाय ।
और जाति निज काम को, ठीक ठीक बरताय ॥ ८ ॥
छोटे जातहु जब बढ़त, इरषा काहु न होय ।
ऊंच जात जो हीन हूं, मान रहत तेहि सोय ॥ ९ ॥
एक जात के ब्याह को, रीत बड़ी फलवान ।
महिमा वैजिक शास्त्र की, जानत है सोइ जान ॥ १० ॥
जाति भेद ही आर्य्य को, ठहराये हैं जात ।
यही भेद जिस दिन भयो, हिन्दू होय निपात ॥ ११ ॥
एक जात सब करन को, कियो यत्न जिन ठान ।
औरहु एक बढ़ाय के, भेद बढ़ायो जान ॥ १२ ॥
जल मीठे से मिलत है, नहीं मिलत है तेल ।
इस नीयम को लांघ कर, ब्याह करन है खेल ॥ १३ ॥
सब हि जात में होत है, भोजन ब्याह बिचार ।
हिन्दु हि को सब हंसत है, इससे है लाचार ॥ १४ ॥
गुण दोष हि हर बात है, अधिक हि होत बिचार ।
चलनी देखत छिद्र पर, क्या महिमा करतार ॥ १५ ॥

कौवा दूषत मोर को, तेरो पैर बिजाय ।
देह न देखत मोर हूं, पैर देख मुरझाय ॥ १६ ॥
हिन्दू अंगरेज़ी पढ़ी, तोड़न चहत समाज ।
जाति खोय मिलनो चहत, नीच हु ले नहि आज ॥ १७ ॥
चिन्तामणि मूरख मिलो, कौवा हांकन काज ।
बड़े भाग्य सो आर्य्य कुल, पायो है तिन आज ॥ १८ ॥

चार बरन ॥ ४०८ ॥

चार बरन में बाट है, सभ्य जगत के माह ।
जहां बांट यह है नहीं, वही असभ्य गिनाह ॥ १ ॥
बुद्धि बतावन हार जो, ब्राह्मण वह कहलाय ।
बल सहाय जेहि देश को, चत्रिय नाम धराय ॥ २ ॥
बैपारी श्रम जीवि जो, बैश्य हि नाम धराय ।
नीच कर्म सेवादि जेहि, शूद्रहि जाति गिनाय ॥ ३ ॥
चार जात सब देश की, देखत है बिदमान ।
ख़ालिस हिन्दू ही कहें, संकर सब हि बखान ॥ ४ ॥
राज पूत बंस हि कोइ, करत काम हू नीच ।
दम पर ललकारो जभी, झझकत लहु दिह बीच ॥ ५ ॥
मनुष भयो जेहि दिन मनुष, रीत चलन यह होय ।
इस नीयम का लांघना, कर सकता नहि कोय ॥ ६ ॥
रेखा सरल हि नाक सो, मान बिन्दु कर दीय ।
कर्ण बिन्दु सो कोण करि, कोणहु को लखि सीय ॥ ७ ॥

बड़े कोण की ब्राह्मण, क्षत्रिय है तेहि छोट ।
वैश्य वाहु ते छोट है, शूद्र वाहु ते छोट ॥ ८ ॥
जन्म जाति क्यम्पर कहे, कर्महु हो तद्रूप ।
तब हि शुद्ध सब वर्ण हो, भेद जाति यह रूप ॥ ९ ॥
ढील देह श्रम हीन जन, लटकत नीचे जान ।
कसि देह श्रमि जनन के, खीचत ऊपर मान ॥ १० ॥
श्रमी आलसी जनन के, उतरत चढ़त हि कान ।
नाक सदा सम रहत है, हड्डी कारन जान ॥ ११ ॥
कान नाक सम बिन्दु हो, समकोन हि तेहि जान ।
ऊर्द्ध कान लघु कोण हो, बृहद नीम्न हो मान ॥ १२ ॥
स्वाभाविक सब मनुस थे, तब यह नीयम होय ।
इस काल हि के यह नियम, है निश्चय नहि कोय ॥ १३ ॥

सभ्यता ॥ ४०९ ॥

मानुष स्टष्टी होयकर, पशु वृत्ती रहे ताह ।
तब मानुष जंगली भयो, फिर मानुस हो राह ॥ १ ॥
ज्ञान भयो याको जभो, शिक्षा अरु सामान ।
राज नीत अरु धर्म पा, सभ्य कहावत जान ॥ २ ॥
सभ्य जगत की भेद दो, जढ़ अरु चेतन जान ।
कहि बिलास जढ़ सभ्यता, आलसि चेतन मान ॥ ३ ॥
जढ़ उन्नत जब होत है, काम काज बढ़े घोर ।
झंझट हू बढ़ता बहुत, ऐश पाप नहि थोर ॥ ४ ॥

केवल मन की उन्नती, शान्ती देय हजार ।
आलस हूं तब बढ़त है, भारत में यह सार ॥ ५ ॥
ओर देस में उन्नती, जड़ वृद्धी से होय ।
क्यों कि मां धन पूरणा, बैठहि देत न कोय ॥ ६ ॥
उभय भांत की सभ्यता, बरतत है जो देस ।
धन धरती धन राज वह, धन्य हि ताहि नरेस ॥ ७ ॥
बहुदरशी थे आर्य्यगण, उनका स्थिर सिद्धान्त ।
जड़ चेतन दोउ सभ्यता, उन्नति की देहान्त ॥ ८ ॥
अलस बिलासहि मूल है, जगत सभ्यता माह ।
तम गुण कारण पतन की, जानत निश्चय राह ॥ ९ ॥
समता हर एक बिषय की, कारन थिरता होय ।
घटि कारन है बढ़न को, बढ़ती नष्ट हि होय ॥ १० ॥
उन्नति कारन पतन है, लियो आर्य्य गण बूझ ।
जड़ उन्नति रोक्यो सदा, याते जीवित सूझ ॥ ११ ॥
आर्य्य गणो की लीकपर, भारत की हो चाल ।
बीचो बीच खड़े रहो, बना रहे यहि हाल ॥ १२ ॥
ज्ञानोन्नति ब्राह्मण करे, तपि हों स्वारथ हीन ।
चलिन श्रम अरु भोगही, शिल्पी ज्ञान न दीन ॥ १३ ॥
यह कालहि की सभ्यता, अर्थ सत्य यदि होय ।
सत्य त्याग हो ठीक हो, मिथ्या ग्रहण हि सोय ॥ १४ ॥
मन के भाव हि गुप्त करि, भावन्तर हि प्रकाश ।
करे वही अति सभ्य सो, करता सत्य हि नाश ॥ १५ ॥
सृष्टी करत अभाव को, ऐश हि देत बढ़ाय ।
संचकता अति वृद्धि हो, निर्दोषहि दिखलाय ॥ १६ ॥

बचन होय अति मिष्ट ही, काम न आवे काहि।
जगत सभ्यता जड़ यही, माया में फसि जाहि ॥ १७ ॥

सभ्यासभ्य भेद ॥ ४१० ॥

स्वारथ में सबही बंधे, नीच ऊंच दोउ जात।
ऊंच हज़म कर जात है, नीच हि नाहि पचात ॥ १ ॥
ऊंचे बोलत भूठ व्हां, सच करि सकै दिखाय।
नीच न दोऊ जगह में, बिना भूठ रह जाय ॥ २ ॥
सभ्य करै चोरी वहां, जहां न पकड़े जाय।
पकड़े गये सो चोर हो, नहि तो सिद्ध कहाय ॥ ३ ॥
जढ़ी सभ्य लक्षण यही, चेतन सभ्य हि और।
तप साधन से स्वार्थ को, नाश करै बेतौर ॥ ४ ॥
रोग अभाव हि सृष्ट करि, औषधि को करें खोज।
सभ्य जड़ हि लक्षण यही, चैन रात नहि रोज ॥ ५ ॥

समाज ॥ ४११ ॥

सत निश्चय हो जाय, तो भी दल बल के बिना।
सत बोला नहि जाय, सभासदें मूरख जो हों ॥ १ ॥
दस नकटे एक नाक का, मिल बैठे एक ठौर।
सब नकटन ऐसो कह्यो यही नाक बेडौल । २ ॥
तेल मिले नहि यत्न से, कबहूं जल के संग।
अपना साथ बिछोड़ के, मिले न पर के रंग ॥ ३ ॥

जगमें जितने पाप हैं, दन्ड बिधी जो ताहि।
संगिन साथ छुटान सो, बढ़ कर दन्ड हि नाहि ॥ ४ ॥
कर्म भले हों वा बुरे, पापी वहि हैं आज।
ऐसे दुर्भागि जिन्हे, बाहर करे समाज ॥ ५ ॥
संग छोड़ निज नहि मिले, कभी लाभ को अंक।
भक्त विभीषण जगत में, पायो बड़ी कलंक ॥ ६ ॥
सची बोली बोलना, पर प्यारी जो होय।
रूखी सच्ची बोल कर, मत डार हु सब खोय ॥ ७ ॥
नीच संग में बास करि, साधु नीत बरताय।
उभय लोक के लाभ को, सहजो*सकल बहाय ॥ ८ ॥
सत ही से जो प्रीत की, इच्छा तेरी होय।
नीच संग को छोड़ कर, डार पाप सब धोय ॥ ९ ।
निज समाज हो छोड़ कर, मिलहु न जाकर और।
अपने संग के नीच को, ऊंच करन कर गौर ॥ १० ॥
जिस संगके तुम योग थे, भे पैदा वहि ठौर।
अब तुम और हि जा मिलो, बिधना से हो भौर ॥ ११ ॥
संग छोड़ जो ऊंच हू, भये जगत के माहि।
कृष्ण जीवन हि बूझ लो, हियो दग्ध हो ताहि ॥ १२ ॥

सभा ॥ ४१२ ॥

दस मंत्री जाको भये, डूबो वाको राज।
स्वारथ अपनी ओर को, खींच नष्ट हो काज ॥ १ ॥

सभा करी या जो करो, चले करता ही चाल।
पिंजरे में दस बीस हों, बोलत एक हि लाल ॥ २ ॥
कर्ता एक हि हो जहां, उसका स्वारथ एक।
एक बुराई है भली, जो पै होय अनेक ॥ ३ ॥
बहु कर्ता जहां होत हैं, बलहु बुद्धि सम होय।
निश्चय काम बिगारि हैं, छिन छिन घटता सोय ॥ ४ ॥
करता एक हि हो जहां, सभा नाम हो झूठ।
दस करता हो जानते, सभा होयगी ठूठ ॥ ५ ॥
सभा करन एक है ठगी, स्वारथ भोगे एक।
अपजस सब के सिर पड़ै, कौशल हो बहुतेक ॥ ६ ॥
सभ्य सभा में देखहू, सभ्य घूस दे होय।
पाप मूल जेहि रूख हो, सुफल कहां से होय ॥ ७ ॥
हालत ऊंची जब न हो, महा बिड़म्बन सोय।
सकल मंत्रणा शत्रु घर, पहुंचत बिलम न होय ॥ ८ ॥
दोय कान की बात सब, जानत नहि कोइ कान।
चार कान बातें गईं, हो जाती बियाबान ॥ ९ ॥
प्रजा पती पहिले रहे, रही सभा की चाल।
एक राजा बिन देस का, होय न उमदा हाल ॥ १० ॥
राजा जैसा हो न क्यों, प्रजा योग्य तेहि हाल।
बुरे जब हि होने लगे, ईश्वर भेजत काल ॥ ११ ॥
यह चिन्ता हम लोग से, बेशी राखत ईश।
देश हितैषी नियम नहि, जानत हैं जगदीश ॥ १२ ॥

कंस जुलुम जब ही कियो, भयो कृष्ण औतार ।
या बिध जब जब काम हो, दैव करत प्रतिकार ॥ १३ ॥
अन्यायी कितनहु चतुर, और सियाना होय ।
भू दरार फटि जा धसै, कौशल बाहर रोय ॥ १४ ॥

मिहनत सस्ती क्यों ? ॥ ४१३ ॥

अटकी रक़म ज़मीन में, अरु परमिसरी नोट ।
मिहनत मिट्टी हो गई, बड़ी लगी यह चोट ॥ १ ॥
गहने में भारी रक़म, अटकी भारत माहि ।
सूद रहत बरस-आठ में, असल डूब ही जाहि ॥ २ ॥
पड़ी रही अटकी रक़म, भोग भयो नहि माल ।
धनिगण वारिस छोड़ कर, आप हु कर गये काल ॥ ३ ॥
बे मिहनत अइयाश हों, वह माई के लाल ।
श्रम जीवी भटके फिरे, काम बिना कंगाल ॥ ४ ॥
काम बिना औसत बड़े, मानुष गुड़िया होय ।
काम काजि छोटे रहे, खितिहर से क्या होय ॥ ५ ॥
अटकी हुइ यह सब रक़म, हो बरताव हि देश ।
सूद घटे मिहनत बढ़े, रौनक होय विशेष ॥ ६ ॥
सूद-उपजावन के लिये, तरह तरह बढ़े काम ।
काम लगे बहु जनन को, सब को हो आराम ॥ ७ ॥
श्रम से जिस के धन बढ़े, नीबु नोन रहि चाट ।
नौकरिये युरप हि के, भाग लाभ ले बांट ॥ ८ ॥

बुराई रोकने वाले आईन का फल ॥ ४१४ ॥

रोक बुराई की कभो, सकता नहि आईन।
अपने अपने यत्न से, सुधरत दुनिया दीन ॥ १ ॥
रोक बुराई के लिये, कड़ा होय आईन।
भेष बदल लें पाप तब, होत बुराइ नवीन ॥ २ ॥
व्यभिचार हि की रोक करि, कियो चलन मीताह।
और बुराइ बढ़ि अती, ईरान हि के माह ॥ ३ ॥
सतरह सौ तीरानवे, पन्धरह भे कानून।
अधिक सूद जो लेहिंगे, मूल धनहु हो न्यून ॥ ४ ॥
याको फल ज़र पेशगी, लेन सूद बहु रीत।
चलन भयो बेहार में, आइन गावे गीत ॥ ५ ॥
मुख़तारन को जो रवा, मिलत्यो फ़ीस वकील।
बन्द कियो आईन करि, औरहु भयो ज़लील ॥ ६ ॥
बदल गयो नाम हि रक़म, कहते क़र्ज़ इनाम।
कहीं वकील हि कम लियो, नहि रसीद को काम ॥ ७ ॥
आइन हु को डर रह्यो, बढ़ो फ़रेब हि फन्द।
पहिले से भी बढ़ गयो, भइ न बुराई बन्द ॥ ८ ॥

भारतबर्ष की अवस्था ॥ ४१५ ॥

मिहनत जब देस हि बढ़े, स्व अवलम्बन मांह।
उन्नत हो वह देस ही, ज्ञाता बूझे ताह ॥ १ ॥

मिहनत कोशिश जब घटे, अवलम्बन पर होय।
यह हालत जिस देस की, नष्ट गिनो तुम सोय ॥ २ ॥
ईसानी अरु रेल हूं, पूलिस अरु इस्कूल।
कलं काटा भारत चलन, मिहनत भङ्ग निर्मूल ॥ ३ ॥
आप भरोसा रहत है, शिल्प-अरु खेती माह।
दोनो लय होते चले, नहीं कोइ परवाह ॥ ४ ॥
खितिहर मजदूरी करे, नील चाह कल माह।
काज उठत चोरी करे, यही बनी अब राह ॥ ५ ॥
कारीगर इस्कूल पढ़ि, पहिर कोट पटलून।
जूआ चोरी सीखते, या नावल की धून ॥ ६ ॥
ईसानी के आसरे, बैपारहु नहि प्रीत।
काम चले दिन कटत है, घटी धनी सिर बीत ॥ ७ ॥
पूलिस दो दिन छोड़ दे, रख वाली हम लोग।
लोटा थाली छीन ले, बदमाशन बहु लोग ॥ ८ ॥
राह चलन बहु दरशिता, चोर डकैत न डर।
आतम रक्षा चौकसी, रेल लई सब हर ॥ ९ ॥
मिहनत से धन होत है, अरु जोखिम से होय।
मिहनत जोखिम दूर हो, धन हु कहां से होय ॥ १० ॥
दस बीसहि पूंजी लिये, चलत रहा रुजगार।
मिहनत जोखिम नहि रह्यो, लाभ हि को भय ख़्वार ॥ ११ ॥
कठिनाई मिटि जानते, बहुत भयो रुजगार।
पूंजी खाकर दिन कटे, इकोनमी को कार ॥ १२ ॥

प्रजा की अवस्था ॥ ४१६ ॥

पीड़न करि राजा जहां, प्रजा से धन जो लेय ।
प्रजा धनी अरु उद्यमी, राजा राज हि खोय ॥ १ ॥
राजा शिथिल हि होयगो, कर्ज़ काढ़ि ले काज ।
प्रजा शिथिल तहां होयगी, होय दरिद्र हि राज ॥ २ ॥
बढ़त उचित जब खर्च है, आमद हूं बढ़े संग ।
उद्यम हूं बाढ़त अती, यही अभाव हि ढंग ॥ ३ ॥
शिथिल राज को जहां प्रजा, लूट मार करि खांय ।
अलस नीरुद्यम होय कर, बे बरकत ही जांय ॥ ४ ॥

भारतवर्ष की स्वाधीनता ॥ ४१७ ॥

भारत नहि स्वाधीन हो, जब तक है है जात ।
मुसलमान हिन्दु कहें, राज्य तीसरे हाथ ॥ १ ॥
जेता जित अब भाव नहि, हुए भाइ अरु बन्द ।
जेता जित होना कठिन, बड़े बड़े हीं फन्द ॥ २ ॥
यहि इच्छा जगदीश है, सदा रहे यहि भांत ।
तीजो धर्महि राज हो, तभी शान्ति रहि जात ॥ ३ ॥
धर्म ज्ञान दोउ जात को, जब हीं ठीकहि ठीक ।
तबहो तो स्वाधीनता, नहि दासत्व हि लीक ॥ ४ ॥
बहु दरशी बहु देखते, डिवीज़नों के माय ।
यूरपियन नहि हो जहां, वहां क्वचित सुख पाय ॥ ५ ॥

मिनू सिपिल दृष्टान्त भी, बतलाया यहि सार।
सुख भोगत बलवान ही, यहि आज्ञा करतार॥ ६॥
यूरुपियन चूसत एक हि, देसिन मिलि बहुतेक।
यूरपियन कुछ बचत हैं, चूसैं देसि अनेक॥ ७॥
यूरपियन राजा हुआ, ताको सब सहलेय।
रस पी फूले भाइ एक, असह जो भूख मरेय॥ ८॥
भारत मे दोउ जात की, रयासत है बहु तेक।
मुसलमान हिन्दू कभी, खबर लड़न नहि एक॥ ९॥
अंगरेजी मे रोज ही, धरम लड़ाई होय।
कारन इसका है यही, जेता जित नहि कोय॥ १०॥
अरु कारन अखबार है, लिखत कटीली बात।
भारत की सब जात में, लगा देत उत्पात॥ ११॥

पात्र भेद से गुण भेद ॥ ४१८ ॥

बैद मसीवर ज्योतिषी, हलकारा कवि चौर।
इन पांचो के नरक ही, अब ही या कोइ तौर॥ १॥
यही काम साधू करें, उसी कहत उपकार।
पड़ि नीचन के हाथ हो, हो जाता अपकार॥ २॥
धार्मिक जन जो काम करें, कहैं उसी को ठीक।
नीचन हाथ हि कर्म पड़ि, ठीक होय वे ठीक॥ ३॥
कितने ऐसे काम हैं, स्वारथ है भरपूर।
स्वारथ धर्म बिसारि दे, आलसि करि करै चूर॥ ४॥

बिद्या पाय बिवाद हो, धन पाकर मद होय।
शक्ती पा पर पीड़ते, खल पै यह फल जोय॥ ५॥
धन से करते दान है, बिद्या से हो ज्ञान।
शकती पा रच्चा करें, साधुन यही बखान॥ ६॥
सबे सुहावन ही लगत, बसे सुहावनि ठाम।
आंख हि कज्जल कहत है, मुख ही कालिख नाम॥ ७॥
मदिरा ज्यौं घर अहिर के, ज्यौं घर दूध कलाल।
ठाम हि के गुण दोष है, ठाम हि होय हलाल। ८॥

पात्र भेद से दंड भेद॥ ४१९॥

एक दोष में पकड़ि कर, दोषी आए चार।
राजा एक कान हि कह्यो, यह तेरो आचार! ॥ १॥
दूजे कह्यो पुकार करि, तेरो यह व्यवहार।
माफ किये इस बारही, करो न दूजी बार॥ २॥
तीजे कहे दुत्कार कर, तेरो ऐसो काज।
फेर कुकारज जो करे, राज न आवे बाज॥ ३॥
चौथे को यह कहि दियो, मुह दो कालिख चून।
गदहे पर अस्वार करि, फेरो शहर हि दून॥ ४॥
मंत्री गण एक दोष को, दंडहि चार प्रकार।
देखत अचरज होय के, कहत बिनय आकार॥ ५॥
महाराज आईन को, कैसो भयो बिचार।
दंड भेद एक दोष को, नहि आईन हि सार॥ ६॥

राजा कहैं देखो प्रथम, सब दोषिन की हाल।
देख हि जो सन्देह हो, सो पूछो तुम काल॥ ७॥
मंत्री गण देखन चले, दोषी प्रथम हि जाय।
अचरज हो क्या देखते, मरयो ज़हर हो खाय॥ ८॥
दूजे को यह हाल है, गयो छोड़ वह देश।
तीजो लुकि घर ही रह्यो, मुख न दिखाऊं शेष॥ ९॥
चौथा गदहे पर चढ़ा, फिरत फिरत जो देख।
जोरू से कहने लगा, बची जान यह भेख॥ १०॥
अबू तो बहुतर रहे, चली न काहू लाग।
थोड़ी फिरि घर जात है, कर रोटी ला आग॥ ११॥
मंत्री देखहि चुप रहे, बूझ गये यह बात।
आईन-एकहि न्याय नहि, पाव भेद सब बात॥ १२॥

शारीरिक और मानसिक रोग॥ ४२०॥

समता पित कफ वायु की, स्वास्थ शरीर हि जान।
वाकी व्यत्यय होनते, कहते रोग निदान॥ १।
या विध समता गुणन की, रज सत तम की जान।
रोग मानसिक होत है, आयुर्वेद प्रमान॥ २॥
रज गुण कहिये शक्ति को, वस्तु कार्य्य यह दोय।
सत गुण उद्यम कहत है, तम आलस है सोय॥ ३॥
मानव शकती ज्ञान है, सकल विषय को ज्ञान।
ज्ञान शक्ति चालित रहे, रज गुण समता जान॥ ४॥

ज्ञान-उद्यम आराम ही, तीनों गुण के सार ।
समता इसकी शान्ति है, व्यत्यय रोग अधार ॥ ५ ॥

सौन्दर्य्य ॥ ४२१ ॥

कोइ गोल खूबी कहें, कहते कोई कोन ।
प्रीत दृष्टि मे खूबि है, संस्कार है जोन ॥ १ ॥
हिन्द हि ऊंची नाक है, चीन हि है बे नाक ।
आंख केश काले यहां, यूरप गिने न ख़ाक ॥ २ ॥
भूरी आंख अरु केश को, खूबी कहे वह लोग ।
मन भावे जिसकी जोई, खूबी कर ले योग ॥ ३ ॥
रंग रूप गति शब्द है, अर्थ युक्त जो शब्द ।
खूबी गुण ये पांच है, करहु भाव को लब्द ॥ ४ ॥
केवल रंग हि राम धनु, रंग रूप है फूल ।
रंग रूप गति एक में, कीट पतंग न भूल ॥ ५ ॥
रंग रूप गति शब्द हूं, चारो एक जा देख ।
कोकिल मोर अरु हंस हूं, चातक चकवा पेख ॥ ६ ॥
पांचो खूबी एक जा, हो देखन की चाह ।
मनू पूत मानव हि में, है देखन की राह ॥ ७ ॥
पांचो खूबी से हुए, हुनर पांच ही जान ।
पंडित गण बहु खोज करि, करते याहि बखान ॥ ८ ॥
चित्रकार है रंग से, दस्तकार है रूप ।
गति से नृत्य हि गीत भी शब्द भयो तद्रूप ॥ ९ ॥

अर्थ युक्त ही शब्द से, काव्य हि विद्या जान।
एक एक शब्द हंसाय दे, अरु रुलाय ले प्रान ॥ १० ॥

मित्र बल ॥ ४२२ ॥

जग में जितने बल कहे, मित्र बल हि सम नाहि।
धन बुद्धी अरु बाहु बल, तुलना नहि है याहि ॥ १ ॥
भाग्यवान जग में वही, मित्र बलहि जेहि होय।
जय जितनी जगमें भई, कारन इसका सोय ॥ २ ॥

प्रताप ॥ ४२३ ॥

जगमें पूरा काम नहि, होता बिन परताप।
बिन प्रताप मत हाथ दो, बड़ो काम को आप ॥ १ ॥
साधुनमें सत गुनहि से, होत प्रताप हि मूल।
दुष्टन में हिंसा प्रबल, कहें प्रताप अनुकूल ॥ २ ॥
शुभ दृष्टी से लाभ जेहि, क्रुद्ध भये हो हान।
या विध जेहि परभाव हो, कहत प्रतापि हि जान ॥ ३ ॥

गिरानी ॥ ४२४ ॥

बीस बरसमें हो बदल, युगहि समय अरु काल।
बस्तुन मंहगी अति हुई, कारन देहु निकाल ॥ १ ॥

गुरबा को भोजन कठिन, रहे भोजन खखदन्ध ।
स्वाद उन्ही के भाग में, बिधि कीन्ही परबन्ध ॥ ३ ॥
न्यामत को जेहि स्वाद है, भूख स्वाद नहि वाहि ।
दुखिया भूखहि सम सुखी, ईश्वर नियम हि माहि ॥ ४ ॥

भोजन नियम ॥ ४३० ॥

प्रतिदिन भोजन यह नियम, धनि वा होय दरिद्र ।
मूल धनहु रहती चले, पड़े न कैसहु छिद्र ॥ १ ॥
पर्व दिनों में धन विभव, यथा साध्य बरताव ।
इष्ट मित्र गण के सहित, भोजन देकर खाव ॥ २ ॥
साधू जन कुछ पावते, बांट चूट कर खांय ।
बिन बांटे जो खात है, शूकर जन्म हि पाय ॥ ३ ॥
प्रतिदिन भोजन को समय, एक न रख परकार ।
समय प्रकार हुं बदलि रख, ठीक नियम आहार ॥ ४ ॥
मावस पूनी चतुर्दशि, कर नहि रात अहार ।
एकादशि दिन रात नहि, तेरस दिन नहि वार ॥ ५ ॥
रवि को लवनहि त्यागकर, कोइ दिन मिष्टहु त्याग ।
छोरस भोजन हो सदा, भोजन सिद्धहि आग ॥ ६ ॥
जो नियमहि हो स्वास्थ पर, कभी नियम नहि तोड़ ।
नियम बिहार अहार नहि, आसा स्वास्थ हि छोड़ ॥ ७ ॥
जौन ऋतु जो बस्तु हो, सब कुछ करहु अहार ।
दृष्टि वज़न हो पर रहे, और नियम हू सार ॥ ८ ॥

छवो रस हु जो खात नित,वृद्धि होते बलवान।
ऋतु पैदा सब खाद्य जेहि, महा बली तेहि मान॥ ९॥

धन सुख का कारण नहीं॥ ४३१॥

मूरख धन को बूझते, सुखही की आधार।
कोइ दे धन कोटिन अरब, साथ रोग आज़ार॥ १॥
जाते पीड़ा हो अती, रोना हो दिन रात।
तौभी क्या तुम मानते, धनमें सुख की बात॥ २॥
सुखके हेतहि चाहते, धनको यह संसार।
जो धनसे दुख ऊपजे, क्या बूझत तेहि सार॥ ३॥
अति दुखसे धन आवता, गये महा दुख पाय।
रहत मोह चिन्ता अती, धन सुख क्यों कहलाय॥ ४॥
सादी*कह गय सार है, लोभ से आयो बाज़।
जिनको जितना धन अधिक,उतने वह मुहताज॥ ५॥
जो धन अपना मानते, रहत सदा तेहि दुःख॥
धन भंडार कुवेर की, यही ज्ञान दे सुक्ख॥ ६॥
धन को तत्त्वहि है यही, हुकुम बजावन हार।
उद्यम कारी पुरूषही, पाते हैं पुष्कार॥ ७॥
सुख धन मे कुछ है नही, सुख उद्यम संतोष।
इसको जो बूझत नही, धन उनको है दोष॥ ८॥

नुमाइश ॥ ४९२ ॥

शिल्प प्रदरशनि को कहे, देशहि को उपकार ।
अलस देश उपकार नहि, बरन बहुत अपकार ॥ १ ॥
भारत पीछे है बहुत, जो भी रह्यो अहार ।
कारीगर मारे गये, यही नुमाइश कार ॥ २ ॥
कारीगरि इस देसकी, देख नुमाइश माहि ।
परदेसी ला बेचते, सस्ते दामों ताहि ॥ ३ ॥
देसी बुद्धी हीन सब, गुण विवेक नहि कीन ।
सस्ती अरु सौन्दर्य पर, भूल हि कर लै लीन ॥ ४ ॥
ईश्वर महिमा से भये, कारीगर बुध हीन ।
ताते असली शिल्प ही, प्रदरशनी नहि दीन ॥ ५ ॥
क्योंकि नीत बंगाल की, देखत सन्मुख लाभ ।
नाचत हिन्द हि फस्ट कहि, कौन नुमाइश लाभ ६ ॥
बंगाले को शिल्पही, असली भयो प्रकास ।
रेशम तसरादिक सभी, होगय बहुत उदास ॥ ७ ॥
अबहुं विवेक बंगालमें, थोड़ा है विदमान ।
धोती चादर लेत है, देसी महंगा जान ॥ ८ ॥

कारीगरी ॥ ४९३ ॥

भारत बुद्धी हीन हो, शिल्प हि भयो उदास ।
ज़रा हिसाबी होय यह, शिल्पहि बढ़े प्रकास ॥ १ ॥

कपड़ों में बहु मेल से, कुछ कम लगता दाम।
सस्ता जान हि लेत सब, पड़ता जोड़ न काम ॥ २ ॥
देसी टिकता एक जब, परदेसी दो तीन।
सस्ता कितना ही पड़ा, जोड़त नहीं प्रवीन ॥ ३ ॥
पेच हि में अतिशय कसहि, रूई भारत जात।
थानहु आवत पेच कसि, लंच हि सब मसकात ॥ ४ ॥
जात-आवत दोउ ओर से, सड़त जहाज हि माहि।
दबा सड़ा कपड़ा पुनी, भारत में बिक जाहि ॥ ५ ॥
रूई माल निकाल करि, कपड़े करत महीन।
मोटे गूदड़ के सहित, मेल पाट को दीन ॥ ६ ॥
मोटे कपड़े जो बन हि, पिहरत वहि कंगाल।
पिहरत ही चर उड़ गयो, फसे खरच के जाल ॥ ७ ॥
पीतल को वहि हाल है, देखो नज़र उठाय।
बरतन सौ सौ बरस के, देखो घर में जाय ॥ ८ ॥
सोने से झलकत रहे, दखनी काशीवाल।
चदरे के बरतन अभी, टिकते नहि एक साल ॥ ९ ॥
दखनी बरतन लेय के, पुश्त पुश्त बरताय।
बरतन चदरा लेत ही, गिरत फूट ही जाय ॥ १० ॥
चदरा एक मन लो अभी, रुपै बीस लगे माल।
जस्ता वामें है भरे, पड़े ससतइ के जाल ॥ ११ ॥
जिन को बुद्ध ईश्वर दई, जानत करन हिसाब।
देसी चीज हि लेय कर, बचा लेत हैं आब ॥ १२ ॥
धुस्सा एक हि बीस को, ओढ़त बरस हि बीस।
एक रपर छ सात को, एक साल में खीस ॥ १३ ॥

जेहलख़ाना शिल्प ने, देस कियौ बरबाद ।
प्रति योगी नहि हो सकै, शिल्पी जो आज़ाद ॥ १४ ॥
आठ-आने परिवार व्यय, आध सेर की भात ।
कारीगर बंधुवान ते, क्या मुक़ाबिला बात ॥ १५ ॥
राजा को नहि ध्यान है, परजा को नहि ध्यान ।
ईश्वर भी नहि होयगो, काहिल पर रहमान ॥ १६ ॥
अब तक यूरप की कोई, कारिगरि भी एक ।
उपयोगी भारत नहीं, कियौ यतन बहुतेक ॥ १७ ॥
पराशर हि बरखा कियौ, ऊंख पिरन के हेत ।
लोहे का गढ़ि कै कियौ, बिहिया✽का संकेत ॥ १८ ॥
भारत को मूल हि लियौ, भारत गयौ बनाय ।
यूरप की क्या धार है, मीलान✽लाभ हि पाय ॥ १९ ॥
सूई और हु कहत हैं, कहते दिया सलाइ ।
बिन इसके कुछ हर्ज नहि, केवल धनहि हराइ ॥ २० ॥
चकमक पथरी काम दे, काम हि नही सिलाइ ।
तोभी जो कुछ काम की, सूई दियासलाइ ॥ २१ ॥
धोती चादर पहिरते, नहीं सिलाई काम ।
बढ़े ऐश अरु धन घटे, भारत यही हराम ॥ २२ ॥
भारत कारीगर गढ़े, बिन शिक्षा बह चीज़ ।
उन दामों में चीज़ वह, अन्य देश नहि बीज ॥ २३ ॥

✽ बिहिया ग्राम ज़िला आरा में✽मीलन साहब और तामसन साहबने ऊंख पेरनै की कल बनाई है।

बिकरी जिसकी होत है, उम्दा हो वह चीज।
काश्मिर ढाका काशि में, देखो उस की बीज ॥ २४ ॥

नये नये मत होने के कारण ॥ ४३४ ॥

धर्म भंग जब होत है, और हु नियम समाज।
इन कारण पर जन्म हो, नये धर्म की आज ॥ १ ॥
ठीक राह पर चलन को, मानव वृत्ती जान।
धर्म प्रवृत्ती तेहि कहें, बिन तेहि दुःखित प्रान ॥ २ ॥
धर्म भयंकर रूप हो, बढ़ता अत्याचार।
पाप नाश के हेतु हो, तब तब हो अवतार ॥ ३ ॥
आदि धर्म हो बेद को, स्मार्त कहत है ताहि।
ठीक जभी तक वह रह्यो, धर्म अन्य भय नाहि ॥ ४ ॥
वैदिक हिंसा जब बढ़ी, वैष्णव बुद्ध-अवतार।
पंच मकार हि बंग में, प्रभु चैतन्य प्रचार ॥ ५ ॥
महा पुरुष अरु देव गण, कर्म दोष के हेत।
इस धरती में देखते, जनम नीच घर लेत ॥ ६ ॥
शासन ऋषिगण जब रह्यो, जानत वह बल योग।
महा पुरुष को चीन्ह कर, कर लेते सहयोग ॥ ७ ॥
अब काहू वह ध्यान नहि, नहि काहू वह ज्ञान।
नियम समाज हि भंग हो, मत कारण यहि मान ॥ ८ ॥
बहु जातन अति नीच थे, दियो महा प्रभु तार।
बल्लभ कुल पावन कियो, लियो श्रेष्ट आचार ॥ ९ ॥

हजरत ईसा कहत है, प्रभु महम्मद जान ।
नानक और कबीर हूं, रबिदास हु पहचान ॥ १० ॥
और बहुत भै भक्त जन, गिनती कही न जाय ।
सभी महात्मा गण रहे, निन्दहु काहू नाय ॥ ११ ॥
भये महात्मा गण यही, बूझयो नहि सब ताय ।
ऋषि गण होते जो कभी, सब होते एक राय ॥ १२ ॥
जाति भेद के द्वेष से, कहते हम पाषण्ड ।
जाति भंग तब होय कर, हम पाते हैं दंड ॥ १३ ॥
उनके उन्नत होन की, नहि दूजो हि उपाय ।
ईश्वर महिमा से कहे, अन्य मत हि बन जाय ॥ १४ ॥
आर्य्य कुल हिमें जन्म जेहि, द्विज संज्ञा है जाहि ।
अति उन्नत वहि जात है, धर्म हु उन्नत ताहि ॥ १५ ॥
वह बदले जो धर्म को, दशा बिचारी ताहि ।
जोड़ राह पर धर्म हो, सब हिन्दू के माहि ॥ १६ ॥
जोड़ राह चाहो चलो, हिन्दु नाम कहलाय ।
बेद समाज हि मान कुल, आर्य तिलक बन जाय ॥ १७ ॥

धन संचय का सहज उपाय ॥ ४३५ ॥

जितना खरचत जो पुरुष, अर्द्ध हि खरचत जाय ।
अर्द्धहि संचय होय तब, क्या है सहज उपाय ॥ १ ॥
सत पथ मे व्यय हो अधिक, आमद हू बढ़ि जाय ।
कूप जल हि ज्यों व्ययअधिक, त्यों आमद अधिकाय ॥ २ ॥

गाछहु को जब काटते, फूल फल हु अधिकाय।
उपकार हु के काम के, आमद लखी न जाय॥ ३॥
निर्धन बहुत महंथ हूं, पालत बहुतर साध।
है भंडार कुबेर को, हित कारिन की आध॥ ४॥

वैराग्य भेद॥ ४३६॥

है प्रसूति वैराग्य एक, अरु स्मशान वैराग।
आलस को एक कहत हैं, और कष्ट वैराग॥ १॥
और काम वैराग्य है, एक क्रोध वैराग।
एक लोभ अरु मोह से, मद मत्सर पर त्याग॥ २॥
या विध नीचन के किये, दश वैराग्य बखान।
ज्ञानी पुरुषन में कभी, यही दोष मत मान॥ ३॥
महा पुरुषन वैराग्य को, कह स्वरूप वैराग।
कर्म सभी वह करत हैं, दियो सभी है त्याग॥ ४॥
शंकर भगवान हि कियो, सन्यास हि प्रतिवाद।
लोक हि को शिक्षा दियो, बचन कह्यो निर्वाद॥ ५॥
कलि बर्ज हि सन्यास को, फल ही यही दिखाय
गिरी पूरी सन्यासि गण, महा गृही बन जाय॥ ६॥

समाप्त।

सातवां अध्याय।

स्थान वर्णन।

लक्ष्मी का वास स्थान ॥ ४३७ ॥

कहत लक्ष्मी बिष्णु से, मेरो दो है वास।
उद्यमि के पद धूल में, एक तुम्हारे पास ॥ १ ॥

दरिद्रा का वास स्थान ॥ ४३८ ॥

कैलास हि में देख कर, पूछत भोलानाथ।
कहां तुम्हारो वास है, रहती किसके साथ ॥ १ ॥
देवि दरिद्रा हर्ष से, तब बोली मुसकाय।
नाथ हमारो वास तो, एक हि नहि है ठांय ॥ २ ॥
केवल उद्यमि के घरहि, मेरो नहीं गुज़ार।
दख़ल करत लक्ष्मी वहां, मुझ को देत निकार ॥ ३ ॥
लक्ष्मी को एक वास है, मेरो है बहु वास।
वाको सबही चाहते, मुझ से रहत उदास ॥ ४ ॥

मेरो सुख बासी वहां, जहां अलस अइयास ।
ताड़ी जूआ खाने में, और कलाली पास ॥ ५ ॥
पंडित के घर हूं रहत, जहां न उद्यम काम ।
पोथी पत्रा ही सदा, जग काम हि नहि नाम ॥ ६ ॥
वेश्या घर हू रहत हूं, और अदालत माह ।
सोने हूं में बास है, और जवाहिर माह ॥ ७ ॥
घी चीनी में बास है, उद्यमि के घर नाहि ।
जहां बुराइ देखती, डेरा पड़ता व्हांहि ॥ ८ ॥

तीर्थ स्थान ॥ ४३९ ॥

निर्मल स्वच्छ अगाध जल, मीठो और निरोग ।
महापुरुष सेवत जिसे, तीरथ कहें सब लोग ॥ १ ॥
मन प्रफुल्ल जहां बैठ हो, पाप, न आस हि पास ।
ज्ञान लाभ जहां सहज हों, साधू करत निवास ॥ २ ॥
गंगा आदि बिमल नदी, सर झरना भर पूर ।
कूप जल हुं कल से जहां, सहज हौज़ रहे पूर ॥ ३ ॥
जल की बहुतायत रहे, रहे साधु गण भोग ।
ऐसे जल सब तीर्थ हैं, बूझे ज्ञाता लोग ॥ ४ ॥

पवित्र भूम ॥ ४४० ॥

श्रम जीवी सुखिया रहें, वहि बड़ भागी भूम ।
नहस भूम जहां बास हो, धनि दरिद्र घर सूम ॥ १ ॥

चढ़ति कला की भूम पर, बसते हैं जो लोग।
सकल कला चढ़ती रहे, सुख होता अरु भोग॥ २॥
नहस भूम पर वास करि, बेच खोस कर खाव।
धरम गंवाओ आपनी, अंत जात पर दाव॥ ३॥
गिरते के संग गिरत हैं, चढ़ते संग चढ़ाव।
संगत गुण यों प्रबल है, जितना होय बनाव॥ ४॥

जन्म भूम॥ ४४१॥

तुलसी* कबहु न जाइये, जनम भूम की ठाम।
गुण अवगुण बूझत नहीं, लेत पाछली नाम॥ १॥
जन्म जहां पर होत है, बढ़ता अन्य स्थान।
सारे जग यह जानते, ज्यों रोपा को धान॥ २॥
मूरख बैठे सहत हैं, जब तक हो नहि अन्त।
बहु दरशी खटके जहां, झट पट देहि पलन्त॥ ३॥
जन्म भूम को छोड़ कर, बसे जो अन्य स्थान।
बढ़ती जो त्हां हो गई, फिर कर बदल मकान॥ ४॥
अन्य स्थान हि बढ़हि के, पतन हि होत न देर।
ताते करना उचित है, झट झट ही घर फेर॥ ५॥

कृषि भूम॥ ४४२॥

कमती कर हो भूम को, कमहु मजूरी होय।
निखरच गोचारन जलहु, सैराबी को तोय॥ १॥

जल वायू भी ठीक हो, ऐसी भूम हि जाहि ।
वाको लाभ न होय जो, कहे अभागा ताहि ॥ २ ॥
भारत में ऐसी ज़मी, खोजे बहुतर पाय ।
दुर्भागे की लक्ष्मी, आंख सामने जाय ॥ ३ ॥

उन्नत देश ॥ ४४३ ॥

ऊंची देश वही गिनो, मन्दा हो रोज़गार ।
गन्धी बैद वकील अरु, हलवाई की कार ॥ १ ॥
इन्ही शर्त पर गुण गिनो, निर्धन हो नहि देश ।
सुवाधनीता ज्ञान हो, हक़ को ज्ञान विशेष ॥ २ ॥
यह गुण वहां न होय जो, जानो देश उजार ।
बढ़ती तब ही जानना, चले इन सब का कार ॥ ३ ॥

घर ॥ ४४४ ॥

आलीशान गृहस्थ की, घर करना कभि नाहि ।
जब जिस ने ऐसा किया, होता छिप्र हि ताहि ॥ १ ॥
ठाकुरद्वारि समाज घर, औरहु राज द्वार ।
जितना कर बन पड़ सके, आलीशान तयार ॥ २ ॥
एक प्रशस्थ ज़मीन पर, कर छोटा घर त्यार ।
रहे गृहस्थ जेहि एक ही, इतनाही बिस्तार ॥ ३ ॥

दस दस फुट दालान एक, दस अरु आठ उसार ।
दस दस को आंगन कहें, दस दस बैठक कार ॥ ४ ॥
दोतल पर एक शैन गृह, राख चतुर्दिग द्वार ।
कूप ओर असनान घर, पैखाना गोसार ॥ ५ ॥
या बिध एक गृहस्थ को, जुदा जुदा घर सार ।
पुरुषन की एक बैठका, इजमाली कर त्यार ॥ ६ ॥
इजमाली पुरुषन रहें, औरत रहें फराक़ ।
स्वर्ग तुल्य सब सुख बने, क़ज़िया हो न कज़ाक ॥ ७ ॥
वायु कोन कूआ न कर, नहिं दक्खिन पाखान ।
दक्खिन घर न बढ़ाइये, दखिन-उत्तर लम्बान ॥ ८ ॥
कूए पर संडास क़ा, पैख़ाना मत साज ।
कूआ रख अति दूर ही, नल ढाल हि कर काज ॥ ९ ॥
गौ मुख घर बनवाइये, बघ मूहा नहिं होय ।
आगे ऊंचा बाघ मुख, पीछे गौमुख सोय ॥ १० ॥
नौ फुटसे बढ़ थोल नहिं, छ फुट ही हो द्वार ।
कड़ा जोड़ कर छत बने, न हो काठ की कार ॥ ११ ॥
धरती को पक्की करो, करो न भीत हि व्यय ।
कसरत की फलका करो, नही होय व्यत्यय ॥ १२ ॥
चारो ओर जमो खुली, रहे फूल अरु गाछ ।
नीबु करौंदा मीरचा, बेल-औंला तेहि पाछ ॥ १३ ॥
तुलसी दुर्वा अधिक हो, घी कुमार हड़ कंक ।
धनिया पूदीना सदा, बोजहु करी निशंक ॥ १४ ॥

एक घर हि में बास जो, कइ गृहस्थ की होय।
उस से घर बढ़ कर नहीं, नरकपुरी में कोय ॥ १५ ॥

भुतहा घर ॥ ४४५ ॥

अंधि याले घर में हवा, आवे जहा न जाय।
भूत बसै उस गेह में, मानुष चुनि चुनि खाय ॥ १ ॥
असल भूंत में शक्ति नहि, मानुष को दुख देय।
बुरी हवा ही भूत बन, बहु दिक सिक कर देय ॥ २ ॥
घर ऐसा बनवाइये, रहे चतुर्दिग द्वार।
बुरी हवा निकलत रहे, भली वायु संचार ॥ ३ ॥

बदमाशों की खान ॥ ४४६ ॥

बदमाशों की खान में, कभी न करिये वास।
बहुत लटाखा होत हूं, झट पट होउ उदास ॥ १ ॥
बिन उद्यम धन ऊपजे, खान वही बदमाश।
भले जहां होते बुरे, व्हां ही क्यों कर बास ॥ २ ॥
गवर्मिन्ट जहां देत है, बड़ि बड़ि पिनशिन ढाल।
अथवा तीरथ भूम में, चढ़त जहां बहु माल ॥ ३ ॥
अथवा कोई भूम हो, भोग ऐश जहां रीत।
राजा प्रजा अमीर सब, श्रम नहि सब बिपरीत ॥ ४ ॥
या बिध जो कोइ भूम हो, घड़ी एक को बास।
नहीं उचित करना कभी, जब तक तन में सांस ॥ ५ ॥

वास स्थान ॥ ४४७ ॥

जहां नहीं सन्मान हो, मित्र न कुल परिवार।
धनि पंडित राजा न हो, नदी वैद्य आधार॥ १ ॥
जहां न होय महापुरुष, तहां न कीजे बास।
कोऊ गिनत न काहु को, सब ही खास हि खास॥ २ ॥
बे सिर को हो दल जहां, न कर वहां कभि बास।
मूरख बैठे ज्हां रहें, पंडित होत उदास॥ ३ ॥
शत्रु जहां बलवान हो, बदमाशों की खान।
जल्दी उठना उचित है, कुछ सन्देह न जान॥ ४ ॥
ज्ञान हीन परजा रहे, राजा भी नहि होय।
उसी अभागे देस में, चतुर बसत नहि कोय॥ ५ ॥

समाप्त।

आठवां अध्याय।

काल वर्णन।

औसर ॥ ४४८ ॥

वृथा ज्ञान सबही कह्यो, जिसको ज्ञान न काल।
औसर चूको डोमनी, गावत ताल बिताल ॥ १ ॥
रावन कह गय राम से, जलदी करना काम।
शुभ का हो, जो अशुभ का, जितना होय बिराम ॥ २ ॥
कल्ह करे सो आज कर, आज करे सो अब।
कौन घड़ी क्या होयगी, पछतावा रहे तब ॥ ३ ॥
फीकी भी नीकी लगे, कहिये समय बिचार।
सबको मन हरखित करे, ज्यों बिवाह में गार ॥ ४ ॥
नीकी भी फीकी लगे, कर बिचार कर बात।
जैसे बरनन युद्ध से, रस सिंगार न सुहात ॥ ५ ॥
धन भंडार से जग भरा, मूढ़ न देखन पाय।
औसर पर कुछ ध्यान नहिं, अगल बगल चलि जाय ॥ ६ ॥

प्रातः काल ॥ ४४९ ॥

पांच घड़ी बाकी रहे, पिछली पहरी रात।
भोर तहां तक कहत हैं, सूरज जब उगि जात ॥ १ ॥
भोर हि उठि हरनाम ले, काम काज ले ठान।
ऐसे घर दारिद्र हो, झूठा बेद पुरान ॥ २ ॥
प्रात दिवा सोया करे, ऐसी जिसकी बान।
उसको सुख संपत मिले, झूठा बेद पुरान ॥ ३ ॥

त्योहार ॥ ४५० ॥

श्रावण शुकला पौर्णिमा, ब्राह्मण की तिउहार।
सब समाज एकत्र हो, करले सकल बिचार ॥ १ ॥
तीरथ जल से देह धो, ग्लानि नदी में मन।
स्नान अरु प्राश्चित साध के, नया ज्ञान दे भन ॥ २ ॥
आश्विन शुकला दशहरा, चत्रिन की तिउहार।
यात्रा करि रण भूममे, कर्तब करत प्रचार ॥ ३ ॥
वैश्यन की दीपावली, घर सुथरा कर साज।
दीया बहुत जलाय के, भाप जला, हो काज ॥ ४ ॥
पिछला खाता चूकती कियो नही जिन शोध।
उनको खाता बन्द करि, नय खाता को बोध ॥ ५ ॥
देसावर डिस्कौन्ट को, सौदा पत्तर काम।
दल्लाले जो नहि सके, लिखते उनका नाम ॥ ६ ॥

सौदा होय न होय भी, दल्लाली सब पांय ।
दल्लालन उस दिन सभी, सब कोठिन मे जांय ॥ ७ ॥
माल जिनिस सोदा करे, गण नायक की पूज ।
वही मुहूरत साध करि, भूसि प्रसाद हि भूज ॥ ८ ॥
जूआ हूं सब खेलते, नीच रुची के लोग ।
दछना पा ब्राह्मण कहें, आज द्यूत है योग ॥ ९ ॥
शूद्रन के तिउहार मे, होली है परमान ।
नीची खोंटी वृत्तियां, इसमें होंय प्रधान ॥ १० ॥
गांजा मदिरा भंग को, धूर अबीर गुलाल ।
गाली गुफ़ता कीच भी, अरु जूते की माल ॥ ११ ॥
नीच रुची आमोद सब, होते इस्त्यामाल ।
नीच रुची के भद्र जन, होते शामिल हाल ॥ १२ ॥
थोड़े दिन से काल की, रीत गई बदलाय ।
ऊचें कुल के बहुत कम, होली में मिल जाय ॥ १३ ॥

युगान्तर ॥ ४५१ ॥

कोइ काम मे लस नहीं, रस नहि कोई काम ।
बड़े नये कोइ हों नहीं, सब ही होंय समान ॥ १ ॥
नौकरि हूं मिलती नहीं, रुज़गार हु फल नाहि ।
तंचक हूं चलता नहीं, बल नहि देहहु माहि ॥ २
नहि विद्या से धन मिले, नहि बुद्धी से माल ।
नहि बल हू कुछ काम दे, जानो बदल हि काल ॥ ३ ॥

खर्च बिलास हि बढ़त है, आमद को नहि राह।
छटपट करि ढूढ़त फिरत, नयो हि निकसत राह ॥ ४ ॥
बढ़ी ज़रूरत खर्च की, निकसत नइ नइ बात।
भोले उन्नति कहत है, जो है कालहि घात ॥ ५ ॥
बालक ज्यों ज्यों बढ़त हि, कहत बढन्ती जान।
काल जिन्दगी खात है, नहीं उधर हो ध्यान ॥ ६ ॥
ऐसो काल जु होगयो, तब जानो जग फेर।
प्रलय कहो तो होयगो, जीवित की हो सैर ॥ ७ ॥

इह काल और पर काल ॥ ४५२ ॥

इह काल हि के साथ ही, चाहत जो पर काल।
पूरब पच्छिम दोउ दिशा, नहि पहुचत इक चाल ॥ १ ॥
परकाल हि पर चाह जेहि, तेहि सुधरत दोउ काल।
सींचत मूल हि हो हरे, शाख़ पात अरु डाल ॥ २ ॥
इह काल हि में है कहा, जीवन यापन सार।
बिन उद्यम वह लाभ हो, चिन्ता नहि दरकार ॥ ३ ॥
प्रथम दूध मा थन दियो, शक्ति न उद्यम बाल।
चिंता फिर उद्यम कहा, जीवन यापन काल ॥ ४ ॥
राम भरोसे जो रहे, परबत पर हरियांय।
तुलधी* बिरवा बाग में, सींचत हू कुम्हलांय ॥ ५ ॥
अर्थ हि चिन्ता कहत है, इह काल हि को जान।
शान्ति लाभ हो मानिये, पर काल हि पहछान ॥ ६ ॥

निज ऐशहि के भोग को, अर्थ प्रयोजन होय ।
इह काल हि के काज यह, नरक मूल यह सोय ॥ ७ ॥
पर उपकारी काम सब, अर्थ हि ही बा जोय ।
पर काल हि यह काम गिन, शान्ति हि फल तेहि होय ॥ ८ ॥
जीवन यापन भार सब, मेरो है पर हाथ ।
अर्थ प्रयोजन है कहा, खर्च ऐश के साथ ॥ ९ ॥
एक अभाव हि अर्थ को, कारण ऐशहि जान ।
इह काल हि वाको कहें, कारण पतन हि मान ॥ १० ॥
शान्ती जिन ढूढा सदा, बन्यो ताहि पर काल ।
अर्थ लाभ हू ताहि हो, सुधर गयो दोउ काल ॥ ११ ॥
आज हुं देखो आंख से, जिन सेव्यो पर काल ।
नही कमी तेहि धनहु हो, जग जा उफलत माल ॥ १२ ॥
दिन दिन देखत सब हु हैं, पर काल हि के काम ।
उठा लेत कोइ निर्धन हु, पुरा देत है राम ॥ १३ ॥
पर काल हु के काम को, साधू जन जिन ठान ।
धर्म बिरोधी यवन हूं, दियो बहुत धन दान ॥ १४ ॥
विन बूझे अज्ञान हो, फसत मोह इह काल ।
स्वर्ग रूप संसार को, करत नरक जंजाल ॥ १५ ॥
नहि पायो यह काल हो, खोयो तिन पर काल ।
बिना पुण्य नहि कट सके, यह माया को जाल ॥ १६ ॥

देश काल ॥ ४५३ ॥

देश काल को ज्ञान बिन, नही कर्म फल होय ।
यह जाको नहि ज्ञान है, पशु जानो तुम सोय ॥ १ ॥
हर कामों के पूर्व ही, देश काल कर याद ।
हर लेखहि में बैस ही, लिखना दे मत बाद ॥ २ ॥
तैसहि कहते है उचित, निज नाम हु उच्चार ।
हर लेखन के संग ही, निज परिचय दरकार ॥ ३ ॥
हर कामो में कहत है, साधन जो यह काम ।
वाको कहते शास्त्र में, संकल्प हि कर नाम ॥ ४ ॥
प्रति दिन उठि अति भोरही,तिथि पत्रा ले देख ।
देश काल अस्मरण करि, कर्म करहु वा लेख ॥ ५ ॥
जोइ काम जो दिन करे, संकल्प हि कर ठान ।
प्रोग्राम दिन का करहि, काल नियम ले मान ॥ ६ ॥
जल हाथ हि संकल्प करि,लेख लिख हु इस्टाम ।
मन अरु यह को साचिकरि,लेख साचि लिख नाम ॥ ७ ॥
जोइ प्रतिज्ञा करत है, भंग न कबहू होय ।
इच्छा होन हु पर कभी, राह न राख हु सोय ॥ ८ ॥
संकल्प हु उच्चार विधि, संस्कृत हि में होय ।
सब ही को सीखन उचित, जाति भेद नहि कोय ॥ ९ ॥
एक बार पूरा कहें, वहि दिन फिर संक्षेप ।
जाते तनक न पाप को, रह जावे कछु लेप ॥ १० ॥
देश ज्ञान मे ध्यान रख, बर्ष खंड अरु द्वीप । ३८

देश क्षेत्र अरु नगर हूं, और मुहल्ला टोप ॥ ११ ॥
घर को नम्बर होय जो, ताहु करो उच्चार।
या बिध देश हि ज्ञान में, है सब ही दरकार ॥ १२ ॥
ब्रह्म आयु अरु कल्प हूं, मन्वन्तर हू जान।
युग अरु युग के चरण हो, औतार हु को मान ॥ १३ ॥
प्रचलित शाका कहत हैं, संख्या वाको जान।
सम्बत्सर को नाम हू, अयन ऋतू पहचान ॥ १४ ॥
मास पक्ष तिथि वार हूं, चन्द्र नक्षत्र हु जान।
चन्द्र सूर्य्य को राशि हूं, गुरवादिक पहचान ॥ १५ ॥
इतने भेद हि काल के, मनुष उचित है ज्ञान।
बिन जाने इन बात के, कहते निपट नदान ॥ १६ ॥
अपने नाम उचार में, गोत्र प्रवर अरु वेद।
शाखा सूत्र उपाधि हूं, पिता पितामह भेद ॥ १७ ॥
या बिध नीयम ठीक करि, करहु जगत के काम।
अर्थ धर्म अरु काम हूं, और होय आराम ॥ १८ ॥

समाप्त।

नवां अध्याय ।

देव देवी वर्णन ।

त्रिदेव देवी ॥ ४५४ ॥

सत रज तम की कल्पना, सुख दुख क्रम से मोह ।
सूक्ष्म अर्थ गुण तीन की, बूझत पंडित कोह ॥ १ ॥
तीन गुण हि के ज्ञान को, प्रगटे देवी देव ।
अती सूक्ष्म यह बात है, इसकी बूझी नेव ॥ २ ॥
देव अधिष्ठाता कहें, ब्रह्म रजो गुण जान ।
"शक्ती" वाको फल कहे, और कहत है "ज्ञान" ॥ ३ ॥
सरस्वती तेहि नार है, देवी विद्या जान ।
जग सृष्टी याते हुई, रज गुण की पहचान ॥ ४ ॥
सत गुण के विष्णू कहत, देवी लक्ष्मी जान ।
उद्यम भाषा में कहत, फल तिहि श्री की मान ॥ ५ ॥
सत गुण की नारी कहे, लक्ष्मी वाकी नाम ।
जाहि कृपा से होत है, जग के पूरे काम ॥ ६ ॥
उद्यम अरु सिद्धी बिना, लक्ष्मी जी को पाय ।
लक्ष्मी नहि रहती कभी, माया रखि चलि जाय ॥ ७ ॥

तम के भोलानाथ हैं देवी माया नाम ।
आलस भाषा में कहत, माया की आराम ॥ ८ ॥
तीन देव को सिद्ध करि, पावत हैं जो ज्ञान ।
भव सागर की पार हो, जीवन्मुक्त हि मान । ९ ॥
आदि अन्त इस ग्रन्थ में, देव हि तीन बखान ।
यही ज्ञान जो लाभ हो भवसागर उतरान ॥ १० ॥
शक्ती से सृष्टी भई, वृद्धी उद्यम जान ।
आलस ही से नाश हो, त्रयगुण कियो बखान ॥ ११ ॥
सृष्टी ब्रह्मा करत हैं, पालत विष्णू जान ।
मारत भोलानाथ है, जग लीला पहचान ॥ १२ ॥

अन्न पूर्णा का दान ॥ ४५५ ॥

भारत में अनपूर्णा, गई भूम में पैठ ।
तनक हु हाथ पसारिये, देती घर ही बैठ ॥ १ ॥
माता की सेवा ज़रा, करे कोड़ बिस्तार ।
लक्ष्मी को संग लाय कर, घर देती बैठार ॥ २ ॥
इनको जो कोइ छोड़ कर भजे शारदा इष्ट ।
पेट भरन दुर्लभ हु हो, लक्ष्मी होती रुष्ट ॥ ३ ॥
आलसि बन हो पाठ रत, उद्यम देय हराय ।
देवि दरिद्रा आय कर, उस घर में बस जाय ॥ ४ ॥
जगमें जितने लाभ हैं, प्रतियोगी ले छीन ।
अनपुरणा के दान में, कोउ न बाधा दीन ॥ ५ ॥

महामारी औतार ॥ ४५६ ॥

मानुष आलसी होय जो, पड़े अधिक भूभार ।
जनम मनुष उतनी भयी, जितनी है दरकार ॥ १ ॥
करम हीन ढीले मनुष, देते हैं जब भार ।
भार उतारन भूम की, महामारि औतार ॥ २ ॥
हैज़ा डेंगु लाल ज्वर, तरह तरह बीमार ।
भार उतारन के लिये, महमाया औतार ॥ ३ ॥
क्षुधा देवि जब रहत है, जाहि देह व्रतमान ।
महामारि वाके निकट, नहि सकती है जान ॥ ४ ॥
महामारि सी वहि बचे, राखि क्षुधा जो खाय ।
पेट भरे पर दाब दे, महामारि झट आय ॥ ५ ॥

भूत और इष्ट देव दर्शन ॥ ४५७ ॥

अतिशय जब हो प्रेम की, अथवा हो भय भीत ।
इष्ट देव दरशन मिले, होय भूत उपनीत ॥ १ ॥
भय भक्ती को लोप हो, होय ज्ञान परकाश ।
देव दरस दुर्लभ तभी, नहि हो भूत बिकाश ॥ २ ॥
थोड़े दिन में काल गति, बदल गई इस तौर ।
भोले देखे भूत पर, नहि जो करते गौर ॥ ३ ॥
जब कहि खटका भूत को, होय करो बहु गौर ।
निर्भय होकर जांच लो, तब ठहराओ और ॥ ४ ॥

डुमड़े तुमसे नहि बड़े, हरदम रहत मसान।
गौर करी उसको ज़रा, हो क्यों व्हां भ्रम ज्ञान॥ ५॥
जब ही भय अतिशय बढ़े, भय ही भूत हि रूप।
डरो नहीं तो कुछ नहीं, समझ लेहु तद्रूप॥ ६॥
जन्मेंगे वह भविष्य है, है सोइ व्रतमान।
मरते हैं सो भूत हों, बृथा भूत को मान॥ ७॥
असली यानी भूत की, पंच भूत नहि देह।
देव योनि उनकी कहैं, डर है नहि सन्देह॥ ८॥
वह नहि काहू पीड़ते, नहि सकते है पीड़।
जीव रूप भटके फिरत, भोगत कर्म हि भीड़॥ ९॥

देवासुर ॥ ४५८॥

अपनो स्वारथ साधि के, करते जगको काम।
धर्म बुद्धि प्रबला रहे, देव उन्हीं का नाम॥ १॥
अपनो स्वारथ साधि के, करते जग को काम।
नहि दृढ़ता हो धर्म पर, असुर उन्हीं का नाम॥ २॥

कुवेर भंडार ॥ ४५९॥

धन समष्टि सब जगत की, कहत कुवेर भंडार।
धनपति रोकड़िया कहैं, साधू करत विचार॥ १॥
साधारण उपकार को, कहत कुवेर हि कार।
निज भोगन में व्यय करे, चोरन को सरदार॥ २॥

धन कुवेर भंडार ही, बढ़त चलि सब कार ।
एक हि को जब धन बढ़े, होता देश उजार ॥ ३ ॥
जग धन बाढ़त है जभी, कहें तब धन की बाढ़ ।
इकं सी बेशी लाभ जब, तब हो देश उजाड़ ॥ ४ ॥
धन को अपनी मान कर, हो तसरुफ बेजाय ।
दूत कुवेर हि आय कर, रोकड़ लै छिनवाय ॥ ५ ॥
ऐयाशी को शिल्प सब, और ऐश सामान ।
और अदालत खर्च हूं, दूत कुवेर हि जान ॥ ६ ॥
जग ही दूत कुवेर है, हुक्म जग हि हो जाय ।
जो कोइ पाओ जिधर सी, खुले छिपे हरलाय ॥ ७ ॥

लक्ष्मी का भोग ॥ ४६० ॥

लक्ष्मी को सब पाय कर, करे तीन वरताव ।
मां, तनया, नारी समझि, याको हो प्रस्ताव ॥ १ ॥

सेठ का लक्ष्मी भोग ॥ ४६१ ॥

मा सम पूजत चरण ही, सेठ उन्हीं का नाम ।
अपने प्रति पालन सिवा, भोग बिलास न काम ॥ १ ॥
अटके नहि नहि नष्ट हो, या बिध योजत वाहि ।
साधारण उपकार हो, बृद्धी हो जग माहि ॥ २ ॥

बहु व्ययी का लक्ष्मी भोग ॥ ४६२ ॥

सब से बढ़ कर बहु व्ययी, जगमें है बेकाम।
लक्ष्मी भोगत नारि सम, बहुत होय दुर्नाम ॥ १ ॥
ख़र्च फ़ज़ूली पाप की, दंड यही है आज।
सब कुछ खो खा अन्त को, रोटी का मुहताज ॥ २ ॥
तुलसी* नारी रंक की, अपनी कहत न कोय।
हरि पतनी अपनी कहे, क्यों न फ़ज़ीहत होय ॥ ३ ॥

कृपण का लक्ष्मी भोग ॥ ४६३ ॥

ठेठ कृपण घर लक्ष्मी, रहती कन्या रूप।
दर्शन रक्षा ही करत, अन्य भोग्य तद्रूप ॥ १ ॥

चिरजीवी गण ॥ ४६४ ॥

अश्वत्थामा व्यास बलि, नारद अरु हनुमान।
शकुनी और व्यभीषणहु, अमर सात हैं जान ॥ १ ॥
पहिले भी जीवित रहे, रहें जीवित सब काल।
सकल देस अरु काल में, इनका एक हि हाल ॥ २ ॥
प्रति हिंसा जाही प्रबल, अश्वत्थामा सोय।
सदा निंद्य वह पुरुष है, तेल कीट अव होय ॥ ३ ॥
वक्ता जो इतिहास के, गादी व्यास हि ताहि।
नौ उठान के उद्यमी, बली कहत है वाहि ॥ ४ ॥

बात इधर की उधर करि, फल दिखलावत कर्म ।
चुगली चाई जो करे, नारद का है धर्म ॥ ५ ॥
भोले सादे अति बली, रहत सदा विदमान ।
भक्त दयाल कृपालहूं, कहत उन्हें हनुमान । ६ ॥
धनवानो के संग में, रहत मुसाहब यार ।
खोंटी राह बताय कर, लें शकुनी अवतार ॥ ७ ॥
करि बिराज घर घरन में, काढ़त शकुन काज ।
भक्त व्यभीषण जो न हो, मिले न काहु राज ।
चिर जीविन के करत है, यही चरित्र बखान ।
कर्मन को फल होत है, इन सातों से जान ॥ ८ ॥
कहत इन्हें भगवान मन, साधत जग को काम ।
लुक छिप जैसे कर्म हो, फल दिलवावत याम ॥ १० ॥

कामदेव ॥ ४६५ ॥

सतयुग में पूंजी न थी, रही स्वभाविक राय ।
उद्यम में दिन बीतता, ख्याल बुरे नहि आय ॥ १ ॥
नारिन को शृंगार हूं, चलन भयो है ताय ।
रूपधारी थ्यो काम हूं, गाय बैल के न्याय ॥ २ ॥
रह्यो मन हि नहि पाप केहि, करत न कोउ बिचार ।
सब स्वाभाविक रीत थी, नहीं पाप संचार ॥ ३ ॥
पिता रहत मरते नहीं, अकसर काहू पूत ।
पाप बिना रहे ठीक सब, स्वाभाबिक जग भूत ॥ ४ ॥

जीवन रचा यत्न में, सोचन नहि सवकास।
गर्भा धान हि के लिये, नारिन बहु आयास ॥ ५ ॥
रजगुण को जब ज्ञान हो, पूंजी हो जग माय।
तमगुण भोलानाथ तब, काम हि दियो जराय ॥ ६ ॥
पूंजी पा उद्यम गयो, आलस हो वर्ताव।
बैठे बैठे सोच कर, मन हो पाप लगाव ॥ ७ ॥
तब से काम मनोज हो मन हो होय खियाल।
नारिन को शृंगार हूं, लोक दिखावन हाल ॥ ८ ॥
मन हो मन सब सोच कर, काम लेत उपजाय।
उपचार हि जो सब रह्यो, सब हो गयो बिलाय ॥ ९ ॥
बिना प्रयोजन हूं जगत, जनन क्रिया वरताय।
अस्वाभाविक काम ते, जीवन जात हराय ॥ १० ॥
पिता रहत विदमान हो, पूत हरावत प्रानं।
तमगुण के परभाव से, लीला यह सब जान ॥ ११ ॥
काम सोचना मन हि में, जितनो हो अधिकाय।
तितनो धातू नष्ट हो, प्रान शरीर हि जाय ॥ १२ ॥
पतनी से बहुगुण अधिक, वेश्या सोचन काम।
कहत परकिया अत्यधिक, चिन्ता नरक हि नाम ॥ १३ ॥
क्या महिमा भगवान की, व्यभिचारिन हो पाप।
जान सुनहि कर करत है, नष्ट सभी वह आप ॥ १४ ॥

———

समाप्त।

दसवां अध्याय ।

दैवी नियम ।

कार्य्य कारन ॥ ४६६ ॥

जो कुछ हम सब देखते, उसको कहते काज ।
देखत कोइ जिसको नहीं, काज कहत नहि आज ॥ १ ॥
कहत भाप अरु वायु हूं, देखन नहि कोइ पान ।
तौ भी निश्चय देखना, सब लेते हैं मान ॥ २ ॥
कारन बिन कोइ काज को, देखत नहि हमलोग ।
याते कारन जगत को, खोजन को हो रोग ॥ ३ ॥
जग कारन ईश्वर कहे, ईश्वर हो नहि काज ।
क्यों कि उसको देखने, नहि पाते हम आज ॥ ४ ॥
या विध कारन अन्त हो, ईश्वरता हो सिद्ध ।
व्यापकता जग में रही, बीज-अंकुर के बिद्ध ॥ ५ ॥
गोलाकारी वस्तु को, नहीं आद नहि अन्त ।
अथवा जहां हि आद हो, वही होयगो अन्त ॥ ६ ॥
एक वस्तु को शक्ति को, कहते हैं सब प्रान ।
जगत शक्ति को बूझते, ईश्वरता परमान ॥ ७ ॥

युक्ति कारन ॥ ४६७ ॥

प्रीत भक्ति अरु ज्ञान से, अनुभव हो जगदीश।
है नीयम नहि तर्क से, सिद्ध होय जो ईश ॥ १ ॥
क्यों कि बुद्धी शक्ति से, बाहर उसका ज्ञान।
हीरे में कैसे घुसे, सूइ पुलादहि शान ॥ २ ॥
क्षुद्रबुद्धि नहि जानती, कारन हो चढ़ बस्तु।
इह कहत गुण रूप को, कारन तक ही सुस्त ॥ ३ ॥
एक हु जीना उठन को, शक्ति अरु बल नाह।
कोठे चढ़न हि के लिये, कल मूढ़न को चाह ॥ ४ ॥
शक्ती मानव बुद्धि की, युक्ती तक हट जाय।
वासे जांचहि देख लो, लाभ किधर को पाय ॥ ५ ॥
उभय पक्ष नहि पावते, हस्त नेस्त परमान।
लौकिक युक्ती लाभ की, मानहु सिद्ध प्रमान ॥ ६ ॥
कहत नास्तिक है नहीं, अस्तित्वहि परमान।
आस्तिक चाहत है तभी, अनस्तित्वहू जान ॥ ७ ॥
मान लिया यह बात भी, नहि काहू परमान।
लाभ हि युक्ती जिधर हो, सिद्ध उसीको जान ॥ ८ ॥
सिद्ध हि नास्तिक है बिपद, नहि असिद्ध कुछ लाभ।
आस्तिक हान असिद्ध नहि, सिद्ध हि पूरो लाभ ॥ ९ ॥
नास्तिक पक्ष अलाभ को, गहे कौन अज्ञान।
द्विविधा हू जाको रहे, आस्तिकता हि प्रमान ॥ १० ॥

परिबर्तनीय नियम ॥ ४६८ ॥

रजसत तम की चक्र है, गुण बिरुद्ध ही दांत।
कालं घुरावत है सदा, वृद्धिमुख ही भांत ॥ १ ॥
रज गुण जोड़न मिलन है, सत गुण बढ़नहि काम।
तोड़ घटन बिछुड़न कहें, तम गुण वाको नाम ॥ २ ॥
गुण बिरुद्ध बहु भांत है, मूल हि में सब एक।
रुख ही कहो जो एक को, अन्य हि पुश्त विशेक ॥ ३ ॥
जग में जितनी बस्तु है, सब मे हैं गुण दोय।
उलटे पुलटे गुण कहें, कहत बिरुद्ध हि सोय ॥ ४ ॥
जैसे दुख सुख कहत हैं, नीच ऊंच भी जान।
खुशबू बदबू कहत है, रूखा चिकना मान ॥ ५ ॥
सब बस्तु ही दो कहें, उलटे पुलटे जान।
और कहा तक कह सके, पुरुष प्रकृति इयमान ॥ ६ ॥
प्रति चण बदलत हाल है, सारे जगत हि जान।
तोड़ जोड़ बढ़ घट करन, बिछुड़न मिलन हि मान ॥ ७ ॥
गुण सब होत बिरुद्ध ही, प्रति चण बदलत भाव।
थोडे दिन में देखने, भाव बदल सब पाव। ८ ॥
अभि जंगल जहां देखते, बरस हज़ार हि बाद।
बस्तीऽहां बसि जात है, जंगल ग्रहराबाद ॥ ९ ॥
कभो समुद्र हि देखते, कभि हो जात पहाड़।
कभि बढ़त बह देस है, कभि हो जात उजाड़ ॥ १० ॥
कभी जीव जड़ ही रहत, कभी होत जांदार।
कभी प्रलय होता सभी' धरती नापैदार ॥ ११ ॥

कभी देह भू-रस रहा, कभी अन्न बनिजाय।
रुधिर बीज हो कर कभी, पिंड हि नाम धराय ॥ १२ ॥
कैरी रही कसैल ही, फिर खट्टी हो जात।
पकि आम हि मीठो भयो, सड़ि खट्टो बन जात ॥ १३ ॥
देखत जाहि दरिद्र हैं, एक दिन होत अमीर।
घटत घटत घट जात है, देखो अन्त फकीर ॥ १४ ॥
चण में जोई बात थी, तत्छन ही बदलाय।
काल गये बूझत सभी, जग बहु रूपा काय ॥ १५ ॥
प्रति चण बदलत वस्तु जो, चण भंगुर कहे ताय।
नाश कभी नहि होत है, रूप हि बदलत जाय ॥ १६ ॥
लाभ सुख-अरु दुख हानिको, चक्र फिरत जग माहि।
इसी नियम को चक्र है, ज्ञाता बूझत ताहि ॥ १७ ॥
पौबारह जग देखिये, लीजे हाथ समेट।
क्यों कि निश्चय होयगी, कबे बारह भेट ॥ १८ ॥
सरसा सागर सघन बन, हरियर यह संसार।
एक बार फल फूल की, को न भयो पतझार ॥ १९ ॥

जीवात्मा ॥ ४६९ ॥

को हम जब ही प्रश्न हो, तब उत्तर है कौन।
देह नहीं हम है तभी, जीव देह पर जौन ॥ १ ॥
जीव स्वतंत्र हि सब कहे, तर्क करहि कोइ एक।
यापर संशय क्यों करें, हो विरुद्ध प्रत्येक ॥ २ ॥

देह हु की तहां जीव है, जीवहु की है प्रान।
बेदान्त हि निर्णय करे, जो है शास्त्र निदान ॥ ३ ॥
संस्कार उस जनम की, आवत अब ही काम।
पूंजी पूर्व हि की न हो, कठिन साध्य अंजाम ॥ ४ ॥
पूर्व जनम को ज्ञान हो, इह जन्म हि दे काज।
जन्मत ही बुध ऊपजे, बिन सीखे पटु आज ॥ ५ ॥
बीज-अंकुर सम ब्रह्म जग, जढ़ अरु शक्ती मान।
जढ़-अरुशक्तिमिलि जीव हो, योनि योनि भ्रम मान ॥ ६ ॥
प्रथम जीव जा लेत है, जढ़ काया में रूप।
पत्थर पानी वायु हो, भ्रमतत योनि स्वरूप ॥ ७ ॥
जढ़ से अस्थावर भयो, फिर ऊष्मज हो होय।
उष्मज से अन्डज भयो, फिर पिन्डज हो जोय ॥ ८ ॥
पिन्डज से क्रम क्रम उठत, अन्त हि मानुष होय।
मानुष उत्तम कर्म करि, देव योनि तब जोय ॥ ९ ॥
जीव मनुष जब तक न हो, उन्नत होता जाय।
ज्ञान पाय स्वाधीन हो, उन्नति अवनति पाय ॥ १० ॥
ज्ञान अरु साधन योग से, उन्नति जीव हि पाय।
साधन ज्ञान अभाव से, अवनत हू हो जाय ॥ ११ ॥
पशु से मानुष होय जो, वह भी पशु हि विशेष।
मनुष से पशु जो होय सो, पशु से होय विशेष ॥ १२ ॥
महा पुरुष जो होत हैं, देव मनुष वा होय।
अति उद्यम अरु ज्ञान से, जीव भ्रमन तब खोय ॥ १३ ॥
मुक्ती वाको कहत हैं, कहत और निर्वान।
जन्म मरन छुटि जात है, मिल हि जात निज खान ॥ १४

जल से हलका वायु ही, वायु से हलका भाफ ।
भाफहु से हलका अणू, अणु से जीवहि साफ ॥ १५ ॥
पत्थर से हु वनस्पती, वनस्पती से कीट ।
कीटहु से पशु पशुन से, मनुष ज्ञान में नीट ॥ १६ ॥
क्रम क्रम से बढ़ ज्ञान है, दैवी नहि है काहि ।
जड़ की जैसी ज्ञान हो, वही मनुष के माहि ॥ १७ ॥
साधन योग-अरु ज्ञान से, साफ़ ही उन्नति पाय ।
जहां से आया जीव फिर, उसही में मिल जाय ॥ १८ ॥
जड़ चेतन के मेल से, सृष्ट भयी जिय जान ।
क्रम क्रम जड़ता जानते, चेतन ही निर्वान ॥ १९ ॥

सृष्टि स्थिति प्रलय ॥ ४७० ॥

शक्ती उद्यम अलसता, रज सत तम गुन तीन ।
ब्रह्मा विष्णु महेश है, धिष्ठाता कह दीन ॥ १ ॥
वस्तुन गुण शक्ती कहें, अरु सुभाव भी नाम ।
रज गुण याही कहत है, देव ब्रह्म का काम ।
सृष्टी याही ते हुई, शक्ति गुण हि के द्वार ।
जड़ वस्तू अरु योनि सब, सृष्टि करी कर्तार ॥ ३ ॥
उद्यम ही सत गुण कहत, देव विष्णू की जान ।
पोषण वृद्धी करत यहि, वृद्धि नियम पहचान ॥ ४ ॥
सद्गुण के हि प्रताप से, दुर्बल सबलहु होय ।
उद्यम अरु अभ्यास ही, देव शक्ति दे सोय ॥ ५ ॥

सबल निबल को दाब करि, पोषत अपना प्रान ।
उद्यम अरु अभ्यास से, होता है बलवान ॥ ६ ॥
सबलि के दृष्टान्त से, दुर्बल करि अभ्यास ।
दुर्बलता के जाल से, छूटन करत प्रयास ॥ ७ ॥
साम्य नियम इसको कहे, प्रलय हि आवत पास ।
सब जब सम ही होयगे, मरें भूख ही नास ॥ ८ ॥
उन्नत हो आदत बिगड़, सभी बात बढ़िजात ।
अवनत हो जब नहि जुमें, रस बिन पावत घात ॥ ९ ॥
तम गुण आलस ही कहे, देवहि भोला नाथ ।
साम्य नियम को भंग करि, इन्द्र गर्व करे हाथ ॥ १० ॥
राजा बलिको इन्द्र करें, शुक्र नेत्र करे भूर ।
सबलीको दुर्बल करें, दुर्बलको करे सूर ॥ ११ ॥
जगके क्रमको ठीक करि, दुर्बल सबल बनाय ।
सदा चक्र योंही चले, ऐस हि नियम चलाय ॥ १२ ॥

वर्द्धमान नियम ॥ ४७१ ॥

एक नियम में जगत का, चलता है सब काम ।
गुप्त मंत्र कहि देत है, वृद्धि उसी का नाम ॥ १ ॥
जग में हालत सब हि की, जिन का जैसा हाल ।
अपनी हालत में बढ़ंत, यही चाल है काल ॥ २ ॥
ज्ञानी अपने को सदा, बढ़ती रखते जाय ।
घटती आते ही तुरत, घटती ही बढ़ जाय ॥ ३ ॥

बुद्धिमान करते नहीं, कब ही घट कोइ काम ।
घटती की छोटी न कह, बढ़त बढ़त बढ़ नाम ॥ ४ ॥
धेली रुपय भि ऋण कभी, लेना उचित न जान ।
एक घड़ी ऋणि जो रहो, जनम नही छुटकान ॥ ५ ॥
ऋण कबहू नहि लीजिये, बेचहु आधे दाम ।
मूरख ऋण ही लेत है, बेचन ले नहि नाम । ६ ॥
आमद से जो ख़र्च हो, अधिक एक हू दाम ।
ख़र्च हि ऐसो बढ़हिगो, लाभ रहे नहि नाम ॥ ७ ॥
इसी नियम से होत है, चौड़ी ख़र्च सु राह ।
रोग लगे झगड़ा बढ़े, अनहोनी बहु राह ॥ ८ ॥
एक दामहु बचि रहे, ख़र्चे ख़ुर्चे बाद ।
चार तरफ़ आमद बढ़े, हर जानिब अहलाद ॥ ९ ॥
एक बार सोची जभी, खोटे काम की याद ।
चाल हु खोटी नित बढ़े, होउ तुरत बरबाद ॥ १० ॥
भले काम जो एक भी, बनि आवे संयोग ।
भली चाल बढ़ जायगी, वृद्धि नियम यह योग ॥ ११ ॥

साम्य नियम ॥ ४७२ ॥

सुख दुख आपुस में दोऊ, कहते हैं सम भोग ।
जितनो सुख को भोग हो, उतनहि दुख अरु सोग ॥ १ ॥
जग में जितने मनुष है, सुख दुख सब हि समान ।
अपने को दुखिया कहें, पर को सुखिया मान ॥ २ ॥

सुख दुख एक हि बस्तु है, सुख मुख दुख है पीठ।
सुख चमकै दुख आंधरी, पर सुख आवत दीठ।
अपने अपने कर्म फल, भोगत मन में मान।
एक मनुष जेहि सुख कहे, पर की वह दुख जान ॥ ४ ॥
ज्ञानी तप अभ्यास सें, दुख, सुख लेय बनाय।
सुख तौ सुख बन ही रहा, सदा सुखी कहलाय ॥ ५ ॥
या विध भोगी पुरुष हूं, सुख भोगत थक जाय।
सुख तब सुख फल लाभ नहि, दुःख पड़त मर जाय ॥ ६ ॥
सावत समता सतगुण हि, तम सें तर तम होय।
ज्ञान बिना सब आंधरो, लखत इधर नहि कोय ॥ ७ ॥
कर्म चक्र के भाग द्वय, सुख अरु दुख को जान।
दोनों एक हि बस्तु है, दोनों भोग समान ॥ ८ ॥
ज्ञान लाभ हो पुरुष को, सुख दुख सम हो जाय।
सुख दुख दोय समान हो, समता फिर वहि आय ॥ ९ ॥
तम सें ज्ञान न होत है, समता होन न पाय।
लौकिक हू समता न हो, तम ही दे बिगराय ॥ १० ॥
स्वारथ बस ही जो पुरुष, लाभ अधिक हो चाह।
चाहत ज्यौं साधन करत, नीयम रोकत राह ॥ ११ ॥
पलड़ा दाब्यो जो पुरुष, छल बल स्वारथ नीच।
साम्य नियम झट जाय के, समता साधत खींच ॥ १२ ॥
बे हक लाभ हि के लिये, जब ही हो उद्योग।
साम्य नियम चक्की चलत, देखत ज्ञानी लोग ॥ १३ ॥
साम्य नियम साधन लिये, समय समय औतार।
बिधी नियम यह प्रबल है, यहि मोया कर्तार ॥ १४ ॥

जग में सब को सम कहे, इक सुख दुख को भोग।
कर्म फल हि व्यत्यय करे, ध्यान भोग सुख सोग ॥ १५ ॥
छल बल से ऊंचो करे, निज लाभन को भाग।
अपर भाग उस लाभ को, मिलत दुःख संग लाग ॥ १६ ॥
साम्य नियम पर ध्यान दे, जो कोइ करे विचार।
जग माया से छूटि कर, भव सागर हो पार ॥ १७ ॥

दैवी शक्ति ॥ ४७३ ॥

आग हि में गुण दहन को, जल में शीतल जान।
मिट्टी मे हल लगन को, अंकुर बीज प्रमान ॥ १ ॥
या विध हरियक वस्तु को, और हरिक जो काम।
नियम बंधे गुण सबन के, दैवि शक्ति तेहि नाम ॥ २ ॥
जो कुछ जग में होत है, दैवि शक्ति के हार।
मानुष कुछ नहि कर सकत, एक कर पद संचार ॥ ३ ॥
कर पद के संचार को, उद्यम कहते लोग।
दैव नियम से हो फलत, कहत भाग्य को भोग ॥ ४ ॥
दैव नियम को जान कर, करले जो अनु कूल।
उद्यम कारी बुद्धि से, करले हलका फूल ॥ ५ ॥
ऐसी जो करनी करे, भाग्यवन्त तेहि नाम।
कर पद संचारन बिना, भाग्य न जाने राम ॥ ६ ॥

जीव सृष्टि क्रम ॥ ४७४ ॥

निराकार एक ब्रह्म ही, ही वह तत्त्व स्वरूप।
एक नियम करि होत है, फिर वह जल को रूप ॥ १ ॥
जल में मच्छ हि रूप हो, करता सकल विहार।
अणु मिल जल हू कीच हो, लेता कच्छ-औतार ॥ २ ॥
जल सूख हि मिट्टी जमी उद्भिद जन्म्यो सार।
सृष्टी आदि अहार हो, वराहादि औतार ॥ ३ ॥
पशु सृष्टी हो फल भयो, नरसिंह जी को रूप।
बन मानुष आदी भये, बामन मानुष रूप ॥ ४ ॥
तेहि पाछे सब सिल्सिला, परशुराम औतार।
ठीक हि मानुष होय कर, चल्यो जगत को कार ॥ ५ ॥
सभ्य समय तब ही गयो, भयो राम औतार।
तेहि पाछे जग सभ्य हो पाप बिलास हि सार ॥ ६ ॥
पूर्ण रूप तब कृष्ण हो, हो पूरो औतार।
राजनीत अरु धर्म को, कियो अन्त विस्तार ॥ ७ ॥
तेहि पाछे कलियुग भयो, लेहि बुद्ध औतार।
नीत धर्म चय होय कर, कियो तप हि विस्तार ॥ ८ ॥
जड़ज्ञानहि दिन दिन बढ़त, तंचक बढ़त हि साथ।
वाको उपचार हि भये, समता हो जग हाथ ॥ ९ ॥
बली को बल तब नहि चले, बुद्धिमान नहि बुद्धि।
दुर्बल दाब न तृप्त हो, सबही सम हो शुद्धि ॥ १० ॥
तब कल्की औतार हो, तंचकि हो सब नाश।
शान्ति हि नाशक हो प्रलय, नया काल फिर आश ॥ ११ ॥

काल चक्र या बिध चलत, चारी युग की काल।
सदा सृष्ट यहि भांति ही, यही प्रलय का हाल ॥ १२ ॥

जन्मान्तर ॥ ४७५ ॥

जौन वस्तु जामें न हो, वाते निकसत नाय।
बामें जब निश्चै रह्यो, तब ही निकसन पाय ॥ १ ॥
मात पिता के देह में, सूक्ष्म रूप संतान।
वर्तमान रह कर यहां, जनम लियो है आन ॥ २ ॥
पूर्व पुरुष को जानिये, पूर्व जनम की देह।
अब जो आगे होयगो, पिछला जनम सनेह ॥ ३ ॥
अगलों के कृत कर्म फल, भुगत रहे हम लोग।
हम लोगों के कर्म फल, भुगतेंगे वह लोग ॥ ४ ॥
वंश सुधारन भार, कितना है हम लोग पर।
साधू करो बिचार, क्या करना अब उचित है ॥ ५ ॥
घरवालों की भक्ति को, चाहत हैं जो लोग।
भक्ती करि भोगन पड़े, उनके कर्म हि भोग ॥ ६ ॥
ज्ञान स्वास्थ अरु कार्य्यबल, जिस हालत मे होय।
गुण उसका कछु पुश्तही, बना रहत ज्यों सोय ॥ ७ ॥

जन्म मरण ॥ ४७६ ॥

परमाणू बहु रूपिया, भेष बदल दिखलात।
तमअबीन भूलत सदा, जन्म मरन कहि जात ॥ १ ॥

"रूप बदल" ही जन्म हो, और होय वह मोत।
नित ही बूझी जन्म तब, नित ही बूझी फौत ॥ २ ॥
बचपन माके गोद मे, खेले थे सो आज।
मर कर दूजे हो गये, बूढ़ हूं हो वहि काज ॥ ३ ॥
बूझन ही को काज नहि, सच मरता वह देह।
मूत मलहि प्रस्वेद से, भोजन से नव देह ॥ ४ ॥
प्रति दिन मलसे जात है, पूर्व अंग की भाग।
भोजन से नित चढ़त है, नये देह को लाग ॥ ५ ॥
मूरख केवल मरन दिन, रोते छाती कूट।
जनमत फूले हर्ष से, ज्ञानी सुख दुख कूट ॥ ६ ॥
सुख दुख में मूरख हि के, स्वारथ का है हेत।
ज्ञानी को स्वारथ नही, सब हि त्याग करि देत ॥ ७ ॥
जन्म मरण भय जाहि नहि, वहि ज्ञानी जग माह।
सदानन्द तेहि जानिये, सदानन्द ही राह ॥ ८ ॥

योग बल ॥ ४७७ ॥

मनुष देह मे शक्ति एक, साधत प्रबल हि होय।
तप साधन एकाग्रता, योग बलहि है सोय ॥ १ ॥
योग बल हि जब सिद्ध हो, शक्ती होय अपार।
जिन विषयों मे योग दो, उसका वार न पार ॥ २ ॥
योग बल हि सम बल नही, करता सब उद्धार।
लौकिक नीयम से जुदा, शकती हो व्योहार ॥ ३ ॥

मनो वृत्ती ॥ ४७८ ॥

मन की वृत्ती एक है, हो जाती बहुतेक।
ज्ञान-अरु कार्य्य प्रसार ते, नाम बहुत संकेत ॥ १ ॥
नीच ऊंच दो भेद है, मोटे मोटे जान।
सूक्ष्म करी जब ही इसे, संख्या नहि परिमान ॥ २ ॥
सब वृत्ती सब मे रहे, मुर्दा कोइ जान्दार।
साधन से सब जीवती, आलस से मुर्दार ॥ ३ ॥
वृत्तिन वास स्थान कहि, मानव मस्तक माइ।
जीवित वृत्ती जाहि हो, मस्तक बड़ी हि ताइ ॥ ४ ॥
मृत वृत्तिन हो जेहि पुरुष, बंदर सम सिर ताहि।
चंचल ताहि सुभाव हो, वृत्ती मुर्दा जाहि ॥ ५ ॥
जीवहि में जढ़ भाग जो, वृत्तिन वही अकार।
आत्मा वरण हि है वही, वृत्ति त जन छुटकार ॥ ६ ॥
काया जब तक है बनी, वृत्ति हु तहम समान।
तत्त्व ज्ञान को लाभ हो, त्याग वृत्ति की जान ॥ ७ ॥

मूल चार कारण ॥ ४७९ ॥

काल सुभाव रु कर्म हूं, उद्यम कारण चार।
इतने पर फल हो न हो, तर तम भाग्य अधार ॥ १ ॥

काल कारण ॥ ४८० ॥

सब काजन मे काल है, बिना काल नहि काज।
काज समय को ज्ञान जेहि, वहि ज्ञानी है आज ॥ १ ॥
दस महिने में प्रसव हो, पांच बरस फले आम।
काल ज्ञान हि है यहि, बहुदरशी का काम ॥ २ ॥
कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फले, कितनहु सीचो नीर ॥ ३ ॥

स्वाभाव कारण ॥ ४८१ ॥

दैव नियम जो कर दियो, शक्ति दियो जो जाहि।
ताहि सुभाव हि कहत हैं, कबहु व्यतिक्रम नाहि ॥ १ ॥
बिन अनुकूल सुभाव के, कर्म फले नहि कोय।
बालू छींटो बीज जब, अंकुर पात न होय ॥ २ ॥

उद्यम कारण ॥ ४८२ ॥

बात ठान उस तार मे, करना जो उद्योग।
उसही को सब कहत हैं, उद्यम पंडित लोग ॥ १ ॥
बिन उद्यम कोइ कर्म हू, होता कब हू नाह।
काल सुभाव अरु भाग्य हूं, समरथ काज हि नाह ॥ २ ॥

कर्म और भाग्य ॥ ४८३ ॥

उद्यम करि जो कुछ करे, कर्म वही है काम ।
भले बुरे जो कर्म फल, भाग्य इसी का नाम ॥ १ ॥
उद्यम से जो कर्म हो, काल स्वभाव अनुकूल ।
होनेपर फल होत है, अनुकूल-अरु प्रतिकूल ॥ २ ॥
उद्यम के फल होत हैं, सुफल कुफल यह दोय ।
जहां न उद्यम होत है, वहां न फल कोई होय ॥ ३ ॥
उद्यम द्वारा ज्ञात हो, भाग्य फल हि को फेर ।
नहीं शक्ति है काहू की, उद्यम लावत पेर ॥ ४ ॥

आकाश वाणी ॥ ४८४ ॥

महा पुरुष के वाक्य से, अथवा पुस्तक पाठ ।
उपदेश हि जब सुनत है, मन में हो नहि गांठ ॥ १ ॥
सुनी बात विश्वास नहि, पर इतना ही ज्ञान ।
बात विचारन के लिनय, प्रश्न उपस्थित मान ॥ २ ॥
मन ही मन सोचत यही, करत हि प्रश्न विचार ।
सोचत सोचत हो उदय, अपने ज्ञान मझार ॥ ३ ॥
या विध निर्णय प्रश्न को, खुल्यो जो बुद्धि मझार ।
निज ज्ञान हि की बात वह, ज्यों दीन्हीं कर्तार ॥ ४ ॥
इलहाम उसको कहत हैं, अथवा प्रत्यादेश ।
अकास वाणि हू कहत हैं, हो विस्वास विशेष ॥ ५ ॥

जो ज्ञान हि मन में बसे, उसका ही विश्वास।
लक्षण है विश्वास का, काम हि होत प्रकास ॥ ६ ॥
विश्वास नहि जिस ज्ञानको, है वह सूखा ज्ञान।
स्वारथ भय पाकर तभी, उलटा हू करै जान ॥ ७ ॥
एक बार हूं आग मे, जल्यी नही जेहि गाय।
दहन शक्ति को आग की, विश्वस किया न जाय ॥ ८ ॥
आग जल हि विश्वास हो, तब ही ठीक हि काम।
कोट यतन कोऊ करो, छूअन ले नहि नाम ॥ ९ ॥
शिक्षा से जो ज्ञान हो, संस्कार तिहि नाम।
पर पुरुषारथ से हुआ, विश्वस रहता खाम ॥ १० ॥
होय उदय निज ज्ञान में, अकसवाणि के द्वार।
तत्त्व ज्ञान ताको कहें, हो विश्वास अपार ॥ ११ ॥

कर्म बन्धन और मोक्ष ॥ ४८५ ॥

पूर्व कर्म जो कुछ कियो, कर्म बंधत है ताहि।
कर्म ग्रन्थि को खोलनी, समरथ है कोउ नाहि ॥ १ ॥
पूर्व दोष जो ज्ञात हो, चुन्न करत तेहि ग्लान।
ताते वह अज्ञात हैं, फल पर लीजे मान ॥ २ ॥
आप कियो जो कर्म है, फल उस को जो होय।
भाग्य फल हि ताको कहें, और अदृष्ट हु सोय ॥ ३ ॥
बिधना के ही नियम से, फल फलता है आज।
ईश्वर इच्छा कहत हैं, सब याही के काज ॥ ४ ॥

विधना ही के नियम से, कर्मन कटन उपाय ।
विधना हूं के हाथ नहि, अपन हि हाथ बताय ॥ ५ ॥
सब से अपने दोष को, कहि कहि माफ़ कराव ।
अनुतापन अरु तप कह्यो, पुस्तक धर्म हि गाव ॥ ६ ॥
दान कह्यो अरु दम कह्यो, पाप हि कटन उपाय ।
भावी कर्मन की अहुत, जांच जांच वरताय ॥ ७ ॥
जब बोली या कुछ करो, जांचो सारी बात ।
पर पीड़न जाते न हो, न हो प्रीत की घात ॥ ८ ॥
अथवा पूजा इष्ट की, और जपन हरि नाम ।
बिना पाप के कर्म से, दिन रात हि रख काम । ९ ॥
यह नीयम ही पाल कर, जो चलता जग माहि ।
पाप कर्म ही त्यागना, कर्म बंधन नहि राह ॥ १० ॥
पतन हि जाते होत है, पाप कहत है ताहि ।
सम्मत वेद समाज हो, और विवेक हु राह ॥ ११ ॥
अपतन जाते होत है, अरु गिरने नहि देय ।
सम्मत वेद समाज हो, धर्म हि ताहि कहेय ॥ १२ ॥
और धर्म वह काम है, जाते हो जग काम ।
जग अनिष्ट नहि होय कर, निज हूं हो आराम ॥ १३ ॥
मिलत पुण्य से स्वर्ग ही, पर मुक्ती नहि होय ।
तत्व ज्ञान सो मुक्ति हो, यही कहत सब कोय ॥ १४ ॥
सूरज बिम्ब हि पड़त है, ज्यों घट जल के माय ।
त्यों अंश हि जगदीश को, जगत हि कहते ताय ॥ १५ ॥
नहीं सत्य मिथ्या नहीं, फल प्रकाश बतलाय ।
मूढ़ कहत हम ब्रह्म है, माया लखी न जाय ॥ १६ ॥

जीवात्मा यहि बिम्ब है, माया में लपटान।
कहत प्रवृत्ती ताहि की, माया जाहि बखान ॥ १७ ॥
माया जब तक घेर है, हम तुम वह तब जान।
होंत प्रवृत्ती लोप ही, वाहि मुक्ति पहचान ॥ १८ ॥
तब हि जीव अरु ब्रह्म हूं, अरु जग एक हि जान।
यही ज्ञान से साधु जन, देह मुक्ति फल पान ॥ १९ ॥

धर्म जीवन मृत्यु नियम ॥ ४८६ ॥

भोजन बिन काया नहीं, धर्म बिना नहि प्रान।
सुखी न एक दिन रहत है, यहि नीयम जग जान ॥ १ ॥
डूबत ही को काढ़ते, मन का क्या हो भाव।
खूनी को मन भाव क्या, पाप पुण्य फैलाव ॥ २ ॥
एक पुण्य हू काज करि, यों लघु होत शरीर।
मानों भूमी से उठे, चले स्वर्ग के तीर ॥ ३ ॥
एक पाप ही जो बने, मन तब यों घबराय।
कौन तीर्थ में जाय कर, मन को दें निहलाय ॥ ४ ॥
याहि नियम ते आप से, मज़हब मत बनि जाय।
और समाज हु हो नियम, याही ते सुख पाय ॥ ५ ॥
और देवता घर हि में, असुर जन्म हो जाय।
इच्छा चारी हीन को, मत पाखंड चलाय ॥ ६ ॥
पाव नहीं जो ज्ञान को, ज्ञान सीख बौराय।
शुष्क हृदय तिहि बज्र हो, व्याधा सम हो जाय ॥ ७ ॥

मत हैं दोय प्रकार के, पराधीन स्वाधीन।
पराधीन लौकिक कहैं, ज्ञान कहत स्वाधीन ॥ ८ ॥
हैं अरु होंगे जगत बहु, मायावृत जन जान।
उपमा उनकी कहत हैं, पागल ही सम जान ॥ ९ ॥
पराधीन वह जीव हैं, बहु बन्धन तिहि काज।
लक्षण उनको कहत हैं, वृत्तिन बस वह आज ॥ १०
तप बल उन को ही नहीं, स्वारथ में ढलि जात ॥
बन्धन बहु दरकार तिहि, नहि तो हो उत्पात ॥ ११ ॥
नरक स्वर्ग भय लोभ ही, पुण्य पाप भय होय।
पराधीन जन बहुत हैं, धर्म चलावत सोय ॥ १२ ॥
कर्म काण्ड ही धर्म तिन, बतलायो मुनि जान।
बन्धन चारो ओर दे, पतन न होत निदान ॥ १३ ॥
बन्धन जब ताको खुले, भटकत बे परमान।
स्वार्थ कूप मे जा गिरे, बिन संशय अज्ञान ॥ १४ ॥
नानक और कबीर हूं, फैलायो बहु ज्ञान।
अन्त भयो वह धर्म हूं, हिन्दू भये निदान ॥ १५ ॥
पिण्ड उधर हूं करत है, संगत दण्ड हु देंय।
कर्म काण्ड कुछ भी रह्यो, ताते नामहु लेय ॥ १६ ॥
ज्ञान कबीरी शुद्ध थो, कर्म काण्ड नहि काम।
पूर्ण मृत्यु वाकी भयो, रह्यो न कर्म हि काम ॥ १७ ॥
ब्राह्म हु की देखत वही, घुर फिर हिन्दू होय।
संकर जाती सृष्टि करि, तब फिरते हैं सोय ॥ १८ ॥
भाषा दोय प्रकार जिमि, धर्म हु दोय प्रकार।
कहत संस्कृत प्राकृत हि, कर्म ज्ञान द्वय सार ॥ १९ ॥

तरिकत हकिकत राह दो, हिन्दू अरु इसलाम।
क्षणिक धर्म एकांगि है, इस में नहीं कलाम ॥ २० ॥
ज्ञान मार्ग ही आप ही, जब होता वैराग।
जने पद को वह छोड़ कर, छिप जाते सब त्याग ॥ २१ ॥
गुप्त करत वेदान्त को, गायत्री हूं ज्ञान।
कर्म हि को उपदेश दे, करत जगत कल्यान ॥ २२ ॥
मन पागल जब थिर न हो, जानि मुक्ति कर ज्ञान।
तब धर्म हि को अन्त हो, मरण धर्म यह मान ॥ २३ ॥
पागल इक है कैद में, नष्ट करत जो देश।
शिक्षा जेलहि तेहि उचित, सुक्ती नहीं विशेष ॥ २४ ॥
कैसे देश हितैषि वह, बिन पागल आराम।
छुट्टी उन की चाहते, बुद्धिमान यह काम !!! । २५ ॥
यह पुरुषन के हेत नहि, धर्म समाज-आईन।
यह शासन उनका कहें, जिन को कहते हीन ॥ २६ ॥
महापुरुष दो चार हैं, नीच जन हि जग सार।
धर्म हु को स्वाधीन करि, जग को क्या उपकार ॥ २७ ॥
साधु जनन को कैद करि, चोरन को दे छोड़।
या विध धर्म हि नाश हो, फिरत बाग हो मोड़ ॥ २८ ॥
व्यापार हि स्वाधीन करि, साधुन कियो उजार।
देवलियन को काज करि, धनिन छुड़ायो कार ॥ २९ ॥
बालक लिबरल होत है, स्वर्ग करन जग चाह।
खाली नरक हु होन को, हो जमराज हि दाह ॥ ३० ॥
बूढ़े हो कर देखते, खुल्यो नरक ही राह।
अब पछताए होत क्या, वृथा खीचना आह !!! ॥ ३१ ॥

अपनी चेती होत नहिं, प्रभु चेती ततकाल।
जतन कियो सुरलोक को, बली गयो पाताल॥ ३२॥
ऋषिगण योग प्रताप बल, बहु दरशी बहु काल।
राह उन्ही की अति सरल, चलन महाजन चाल॥ ३३॥

समाप्त।

ग्यारहवां अध्याय।

अर्थकरी विद्याओं का सार।

गणित ज्योतिष ॥ ४८७ ॥

प्रथम हि ते इस देश मे, ज्योतिष गणित प्रधान।
मुनिवर गर्ग कियो बहुरि, ग्रह चालन मतिमान ॥ १ ॥
कहत पराशर वाहि पर, जांचि कियो उद्धार।
पर पर बहु सिद्धान्त हो, ज्योतिष भयो प्रचार ॥ २ ॥
कहतभास्करा चार्य्यही, जिन कीन्हो सिद्धान्त।
ग्रन्थ सूर्य्य सिद्धान्त है, भारत मे चूड़ान्त ॥ ३ ॥
वैज्ञानिक इक रीत है, व्यवहारिक इक रीत।
गणित शास्त्र प्रत्यक्ष में, व्यवहारिक हि प्रतीत ॥ ४ ॥
आर्य्य भट्ट अंगरेज़ि मत, थिर रवि धरती चाल।
पर व्यवहार हि सब कियो, अचल छिती रवि चाल ॥ ५ ॥
अपनी कक्षा मे रवि हु, चल मानत सब कोय।
थिर रवि जो सिद्धांत है, सच कैसे तब होय ॥ ६ ॥
कहत खगोल हि वस्तुकोइ, अचल कबहु मत मान।
व्यवहारिक ही काम को, कहत चला चल जान। ७ ॥

अती निकट वड़ि बस्तु जो, और अती जो दूर ।
चलको हूं अचल हि कहैं, जब हो ज्ञान प्रचूर ॥ ८ ॥
मनुष स्वभाविक ज्ञान से, धरती अचल प्रमान ।
सूर्य्य सचल ही ज्ञात है, गणित हु रहत समान ॥ ९ ॥
श्रुति प्रमाण है याहि को, बाइबिल और कुरान ।
व्यवहारिक हू ज्ञान यहि, वृथा तर्क अभिमान ॥ १० ॥
सूर्य्य चले वा छिति चले, फल दोनों के एक ।
वृथा चलाचल तर्क है, फल पर करहु विवेक ॥ ११ ॥
देव पितृ जग कार्य्य में, देश काल को ज्ञान ।
अति आवश्यक जान के, वर्ष मास तिथि मान ॥ १२ ॥
सूर्य्य गणन से सौरअब्द, चांद्र चन्द्र गणि होय ।
वर्ष मास ऋतु रात दिन, गणना होती दोय ॥ १३ ॥
सावन गणना और इक, घड़ी साठ दिन रात ।
बरस तीन सो साठ दिन, यह है मानीबात ॥ १४ ॥
घंटा चौबिस पर उदय, ठीक रबी नहि चाल ।
शुद्ध घड़ी नित भूल हो, सावन गणना हाल ॥ १५ ॥
सूर्य्य चाल गड़ बड़ बहू, चान्द्र हि कहते थोड़ ।
कर्म काण्ड चान्द्र हि लियो, सौर दियो तब छोड़ ॥ १६ ॥
मेष राशि संक्रान्ति में, वर्ष हि कियो काबर ।
सब सालहि में वह न हो, दिन संक्रांति क़रार ॥ १७ ॥
अन्दाज़ी एक पल करहि, फेर चाल हर साल ।
सूरज गड़ बड़ चलत हैं, मिलत अयन नहि काल ॥ १८ ॥
सूरज विषुवत पर चले, तब सम हो दिन रात ।
विषुव मेष संक्रान्ति हो, और तुला की बात ॥ १९ ॥

दखिनायन हो कर्क से, मकर होय उतरैन।
चौदह सौ बरस हि प्रथम, ठीक रह्यो दिन रैन ॥ २० ॥
अब संक्रान्ती हट गई, पिछुवानी दिन बीस।
ग्यारह अंशा मीन में, कर विषुवा जगदीस ॥ २१ ॥
ध्रुव तारा बीच हि रह्यो, पूरब धस्क्यो थोड़।
संक्रान्ती तब शुद्ध हो, बहुरि जु आवे मोड़ ॥ २२ ॥
बरस सात सौ और हो, हो विषुवा संक्रान्त।
शुद्ध होय दिन रात तब, शुद्ध होय अयनान्त ॥ २३ ॥
तिथि पत्रा में उचित है, कर दे अलग प्रमान।
प्रति दिन के सब ग्रहन को, मेल चाल हो जान ॥ २४ ॥
कर्म काण्ड में वह रहे, शिचा में यह होय।
या बिध नीयम जो बने, कार्य सिद्ध दोउ होय ॥ २५ ॥
शुद्ध गणित है चन्द्र को, फल प्रत्यच दिखाय।
मास अधिक अरु न्यून करि, मिलत सौर से जाय ॥ २६ ॥
ऋषिगण कृत पंचांग में, कभी न कर सन्देह।
जो कोइ भूल दिखाय दे, भूल हि जानो तेहि ॥ २७ ॥
सुधराने को जाय जो, नित हि परे सुधरान।
तौभी कुछ भूल हु रहे, शुद्ध न होय निदान ॥ २८ ॥
ध्रुव हिसाब इक करि दियो, ताते हो निर्वाह।
भूल हु नियमित चलत है, स्वयं होत शुधराह ॥ २९ ॥
दृष्ट प्रमाण हि पर करो, कभी न निश्चय कीय।
ग्रहणादिक दर्शन कहे, बाधा बहुतर होय ॥ ३० ॥
कहते सूर्य्य प्रकाश हो, आवत लगती बेर।
उतने काल हि पर्व को, दृष्टि माहि हो घेर ॥ ३१ ॥

कहत प्रात मध्याह्न ही, सूर्य्य दरस इय मान।
और आप दिठ रोक ही, बड़ी रूप ही भान ॥ ३२ ॥
इक रेषा पर बस्तु तिन, दूर दूर पर होय।
देखत दूजे तीज को, लच एक ही सोय ॥ ३३ ॥
पुनि तीजे से देखते, लच एक ही जाय।
दूजो पहिलो बस्तु ही, बाधा दृष्टि कहाय ॥ ३४ ॥
या बिध बाधा बहुत है, नहि है दृष्टि प्रमान।
इस सन्दिग्ध हि राह में, प्राक्तन पंथ प्रधान ॥ ३५ ॥
चर्म दृष्टि दुरबीन से, योग बल हु नहि जाहि।
शंकायुत सिद्धान्त पर, चलना उचित सुनाहि ॥ ३६ ॥
लौकिक कामो में कहें, ज्योतिष अति दरकार।
देश काल निर्णय जनित, अति जहाज उपकार ॥ ३७ ॥
है जहाज ह्यां काम नहि, तौ भी बहु दरकार।
रात समय कहि जा पड़े, अन्जानी व्यापार ॥ ३८ ॥
मकर चांदनी भ्रम हि से, उठत मुसाफिर रात।
और जानि राही हुवे, होत चोर सी घात ॥ ३९ ॥
ध्रुव का तारा चीन्ह ले, दिग निर्णय हो जाय।
सीधा उत्तर है वही, चारो दिशा बुझाय ॥ ४० ॥
ध्रुव की फेरा देत है, कहु उनके मा बाप।
मात सुनीती कहत है उतानपाद हैं बाप ॥ ४१ ॥
पूरब पच्छिम मान लो, धरती के बिच बीच।
विषुवत रेखा कहत तिहि, रेखा सरल जु खीच ॥ ४२ ॥
धरती और अकाश मिल, देखत जो भूगोल।
भाग तीन सौ साठ है, पृथिवी और खगोल ॥ ४३ ॥

धरती चौड़ी अरु अचल, व्यवहारिक यह रीत।
है हिसाब उन को यही, बूझत नहिं विपरीत॥ ४४॥
धरती चल अरु गोल जो, मानत हैं बिज्ञान।
इय कोट हि भूगोल करि, बूझत बे परमान॥ ४५॥
रेखा बिषुवत भूम से, नब्बे उत्तर जान।
नब्बे दक्षिण ओर को, अरु खगोल लो मान॥ ४६॥
त्यों विषुवत आकाश से, वैस हि इय दिग जान।
या बिध तिन सौ साठ के, डिगरी भेद पछान॥ ४७॥
रेषा पूरब पश्चिमी, अर्चांस हु तेहि नाम।
वैस हि दक्षिनोत्तर हि को, देशान्तर है नाम॥ ४८॥
उत्तर दक्खिन से गिने, देश जगह की जान।
पूरब पच्छिम सूर्य को, गति कालहु पहचान॥ ४९॥
विषुवत रेखा पर खड़े, होय जौं ध्रुव को देख।
लखि भूमी पर दूरि को, नब्बे डिगरी पेख॥ ५०॥
विषुबत रेखा से चल हि, उत्तर को चलि जाव।
जितना उत्तर जावगे, ध्रुव को ऊपर पाव॥ ५१॥
निर्णय देश हि करन को, रीत यही है जान।
ध्रुव को पहिले देख लो, और निज हि अस्थान॥ ५२॥
फिर देखो आकाश को, अरु ध्रुव तल को ठांय।
सोलह आने दूरि तिहि, बूझ लेहु मन माय॥ ५३॥
तब देखो ध्रुव ठीक करि, भाग उच्चता ताहि।
आनों पर तेहि ठीक कर, जोड़हु मन के माहि॥ ५४॥
भाग चौथई ध्रुव चढ़ा, यह निश्चय हो जाय।
विषुबत रेषा से तभी, चौथइ उत्तर आय॥ ५५॥

मक्के की चौथाइ ही,　　साढ़े बाइस जान।
जहां खड़े थे आप ही,　　वही देश पहचान ॥ ५६ ॥
इक इक डिगरी कहत हैं, उत्तर दक्खिन जान।
पैतिस पैतिस कोस करि,　　अन्दाजी व्यवधान ॥ ५७ ॥
एकक डिगरी कहत हैं,　　पूरब पच्छिम जान।
चाल सूर्य की होत है,　　चार मिनिट कर मान ॥ ५८ ॥
डिगरी तिन सौ साठ गुण, जोड़हु करि अति हौस।
प्रति दिन प्रायः चाल रवि, बारहजार हि कोस ॥ ५९ ॥
नक़शा लै भूगोल को,　　बूझ लेहु सब बात।
देशान्तर अचांस को,　　डिगरिन को हु प्रपात ॥ ६० ॥
विषुवत रेखा ज्यों कहे,　　उत्तर दक्खिन भाग।
पूरब पच्छिम त्यों नहीं,　　ठीक भाग हि लाग ॥ ६१ ॥
अचान्स हि डिगरी गणन, अचल अंक है ताहि।
देशान्तर गणनांक को,　　निश्चय है कोउ नाहि ॥ ६२ ॥
भारत में उज्जैन से,　　अरु लंका से होय।
अपनी अपनी जगह से,　　गिनते हैं सब कोय ॥ ६३ ॥
लंका पहले थी जहां,　　गई जगह वह डूब।
दोनों रेखा काट थी,　　वही जगह थी खूब ॥ ६४ ॥
काल ज्ञान की रीत यह, कहते ज्योतिष माहि।
सूर्य्य उदय से काल की, जानन की यह राह ॥ ६५ ॥
सरल सलाई एक ही,　　तीन-अंगुल लम्बान।
राख शुद्ध करि धूप में,　　कर छाया सन्धान ॥ ६६ ॥
छाया अंगुल नाप करि,　　योग तीन कर ताहि।
चौंसठ से करि भाग तेहि, इष्ट घटी फल वाहि ॥ ६७ ॥

मध्यान्ह हि के पूर्व में, उदय घड़ी फल होय ।
परमें फल हो अस्त को, सूरज बाकी जोय ॥ ६८ ॥
समय ज्ञान जो रात को, कहते एक उपाय ।
मात पिता ध्रुव चालसे, ले लेना ठहराय ॥ ६९ ॥
उतानपाद सूनीति को, चौबिस घंटा देर ।
ध्रुव के चारो ओर ही, करना पड़ता फेर ॥ ७० ॥
ज्यों घड़ि में कांटा फिरत, तैस हि डायल चाल ।
शाम होत तेंहि देख कर, बूझ रात को काल ॥ ७१ ॥
एक हि रेखा पर कभी, सब गृह जब आ जाय ।
युग बदलत तब काल ही, चारो युग कहलाय ॥ ७२ ॥
सतयुग त्रेता द्वापर हु, अरु कलियुग को काल ।
ज्योतिष से गणि होत है, गृह गण जब यह हाल ॥ ७३ ॥
लड़कन को देना उचित, शिक्षा प्रथम हि अंक ।
गुणाकार अरु ठीक ही, दो शिक्षा निःशंक ॥ ७४ ॥
भाग और बाकी नहीं, लड़कन को सिखलाव ।
गुणन योग के ज़ोर से, स्वयं करत बरताव ॥ ७५ ॥
अंक कसन की रीत हूं, मत कबही सिखलाव ।
सत्य काज लगि जानते, आप हि हो उपजाव ॥ ७६ ॥
पर श्रम फल पर ज्ञान सुनि, ले विद्या जो सीख ।
निज उपार्जित ज्ञान सम, फल कब हूं नहि दीख ॥ ७७ ॥
अंक रीत को सीख कर, एक देशी हो जाय ।
अंक रीत सृज्जन क्रिया, खोय मूढ़ बन जाय ॥ ७८ ॥
जाको घर नहि काम हो, गृह गति लक्ष सिखाव ।
यह शिक्षा हो खेल सी, हो मन अति बहलाव ॥ ७९ ॥

सत्ताइस नक्षत्र को, बारह राशी जान।
और नव गृह जान कर, रूप ताहि पहचान॥ ८०॥
साठ घड़ी में भोग नित, बारह राशी जान।
लग्न भेद क्रम वेश से, भेद रात दिन मान॥ ८१॥
जोइ राशि जब उदय हो, सप्तम में हो शाम।
बड़े छोट दिन रात में, साठ हि घड़ी तमाम॥ ८२॥
तिथि पत्रा नित देख कर, नित हि देख आकास।
बारह राशी ज्ञान को, घड़ि सम कर अभ्यास॥ ८३॥
घंटे सम राशी गिनो, भोग मान दिन रात।
अंश तीस तेहि मान लो, मानो मिनट हि पात॥ ८४॥
प्रति दिन अंशा एक हो, सूरज को हो चाल।
मास भोग एक राशि हो, बारह हों हर साल॥ ८५॥
सवा दोय नक्षत्र में, राशि पूर्ण इक होय।
सत्ताइस नक्षत्र हो, सूर्य्य वर्ष गत होय॥ ८६॥
राशि कहत हैं ढेर को, ढेर नक्षत्र हि जान।
तारागण की जोड़ कर, कल्पित रूप हि मान॥ ८७॥
मेष वृषादिक रूप हो, तारागण हि दिखाय।
रूप गती तेहि चीन्हना, असल बात कहलाय॥ ८८॥
चन्द्र राशि सवा दोय दिन, नक्षत्र हि दिन एक।
कसर घटाय बढ़ाय के, पूर्णमासि नहि ठेक॥ ८९॥
बीसाखा नक्षत्र में, पूर्ण चन्द्र जब होय।
वही मास बैसाख हो, ज्येष्टा ज्येष्ट हु सोय॥ ९०॥
उत्ताषाढ़ असाढ़ है, श्रावण श्रवणा जान।
उत्तर भाद्र हि भाद्र है, अश्विनि आसिन मान॥ ९१॥

कातिक में हो कृत्तिका, मृग से अगहन जान ।
पुष्या पूस हि कहत है, मघा माघ पहचान ॥ ८२ ॥
उत्तर फाल्गुणि पौर्णिमा, फागुण होता मास ।
चित्रा चैत हि जानिये, या विध कर अभ्यास ॥ ८३ ॥
रहत अमावस के दिन हि, चन्द्र सूर्य्य इक रास ।
पूनो सप्तम चांद हो, सूरज से हो खास ॥ ८४ ॥
कहत शनी ढाई बरस, भोगत एक हि रास ।
गुरू एक राहू बरस, डेढ़ केतु हूं खास ॥ ८५ ॥
डेढ़ मास मंगल कहे, दिन अठार बुध जान ।
अट्ठाइस दिन शुक्र है, भोगत रास हि मान ॥ ८६ ॥
अपनी नियमित चाल से, चलत सोइ गृह जान ।
चाल नियमजिहिज्ञातनहि, तारा गण तिहि मान ॥ ८७ ॥
जग मे जितनी बस्तु है, बिन गुण नहि है कोय ।
मानव से सम्बन्ध तिहि, कर्म भोग फल होय ॥ ८८ ॥
सब से सब ही बस्तु को, लगते हैं सम्बन्ध ।
कर्म भोग के कारने, फल भोगन प्रतिबन्ध ॥ ८९ ॥
तारा गण आकास में, जो देखत हम लोग ।
धरती सम वह लोक सब, हेतु सुक्ख दुख भोग ॥ १०० ॥
लोक गुणहु नियमित कहे, सुख दुख भोग प्रभाव ।
केवल सुख स्वर्ग हि कहे, नरक भोग दुख पाव ॥ १०१ ॥
पृथिवी पर सुख दुख दोऊ, कर्म बन्धन हु जान ।
स्वर्ग नरक मे भोग हो, मुक्त बन्ध ह्यां मान ॥ १०२ ॥
तेजो बल से सूर्य्य के, आब हवा इस भांत ।
जिसको हम सुख मानते, होय जहां यह बात ॥ १०३ ॥

स्वर्ग कहत हैं वाहिको, उलटा उसका नर्क ।
आब हवा अरु तेज से, सृष्टि हि में यह फर्क ॥ १०४ ॥
इस धरती के बीच में, सूरज को परताप ।
दुख सुख दोऊ सृष्ट है, कर्म भूम है आप ॥ १०५ ॥
अफरीका लपलैंन्ड से, अति हु कष्ट कर देश ।
छोड़ जान चाहत नहो, भोगत कर्म विशेश ॥ १०६ ॥
सप्त ऋषी गण लोक है, अरुन्धती है लोक ।
ध्रुव आदी स्वर्ग हि कहें, उत्तर देखत श्लोक ॥ १०७ ॥
देव लोक यह सब कहे, स्वर्गादी तेहि जान ।
शनी आदि नरक हि कहे, हरशल नेपचुन मान ॥ १०८ ॥
देव लोक भोर हि सदा, नरक सदा अंधकार ।
इन मौसिम की बस्तु सब, दोउ हुं पैदावार ॥ १०९ ॥
यूरपियन अब तक नही, करते यह सब खोज ।
पर काल हि को ध्यान नहि, भोगत भोज-अरु भोग ॥ ११० ॥
थोड़े दिन की देर है, लखि जग तब हो ध्यान ।
ज्योतिष बिद्या बल हि हो, नरक स्वर्ग परमान ॥ १११ ॥
कलि प्रभाव भारत जन हु, म्लेच्छ मुख हि से खास ।
जब तक व्याख्यानहिसुने, न हो शास्त्र विश्वास ॥ ११२ ॥
कर्म सदृश योनी सदा, करि आकर्षित जीव ।
प्रथ्यम पुण्य रु पाप ते, पृथ्वी अन जल पीव ॥ ११३ ॥
पाप पुण्य अतिशय बने, तत् सदृश गुण लोक ।
आकर्षित जीव हि करे, भोगन पुन अरु शोक ॥ ११४ ॥
पृथिवी को आकर्षन हु, सकत न जीव-अटकाय ।
कर्म सदृश जो लोक है, आकर्षण तेहि आय ॥ ११५ ॥

जैसे सुर बेमेल को, धक्का लगे न बाय।
मिले सुरन के ज़बरसे, जाति जाति मिलि जाय॥ ११६॥
यह बातें दैवी नही, सब लौकिक ही जान।
बिज्ञानं हि से सिद्ध हो, कहता शास्त्र प्रमान॥ ११७॥
जाको मानत हैं बड़े, यूरपियन गुरु जान।
ताको नहि विश्वास हो, गुण कलियुग यहि मान॥ ११८॥
शास्त्र पढ़ो भारत पढ़ो, खोंज करी बिज्ञान।
अनजाने है बहु विषय, गल्प छल हि विज्ञान॥ ११९॥
विश्वस करि सोचत न इक,इक तजिबे विश्वास।
भारत या बिध लोग इय, डूब्यो सब ही आस॥ १२०॥
बहु बिज्ञान प्रकाश थे, भारत में विदमान।
नष्ट भये सब ग्रन्थ ही, अब रह गया पुरान॥ १२१॥
गल्प छल हि सब कहगए,नहि विश्वास निदान।
यूरपियन जब बोलते, होता तब हि प्रमान॥ १२२॥
क्या कलंक भारत लगी, ग्लानि न काहू होय।
करि बिलासि भारत जनहि,रीक दियो सब कोय॥ १२३॥
कहत पेट नहि भरत है, को देखे बिज्ञान।
इक मूठी से पेट भर, सब देते है दान॥ १२४॥
भारत के बिज्ञान में, नही खरच को काम।
कल कांटा नहि काम है, योग ध्यान ही नाम॥ १२५॥

भड्डुली ज्योतिष ।। ४८८ ।।

मेघ गर्भ लक्षण ।

नाम गिनावे गर्भ को, यों जोसी सहदेव ।
गर्भ कहें सो जान जो, मास मास में देव ॥ १ ॥
बादल वायु विज्जु वरसंत ।
कड़के गाजे उपल पड़ंत ॥ २ ॥
धनुष चीर परवेशे भान ।
हेम पड़े दश गर्भ प्रमान ॥ ३ ॥

कार्तिक मास ।

कातिक सुदि एकादशी, बादल बिजुरी होय ।
तौ असाढ़ में भड्डुली, बरखा होशी जोय ॥ ४ ॥
कातिक सुदि वारस को देख ।
मार्गशीर्ष दशमी अवरेख ॥ ५ ॥
पौष सुदी पंचमी विचार ।
माघ सुदी सतमी निर्धार ॥ ६ ॥
ता दिन जो मेघा गाजंत ।
मास चार अंवर वरसंत ॥ ७ ॥

कातिक मावस देखै जोसी ।
रवि शनि भौम वार जो होसी ॥ ८ ॥

स्वाति नक्षत्तर आय सुजोगे।
काल पड़े अरु नासे लोगे ॥ ९ ॥

कातिक सुदि पूनो दिवस, जो कृतिका रूष जोय।
तामें बादल बीजुली, जो संयोग सुहोय ॥ १० ॥
चार मास बरषा तब होसी।
भली भांति यों भाषे जोसी ॥ ११ ॥
कातिक बारस मेघा दरसे।
सा मेघा आषाढ़े बरसे ॥ १२ ॥

मार्गशीर्ष मास।

मार्ग बदी आठे दिन दरसे
सो मेघा भर सावन बरसे ॥ १३ ॥
पौष मास दसमी अंधियारी।
भड्डलि होवे घोर अंधारी ॥ १४ ॥
सावन बदि दसमी के दिवसे।
भरि के मेह जु अधिकी बरसे ॥ १५ ॥
माघ महीना माहि जो, ज्येष्टा तपै न मूर।
इमि बोले है भड्डली, निपजै सातो तूर ॥ १६ ॥
मार्ग बदी आठे घटा, बिज्जु समेती जोय।
तो सावन बरखे भली, साषि सवाई होय ॥ १७ ॥

पौष मास ।

पौष मास की सप्तमी, जो पानी नहि देय ।
तो आर्द्रा बरसै सही, जल थल एक करेय ॥ १८ ॥
पौष अंधारो सत्तमी, बिन जल बादल जोय ।
सावन सुदि पूनो दिवस, बरखा अवशै होय ॥ १९ ॥
पौष वदी दसमी दिवस, बादल चमकै बीज ।
तो बरसै भर भादुवो, साधो खेलो तीज ॥ २० ॥
पौष अंधारी तेरसी, चहुं दिस बादल होय ।
सावन पूनो मावसै, जलधर अति ही जोय ॥ २१ ॥
पौष अमावस मूल को, सरसै चारी बाय ।
निहचै बांधों झूंपड़ी, बर्षा होय सिवाय ॥ २२ ॥
शनि आदित अरु मंगला, पौष अमावस होय ।
दुगनो तिगनो चौगुनो, नाज महर्घो होय ॥ २३ ॥
सोम शुक्र दिन सुर गुरू, पौष अमावस होय ।
घर घर होय बधावनो, बुरा न दीखै कोय ॥ २४ ॥
धन का सूरज होय तब, मूलादिक नव रच्छ ।
गर्भ सहित जो जोइये, तो वरषा परतच्छ ॥ २५ ॥
पौष ऊजली सप्तमी, आठैं नवमी गाज ।
गर्भ होय तो जानिये, अब सरिया सब काज ॥ २६ ॥
पूस मास जब चन्द्र को, मूल नक्षत्तर आद ।
भरणी तक ग्यारह कहैं, चन्द्र हि की रख याद ॥ २७ ॥

जोड़ नछत्तर गर्भ हो, जैसी बदली होय।
पन्दरहवें रवि नखत में, तैस हि बरसै सोय॥ २८॥
मूल गर्भ आद्रा जनम, क्रम दोऊ गिन लेव।
आद्रा से वीसाख तक, बरखेंगे तब देव॥ २९॥

माघ महीना।

माघ अंधारी सत्तमी, मेह बिज्जु दमकंत।
मास चारि बरखे सही, मत तूं सोचे कंत॥ ३०॥
नवमी माघ अंधेरियो, मूल नछत्र को भेद।
तो भादों नवमी दिवस, जल बरखे बिन खेद॥ ३१॥
माघ अमावस गर्भ भय, जो किछु भांत बिचार।
भादों की पून्यु दिवस, बरषा पहर जु चार॥ ३२॥
माघ सुदी जो सत्तमी, सूरज निर्मल होय।
इम बोलें है भड्डली, जल बिन पृथिवी रोय॥ ३३॥
माघ सप्तमी ऊजली, बादल मेघ करंत।
तो आसाढ़ भड्डली, घनों मेघ बरसन्त॥ ३४॥
माघ सुदी जो सत्तमी, विज्जु मेह हिम जोय।
चार महीना बरससी, सोच करो मत कोय॥ ३५॥
माघ सुदी जो सत्तमी, सोमवार दीसंत।
काल पड़े राजा लड़े, सगला नरा भवंत॥ ३६॥
माघ जु साते ऊजली, आठे बादल होय।
तो असाढ़ मे धूरिया, बरखा जोसी जोय॥ ३७॥

चंद अकासे निर्म्मल होय ।
आठे बादल सूरज गोय ॥ ३८ ॥
राजा राज नसे या भेव ।
यह भाखे जोसी सहदेव ॥ ३९ ॥
जा दिसि गर्भ लच्छना जान ।
ता दिसि बरखा चतुर बखान ॥ ४० ॥

माघ सुदी आठै दिवस, जो कृतिका रिष जोय ।
कै फागुण रोली पड़े, सांवन महगी होय ॥ ४१ ॥
अथवा नौमी ऊजली, बद्दल करे बियाल ।
भादव मे बरखे घनी, सरोवर फूटे पाल ॥ ४२ ॥
अथवा नौमी निर्मली, बादर रेख न जोय ।
तो सरवर भी सूखसी, महि मे जल हि न होय ॥ ४३ ॥
माह जु नौमी चन्द्रमा, मण्डल सहितो बास ।
तो असाढ़ में बरससी, यौं मत कर विश्वास ॥ ४४ ॥
बादल माघ सु पूर्णिमा, जो जो प्रहरां जोय ।
चौमासे तामास में, क्रम से मेघां होय ॥ ४५ ॥
माघ सुदी पून्यो दिवस, चन्द निर्मलो जोय ।
पशु बेचोक,न संग्रहो, काल हलाहल होय ॥ ४६ ॥

माघ माहि जो पड़े न सीत ।
महगी नाज जाणिजो मीत ॥ ४७ ॥
माघ पांच जो हो रविवार ।
तो भी जोसी काल बिचार ॥ ४८ ॥

फागुण विचार।

फागुण वदी सुदूज दिन, बादल होय न बीज।
बरसे सावन भादवो, साधुन खेलो तीज ॥ ४८ ॥
मंगल वारी मावसी, फागुण चैती जोय।
पशु बेचोक न संग्रहो, अवश्य दुकाली होय ॥ ५० ॥
फागुण सुदी जु सप्तमी, आठे नौमी गर्भ।
देख अमावस भादवे, पइये मेघ सुलभ्भ ॥ ५१ ॥
फागुण मंगल पांच हो, पूस पांच शनि होय।
काल पड़े तब भड्डली, बीज बवो मति कोय ॥ ५२ ॥

होली झलको करो विचारा।
शुभ अरु अशुभ कहो फल सारा ॥ ५३ ॥
पश्चिमा वायु बहे अति सुन्दर।
समयो निपजे सकल वसुन्धर ॥ ५४ ॥
पूरब दिस की बहै जो वाय।
कुछ भींजे कुछ कोरी जाय ॥ ५५ ॥
दक्खिन वायु वहै धन नास।
समय में निपजे सनई घास ॥ ५६ ॥
उतरा वायु वहे दड़ वड़िया।
पिरथी अचूक पानी पड़िया ॥ ५७ ॥
जोर झकोले चारों वाय।
दुखिया परजा जू भो राय ॥ ५८ ॥

जोर भाली आकासि जाय ।
तो पिरथी संग्राम बताय ॥ ५९ ॥

शुक्र होय वा दिन शनी, मंगल दिन की होय ।
चाक चहोड़े मेदनी, बिरला जीवे कोय ॥ ६० ॥

होली से दिन चार तक, गर्भ मेघ जो होय ।
आषाढ़-अरु श्रावण कहे, भादो आसिन सोय ॥ ६१ ॥

जो दिन जैसा गर्भ हो, क्रम दिन मास हि चार ।
तैसहि बरखा जानिये, नहि तो नहि जल धार ॥ ६२ ॥

चैत्र मास बिचार ।

चेत अमावस जै घड़ी, वरती पवा माहि ।
कची उतना से रही, कातिक धान बिकाहि ॥ ६३ ॥

चैत सुदी रेवतड़ी जोय ।
बैसाखा भरणी जो होय ॥ ६४ ॥

जेठ मास मृगशिर दरसंत ।
पुनर्वसू अषाढ़ चरंत ॥ ६५ ॥

जित्यो नषत्तर वर्त्यों जाय ।
तेतो सेर अनाज बिकाय ॥ ६६ ॥

चैत मास उजियाले पाख ।
आठ दिवस बरखंता राख ॥ ६७ ॥

नवें दिना जित विजुरी जोय ।
ता दिस काल हलाहल होय ॥ ६८ ॥

चैत मास † दस नक्षत्र, बादल बिजली होय।
इमि बोल्यो है भड्डली, गर्भ गल्या सब जीय ॥ ६९ ॥
चैत मास दस नक्षत्र, जो कहि कोरा जाय।
तो चौमासे बादला, भली भांति बरखाय ॥ ७० ॥
चैत पूर्णिमा होय जो, सोम गुरू बुधवार।
घर घर होय बधावनी, घर घर मंगल चार ॥ ७१ ॥

अश्वनि गलियां अंत विनाशे।
गली रेवती जल को नाशे ॥ ७२ ॥
भरणी नाशे तृणो सहूती।
कृतिका बरखे अन्न बहूती ॥ ७३ ॥
बादल ऊपर बादल धावे।
कह भड्डली जल आतुर आवे ॥ ७४ ॥

अश्विनि गलि भरणी गल्यो, गलियो ज्येष्टा मूल।
पुर्वाषाढ़ धड़ूकिया, उपजे साती तूर ‡ ॥ ७५ ॥
कृतिका तो कोरी गई, आर्द्रा मेह न बूंद।
तो यों जानो भड्डली, काल मचावे दूंद ॥ ७६ ॥
चंदा बीस सहेलियां, सत्ता आगलियां।
जो न भिजावे कृत्तिका, सगली सांटलियां ॥ ७७ ॥
रोहण माही रोहिणी एक घड़ी जो दीख।
हाथ खप्परां मेदिनी, घर घर मांगे भीख ॥ ७८ ॥

---

† आर्द्रादि दस नक्षत्र।

‡ बाजरादि अन्न।

मृगशिर वाय न वाजिया, रोहण तपै न जेठ।
गौरी बीनै कांकरा, खड़ी खेजड़े हेठ ॥ ७९ ॥
आद्रा तौ बरसा नहीं, मृगसिर पवन न जोय।
तब तो जानो भड्डुली, बरखा बूंद न होय ॥ ८० ॥
मूल गल्या रोहणि गली, आद्रा बाजी वाय।
हालिडु वा बेची बलध, खेती लाभ नसाय ॥ ८१ ॥
मूल गल्या पण भड्डुली, बोले विसवा बीस।
सावण की पंचक झड़ी, आस समय की दीस ॥ ८२ ॥
चैत शुक्ल तिथि पंचमी, पुरवा बहे बियार।
सभी फसिल अच्छी बनै, पछिया में ही ख्वार ॥ ८३ ॥

बैसाख मास बिचार।

बैसाखां सुदि प्रथम दिन, बादर बिज्जु करेह।
दामां बिना विसाहिजे, पूरी साख भरेह ॥ ८४ ॥
अखै तीज तिथ के दिना, गुरु रोहणि संयूत।
सहदे जोसी यों कहे, निपजै नाज बहूत ॥ ८५ ॥
अखय तीज रोहणि नहि होई।
पौष अमावस मूल न जोई ॥ ८६ ॥
राखी श्रवणा हीन विचारो।
कातिक पूनो कृतिका टारो ॥ ८७ ॥
महि माही खल बलो प्रकासे।
कहे भड्डुली साख बिनासे ॥ ८८ ॥

ज्येष्ट मास विचार।

जेठ पहिला पड़वा दिना, बुध वा सर जो होइ।
मूल अषाढ़ी जो मिले, पृथिवी कम्पे जोइ॥ ८९॥

जेठ आगली पड़वा देखि।
कौन बासरी है यो पेखि॥ ९०॥
रविवारां अति बाजे वाय।
मंगल वारां व्याधि बताय॥ ९१॥
बुधां नाज महगाई करई।
शनिवारां परजा थरहरई॥ ९२॥
चंद्र शुक्र सुर गुरु के वारां।
होय तो अन्न भरो संसारां॥ ९३॥

जेठ बदी दसमी दिना, जो शनि वासर होय।
पानी हो नहि धरति में, बिरला जीवे कोय॥ ९४॥
जेठ उज्यारी तीज दिन, आर्दा रिष बरसंत।
जोसी भाखे भड्डुली, दुर्भिष अवश्य करंत॥ ९५॥
जेठ उजारे पाष में, आद्रादिक दस रिच्छ।
सजल होय निर्जल कहो, निर्जल सजल प्रतच्छ॥ ९६॥
स्वाति बिसाखा चित्तरा, जेठ सुखैड़ी जाय।
पिछला गर्भ गल्या कहो, बनी साष मिट जाय॥ ९७॥

चैत मास जो बीज बिजोवे।
भरि बैसाखां टेसू धोवे॥ ९८॥

जेठ मास जो तपै निरासा।
तो जानो बरखा की आसा॥ ९९

आषाढ़ मास विचार।

कृष्ण अषाढ़ी प्रतिपदा, जो अम्बर गरजंत।
छली छली जूझियां, निश्चै काल पड़ंत॥ १०० ॥
धुर आसाढ़ां बिज्जु की, झमी निरन्तर जोय।
सोम सुक्करां सुर गुरां, तो भारी जल होय॥ १०१ ॥
धुर आसाढ़ की पंचमी, बादल होय न बीजु।
बेचो गाड़ी बलधिया, निपजै कछू न चीज॥ १०२ ॥
धुर असाढ़ की अष्टमी, शशि निर्मल यों दीख।
पीउ जाय कै मालवे, मागत डोलो भीख॥ १०३ ॥
नवें असाढ़ी बादलो, जो गरजै घनघोर।
कहे भड्डली जोयसी, काल पड़े चहु ओर॥ १०४ ॥
दसै अषाड़ी कृष्ण की, भडली रोहणि होय।
सौंगो धान बिकायसी, हाथ न छीवे कोय॥ १०५ ॥
सुदि असाढ़ में बुद्ध को, उदय भयो जो देख।
शुक्र अस्त सावन लखो, महा काल अवरेख॥ १०६ ॥
सुदि असाढ़ की पंचमी, गाज धम धमी होय।
तो यों जानो भड्डली, मधुरी मेघा जोय॥ १०७ ॥
सुदि असाढ़ नौमी दिना, बादर झीनो चंद।
तो यों जानो भड्डली, भूमि घणो आनन्द॥ १०८ ॥

शनि आदित अरु मंगला, जो पौढ़े सुर राय।
अन्न जु महगी होयसी, जोरी चलसी वाय ॥ १०९ ॥
चित्रा स्वाति बिसाखड़ी, जो बरखे आषाढ़।
चालो नरां बिदेसड़ां, पड़सी काल सुगाढ़ ॥ ११० ॥
आषाढ़ी पून्यो दिना, बादल भीन्यों चन्द।
तो जोसी भड्डलि कहे, सगला नरां अनन्द ॥ १११ ॥
आसाढ़ी पून्यो दिना, निर्मल ऊगे चन्द।
पीउ जाहु तुम मालवे, हूंटे छै दुख दंद ॥ ११२ ॥
पुर्वाषाढ़ं सु तीन दिन, जो होवे शुभ वार।
घर घर होय वधावरां, घर घर मंगल चार ॥ ११३ ॥
आषाढ़ी पून्यो दिना, गाज बीजु बरसन्त।
नास्या लक्षण काल का, आनंद माने संत ॥ ११४ ॥

आषाढ़ी पून्यो की सांझ।
वाय देखिजे नभ के माझ ॥ ११५ ॥
पूरब उत्तर अरु ईसान।
जोर बहे तो समयो जान ॥ ११६ ॥
अगिन नैऋती वायु जो कौन।
समयो नासे चले जु पौन ॥ ११७ ॥
दक्खिन पच्छिम आधो समयो।
सहदे जोसी ऐसी भनियो ॥ ११८ ॥

आषाढ़ी पून्यो कहें, शुक्ल पक्ष के माहि।
पूर्वाषाढ़ा चन्द्र हों, वृष्टि होय जग माहि ॥ ११९ ॥

आषाढ़ी पूनी कहे, चन्द्र नखत ही जान।
मूला की जो योग हो, होय अकाल निदान ॥ १२० ॥

श्रावन मास विचार।

सावन पहिली चौथ में, जो मेघा बरसाय।
तो भाषै यों भड्डली, साष सवाई जाय ॥ १२१ ॥
सांवन पहिली पंचमी, जो चाले यों पौन।
नहि रहसी यह देसड़ो, पंछी कर ज्यो गौन ॥ १२२ ॥
सावन पहली पंचमी, जोर धड़ूके मेव।
चार मास बरखे सही, यो भाषै सहदेव ॥ १२३ ॥
सावन पहिला पाष में, दसमी रोहणि होय।
महगो नाज हु अल्प जल, बिरला बिलसै कोय ॥ १२४ ॥
सावन बदि एकादसी, जेती रोहणि होय।
तेतो समय जु नीपजै, चिन्ता करो न कोय ॥ १२५ ॥
सावन कृष्णा एकादशी, गरज मेघ अधरात।
तुम जाओ पिय मालवे, हूं जास्यूं गुजरात ॥ १२६ ॥
जो कृतिका तो किरवरी, जो रोहणी सुकाल।
जो मृगसिर आवे तहां, निश्चय होय दुकाल ॥ १२७ ॥
सावन बदि एकादशी, बादर ऊगै सूर।
तौर बतावे भड्डली, घर घर बाजे तूर ॥ १२८ ॥
चित्रा स्वाति बिसाखड़ी, सावन जुन बर्सन्त।
हाली अन्न हि संग्रहो, दूनी मोल करन्त ॥ १२९ ॥

कर्क जु भीजै कांकरी, सिंह अभीनो जाय।
ऐसी बोलै भड्डली, टिड्डी फिर फिर खाय ॥ १३० ॥
मीन सनीचर कर्क गुर, जो तुल मंगल होय।
गेहूं गोरस गोरड़ी, बिरला बिलसै कोय ॥ १३१ ॥
कै जु सनीचर मीन को, कै तुल को जो होय।
राजा बिग्रह क्षय प्रजा, बिरलो जीवै कोय ॥ १३२ ॥

श्रावण कृष्ण पक्ष में देखो।
तुल को मंगल होय बिशेषी ॥ १३३ ॥
कर्क राशि पै गुरु हूं आवै।
सिंह राशि पर शुक्र सुहावै ॥ १३४ ॥
ताल जु सोखे बरसि धूर।
कहूं न उपजे साती तूर ॥ १३५ ॥

सांवन ऊजल पाख में, जो थे सब दरसांय।
दंड होय छत्री लड़े, मरै पृथी पति राय ॥ १३६ ॥
मंगल रथ आगे चलै, पीछे चलै जो सूर।
मन्द वृष्टि तब जाणजो, पड़सी सगले भूर ॥ १३७ ॥
आगे मंगल पूठ रवि, जो अषाढ़ के मास।
चोपद नाशै चहुं दिशा, बिरले जीवन आस ॥ १३८ ॥
आगे रवि पीछे चले, मंगल जो आषाढ़।
तो बरस्यां अन मोकलो, पिरथी आनन्द बाढ़ ॥ १३९ ॥
आर्द्रा भरणी रोहिणी, मघा उत्तरा तीन।
इन मंगल आंधी चलै, तब लौं बरखा खीन ॥ १४० ॥
तीतर बरणी बादली, काजल रेखा रेख।
वे बरसै वे घर करै, कहै भड्डली देख ॥ १४१ ॥

उतर चमकी बिज्जुरी, सौंधे रांड़ निहाय ।
कहें भड्डली देखना, वै बरखे वै जांय ॥ १४२ ॥
पवन थक्यां तीतर लवे, गोरड़ देवे नेह ।
कहत भड्डली जोयसी, ता दिन बरसे मेह ॥ १४३ ॥
कलसै पानी गरम हो, चिड़िया न्हावे धूर ।
अंडा लय चींटी चढ़ै, तौ बरखा भर पूर ॥ १४४ ॥
बोले मोर महातुरी, खट्टो होय जु छांछ ।
मेह मही पर पड़न को, जानो कार्छे कार्छ ॥ १४५ ॥
भोर समय भिड़ डंबरा, रात ऊजली होय ।
दुपहर को सूरज तपै, दुरभिख तोऊ जोय ॥ १४६ ॥
दिन बद्दर रत चांदनी, झपकी ऊगे सूर ।
भड्डलि कह तब जाणजो, बरखा गइ बड़ि दूर ॥ १४७ ॥
सुक्कुर वारी बादली, रहे सनीचर छाय ।
तो यों भाखै भड्डली, बिन बरस्यां नहि जाय ॥ १४८ ॥
मघादि पांच नखत्तरां, भृगु पच्छिम दिश होय ।
तो यों जानो भड्डली, पानी पृथी न जोय ॥ १४९ ॥
रातें बोले कागलां, दिन में बोले स्याल ।
तो यों भाखें भड्डली, निश्चय पड़ियो काल ॥ १५० ॥
रवि अंगारां सुरगुरां, शशि शुक्रां परिवेश ।
दिवस जो चौथे पांचवें, रुधिर बहन्तो देख ॥ १५१ ॥
सूरज ऊग्यां पच्छिम दिशा, धनुष ऊगतो जान ।
दिवस जु चौथे पांचवे, रुंड मुंड महिमान ॥ १५२ ॥
उतरा उत्तर दे गई, हस्त गयो मुख मोरि ।
भीजे चित्रा बापड़ी, परजा लेइ बहोरि ॥ १५३ ॥

पौरणमासी श्रावन हि,   श्रवण चन्द्र नक्षत्र।
उत्तम वृष्टी होय तब,   प्रजा सुखी सर्वत्र ॥ १५४ ॥
श्रावण कृष्ण इकादशी,   चन्द्र रोहिणी योग।
जितनी घड़ि नक्षत्र हो,   उतनहि वृष्टी योग। १५५ ॥
उसी तिथी को कृत्तिका,   चन्द्र नखत जो होय।
जितनी घड़ि नक्षत्र हो,   क्रुट बढ़ बरखे तोय ॥ १५६ ॥
उसी तिथी को मृगशिरा,   चन्द्र नखत जो होय।
जितनी घड़ि नक्षत्र हो,   उतनहि दुरभिष होय ॥ १५७ ॥

भाद्र पद मास बिचार।

रवी उगंते भादवा,   अम्मावस रविवार।
धनुष उगंते पच्छिमे,   होसी हाहा कार ॥ १५८ ॥
भादवड़ा सुदि पंचमी,   स्वाति संयोगी होय।
दोनी शुभ योगां मिले,   मंगल बरते लोय ॥ १५९ ॥
भादवड़े जुग रेलिसी,   छठ अनुराधा गोय।
पिछला गर्भ खड़ा करे,   चोखी वरखा होय ॥ १६० ॥
भादो मास उजालिया,   लखो मूल रविवार।
तो यों भाखे भड्डली,   साष भली निर्धार ॥ १६१ ॥

आश्विन विचार।

आसोजा बदि मावसा,   जो आवे शनिवार।
समयो होवे किरबरी,   जोसी करो बिचार ॥ १६२ ॥

मूल नखत्रां पाती* होय।
श्रवण नखत्रां राखी जोय ॥ १६३ ॥
जो चित्रा मे खेले गाय।
निश्चय खाली साख न जाय ॥ १६४ ॥
बिजै दसै जो बारी होय।
सम्वत्सर को राजा सोय ॥ १६५ ॥
स्वाती दीया जो बलै, खेल बिसाखा गाय।
घणा गयंदा रण चढ़े, उपजी साख नसाय ॥ १६६ ॥
एक मास में ग्रहण जु दोई।
तौभी अन्न महर्घी होई ॥ १६७ ॥
तेरह दिन की पाख जु दीठा।
तौभी सम्वत कै जै सीठा ॥ १६८ ॥
छः ग्रह एकै राशि बिलोकी।
महा काल को दीनो की को ॥ १६९ ॥
बीत्यां सम्वत तिगुणा करहू।
गया वार बीती मे धरहू ॥ १७० ॥
भाग तीनको दीजे जोसी।
बरखा लच्छन जमे होसी ॥ १७१ ॥
ज्योतिष भड्डलि देतहै, बरखा प्रकरण जान।
कौन देश नोयम यही, नहि देखत परमान ॥ १७२ ॥

---

* बदी १ पितृपच्छ।

उत्साही गण खोज कर, जांच हि कर सन्धान।
अति प्रयोजनिय बात की, लेवे निज बरतान ॥ १७३ ॥

समाप्त।

फलित ज्योतिष ॥ ४८९ ॥

राशि नक्षत्र-अरु योग है, करण तिथी ग्रह जान ।
मानव से सम्बन्ध तेहि, फल ज्योतिष पहचान ॥ १ ॥
भाठा और जुवार ही, नियमित फल ही देख ।
सबही को विश्वास हो, शास्त्र हि जो है लेख ॥ २ ॥
विद्या यवनहि कहत यह, अरु देते है दोष ।
मुन्था गुलिकादी शबद, नही संस्कृत कोष ॥ ३ ॥
एकादशि चौदस कहे, और अमावस जान ।
तिथि फल ग्रहफलसे मिले, शीत ऊष्ण परिमान ॥ ४ ॥
ग्रह गति क्रम सम्बन्ध से, पित कफ बायू बेग ।
शीत ऊष्ण गुण मनुसके, दुख सुख हो आबेग ॥ ५ ॥
संस्कार तेहि कारणे, भोग कर्म के योग ।
कल्पित दुख सुख मनुसके, हो जाते हैं भोग ॥ ६ ॥
धातु बेग ज्यों स्वप्न हो, कल्पित होत अकार ।
नारि भोग सुख मान ले, ग्रह हूं वही प्रकार ॥ ७ ॥
यह विद्या एक रीत से, हो गइ है अब लोप ।
ठगी चातुरी चलत है, इस पर सबका कोप ॥ ८ ॥
आलसि अरु जो चूद्र मन, उनही को है चाह ।
पंडित लोगों में इधर, चलती इसकी नाह ॥ ९ ॥
दुख जो होवन हार है, जानि न दुख हि बढ़ाव ।
होने वाले सुख हु को, जानहि फल क्या पाव ॥ १० ॥
ज्योतिष मे ग्रह चाल की, पड़गइ है बहु भूल ।
जांच इधर होती नही, करत कौन अनुकूल ॥ ११ ॥

और समय के फेरसे,   फल को तरतम होय ।
उत्तम फल धन लाभही,   और न धरते कोय ॥ १२ ॥
धन जन हानि हि हान है, गिने नही अरु हान ।
याते फल मिलता नहीं,   होता वे परमान   १३ ॥
बात हि में जो रंज हो,   गिनत दुःख तेहि नाहि ।
फूल हि देखि प्रसन्न हो, सुख मानत नहि वाहि ॥ १४ ॥
इसी काल की कुण्डली,   अरु जीवन वृत्तान्त ।
देख भाल कर काढ़िलो,   नई रीत सिद्धान्त ॥ १५ ॥
एक योग का एक फल,   सब में घटता जाय ।
इसी तरह संगृह करो,   नइ ज्योतिष बनजाय ॥ १६ ॥
गोचर फल कहते वही,   जन्म राशि जो होय ।
ताते गनिकर बूझ लो,   जिस दिन गिनते सोय ॥ १७ ॥
जन्म भयो जिस काल में, चन्द्र रह्यो जेहि राशि ।
गोचर गणना होत है,   आदि गिनहु वह राशि ॥ १८ ॥
पत्रा देखत जानिलो,   कौन गृहन केहि रास ।
गिनकर अपने राशि से,   राशिन कितने पास ॥ १९ ॥
पहिले तीजे षष्टही,   सात दश हि इग्यार ।
चंद्र शुभहि, सूरज कहें,   तीन षष्ट इग्यार ॥ २० ॥
तीन षष्ट दश ग्यारवे,   मंगल शुभ हैं जान ।
तीन चार छ आठवें,   ग्यारह बुध शुभ मान ॥ २१ ॥
दूजे पांचे नवम ही,   एकादश गुरु जान ।
एक तीन छ चार ही,   अष्टम नवम हु मान ॥ २२ ॥
एकादश द्वादश कहे,   शुक्र हि शुभ फलकार ।
तीन षष्ट दश ग्यारवे,   शनी करत उपकार ॥ २३ ॥

तीन षष्ट ग्यारह कहे, राहु हु की शुभमान ।
बाकी जितने बच गये, अशुभ उन्हीं की जान ॥ २४ ॥
बरस गांठ के दिन कहे, जनम नछत्र हु होय ।
अति शुभही वह साल ही, ज्योतिष कहता सोय ॥ २५ ॥
शनि मंगल वहि दिन पड़े, जनम नछत्र न होय ।
अती अशुभ वह सालही, फल कहता है जोय ॥ २६ ॥
परकाल हि सुख सुक्ख है, दुख दुख है परकाल ।
सुख दुख पहिले बूझकर, ज्योतिषि करहु सवाल ॥ २७ ॥
प्रति दिन पत्रा लेयकर, गोचर करे विचार ।
तब ही उनको ज्ञान हो, फल ज्योतिष का सार ॥ २८ ॥
भृगू संहिता कहत हैं, और संहिता होय ।
रुद्र ब्रह्म तेहि नाम है, तीन काल कह सोय ॥ २९ ॥
कुंडली भारत वासि गन, मिलती सब तेहि माय ।
भेद बरन अरु देश से, जाता है फरकाय ॥ ३० ॥
एक लग्न की कुंडली, रहती कई प्रकार ।
जात देश आदी फरक, लखि कर लेत निकार ॥ ३१ ॥
जात वरण जब भ्रष्ट हो, तब निश्चय नहि होय ।
जाति नियम प्रति पालना, उचित कहत हैं जोय ॥ ३२ ॥

अर्थ शास्त्र ॥ ४६० ॥

जहां जनमती बस्तु सब, मनुष काम की सार ।
धन संग्रह अति फल नहीं, एक ज्ञान आधार ॥ १ ॥

श्रम शक्ती जहां होय कम, हीत बुद्धि अति भीन।
थोड़े व्यय में सुख बने, शिल्प विलास हु हीन॥ २॥
बीस बिघे जो जगह हीं, छोटा ग्राम्य गृहस्थ।
यूरप माया नहि लगे, निश्चय होय प्रशस्थ॥ ३॥
भारत का है ज्ञान यह, न कर बहुत रुज़गार।
खर्च घटावन को गिने, अति हि लाभ को कार॥ ४॥
उन्नति का जब काल हो, सिक्का बढ़ जब देश।
नियम जगत तब ही चले, करि सिक्का को शेश॥ ५॥
भाग धन हि के करन को, शिल्पादिक बरताव।
उन्नति हो विज्ञान की, यज्ञ हि के परभाव॥ ६॥
पतन काल जब निकट हो, जढ़ उन्नत हो देश।
शिल्प विलास हि अति बढ़े, हो विलास फिर शेश॥ ७॥
देना नहीं अपात्र को, बिद्या अरु धन भाग।
भारत नीयम यहि चलन, अर्थ शास्त्र की लाग॥ ८॥
नीचन को धन भाग नहि, दैव योग जो होय।
राजा वाकी छीन ले, धर्म शास्त्र कह सोय॥ ९॥
नीचन में जब धन बढ़े, बढ़े मद्य दूकान।
मजदूरी हू तब बढ़े, घटत कीर्ति तब जान॥ १०॥
मज़दूरी जब बढ़त है, श्रम तब ही घट जाय।
रहत पास धन श्रम नहीं, धन भंडार बिलाय॥ ११॥
अर्थ शास्त्र भारत कहें, वाकी रीत हि और।
अन्त हि को पछतांयगे, न करें अभी जो गौर॥ १२॥
इकोनमी अंगरेज़ि यह, नाना काम मझार।
धन देस हि में छोट कर, धन करना बिस्तार॥ १३॥

सूक्ष्म बात बूझन उचित, छोट लूट की तार।
सबल हि दुर्बल दोय में, को है लूटनहार ॥ १४ ॥
अन्धे बांटत शीरनी, घुर फिर निज जन देय।
सब धन आयो घर हि में, बदनामी नहि लेय ॥ १५ ॥
अंगरेज़ी में फल भयो, मज़दूरी बढ़िजाय।
बारह घंटा श्रम हि को, सात हि पर दिन जाय ॥ १६ ॥
बढ़ो मजूरी श्रम घटो, निलहे कोठी नील।
छोड़ छाड़ भागन लगे, लाभ मजूर हि गील ॥ १७ ॥
अर्थ शास्त्र की रीत से, सोच हु अब अंजाम।
श्रम कम से जग धन घटत, वा बढ़ने को नाम ॥ १८ ॥
अर्द्ध अरब मुद्रा गयो, ब्रीटन में हर साल।
अर्थ शास्त्र का फल यही, ब्रीटन में कंगाल ॥ १९ ॥
बलवान हि धन सोख लें, दुबले मरते भूख।
कहा ? नियम धन भाग को, दुबले को कब सूख ॥ २० ॥
खरच अती जब बढ़ि गयो, सके न लाभ पुराय।
मूल धन हु तब खान को, ईसानी हि उपाय ॥ २१ ॥
जो तू आया जगत में, कर्ज़ काढ़ि कर खाव।
सुखी रहेगी आतमा, रोय मरेंगे साव ॥ २२ ॥
दिन काटन की वस्तु सब, जहां न पैदावार।
उल्टा पुलटा धन लिये, करें लाख बेपार ॥ २३ ॥
धन की बात बिचारना, देस काल अरु पात्र।
हर देसन की जुद जुदी, बर्त्यो अर्थ हि शास्त्र ॥ २४ ॥
भारत में दरकार नहि, धन फैलावन रीत।
धान घर हि घर होत है, गयो प्रयोजन बीत ॥ २५ ॥

जाके घर अनपूरणा, काम धेनु जेहि गाय।
कल्प तरू जेहि बाग में, क्यों धन ही ललचाय ॥ २६ ॥
बिक्रम शक उन्नीस सौ, इतना था तब धान।
बारह बरस अकाल का, कर देता समधान ॥ २७ ॥
गांव गांव में बहुत थी, गो चारण की भूम।
गोरस भी परिपूर्ण था, पशुओं का भि हजूम ॥ २८ ॥
ढ़ाई मन का धान था, पांच सेर का घीव।
यह दौलत सब उड़ गई, सोना चांदी पीव ॥ २९ ॥
इकोनमी के जाल में, भारत धन फंसि जाय।
स्वर्ण रौप्य की चमकनि, सब का मन बदलाय ॥ ३० ॥
रह्यो न गोरस धान हूं, हर सन होवत काल।
सोना रूपा खाय कर, क्या जीये कंगाल ॥ ३१ ॥
सिक्का सोना लोट का, नहि भारत है काम।
इकोनोमी भारत जुदा, सिक्का केवल नाम । ३२ ॥
सिक्के की तेज़ी रहे, सस्ता हो धन धान।
गोरस मन्दा हूं रहे, सुख भोजन अरु पान ॥ ३३ ॥
सिक्के की तेज़ी रहे, कोइ न पूछे धान।
घर घर में अंबार हो, काल न होय निदान ॥ ३४ ॥
पैसा खोजत नहि मिले, लेको ऐग्रहि चीज़।
रोटी दाल-आसूद सब, वीर्य ज्ञान की बीज ॥ ३५ ॥
अन्न बदल होता जंहा, अन्नहि है ज़र खेज़।
अन्न मजूरी है जहां, क्या मंदा क्या तेज़ ॥ ३६ ॥
नियमित जाको लाभ है, इकोनमी तेहि ठौर।
मुक्त द्वार जेहि लाभ के, अंगरेज़ी तेहि तौर ॥ ३७ ॥

भूमी कर भारत प्रथम, लेत भावली राज।
मुक्त द्वार ताको कहें, फल देखो तेहि आज॥ ३८॥
अंगरेज़न नियमित कियो, देकर इस्तमरार।
चांदी मन्दी हीन ते, रोती है सरकार॥ ३९॥
बूझन सब को है उचित, सिक्का धन दो चीज।
आपुस में द्वय शत्रु है, जानो इसका बीज॥ ४०॥
सिक्का मन्दा होय जब, जिनस होय तब तेज।
भोलें मांगत दैव से, सिक्का देवहु भेज॥ ४१॥
खानतें की चांदी बन्द हों, हो भरि रुपय दो दाम।
दूनी सस्तो चीज हो, यह बूझन को काम॥ ४२॥
अतिथी के सत्कार को, रही जो भारत रीत।
अर्थ शास्त्र ही बदल कर, हुआ ठीक बिपरीत॥ ४३॥
आपुस में एक मेल को, रीति अतिथि सत्कार।
अर्थ शास्त्र के फेर से, हुआ मेल को ख्वार॥ ४४॥
गोरस अन बिकता नही, होत अतिथ सत्कार।
अब बिकि कर सिक्का भयो, कठिन दाम को कार॥ ४५॥
भारत मे दरकार यह, जौन गांव जो खर्च।
उससे थोड़ा अधिक ही, पैदा करन, हि चर्च॥ ४६॥
रूइ अन्न अरु घास हू, वांस किराना आदि।
मनुस काम की बस्तु सब; करत भूमि आवादि॥ ४७॥
बाग बगीचा फल हु को, गोचारण बन राख।
राख जतन करि पशु सकल, अर्थ शास्त्र दे साख॥ ४८॥
अन्य ग्राम की वस्तु कोइ, नहि लावन को काम।
निज ग्राम हि को वस्तु हूं, नहि बेचन को नाम॥ ४९॥

राजा करही लेत है,　　केवल ही एक धान ।
ग्राम हि में धंवार हो,　　निज ग्राम हि सब पान ।। ५० ॥
राजा की जेहि देन हो,　　निज निज ग्राम हि देय ।
चिन्ता और अभाव में,　　कोई नही पड़ेय ।। ५१ ॥
हक का झगड़ा होय जी, पंचायत कर लेय ।
बिन खरच हि हो फैसला, धन कुछ नहि खो देय ।। ५२ ॥

रसायन शास्त्र ॥ ४९१ ॥

द्रव्य स्वभाव-अरु रूप हूं,　　और गुण हु को ज्ञान ।
जाति हो कहते उसे,　　केमिसटरी विज्ञान ।। १ ।।
कहत केमिस्ट्री शास्त्र है,　　और रसायन ताहि ।
रस हि रसायनजी कहे,　　वह नहि जानो याहि ।। २ ॥
कहत खोजते कीमिया,　　निकल गयो यह ज्ञान ।
मिश्र अमिश्र हि द्रव्य के,　　ज्ञान हि मतलब जान ॥ ३ ॥
हरिक वस्तु को तोड़ कर,　　निश्चय कियो पदार्थ ।
वस्तू तोड़न को कहें,　　अनेलाइज़ शब्दार्थ ॥ ४ ॥
वस्तू तोड़त टूट गइ,　　ठहर्‍यो कई पदार्थ ।
मिश्र द्रव्य तेहि नाम धरि, कम्पौन्ड हि शब्दार्थ ॥ ५ ॥
जो वस्तू टूटी नही,　　कहें तेहि मूल पदार्थ ।
मानत वाको एक वस्तु,　　एलि मेन्टरि शब्दार्थ ॥ ६ ॥
मूल वस्तु जितनी कहें,　　अब तक जानी जाय ।
उनकी संख्या कहत हैं,　　चौसठ ही कहलाय ॥ ७ ॥

और अधिक है की नही, यह निश्चय नहि होय ।
ज्ञानी एलिमिन्ट हि कहै, है अपूर्ण ही जोय ॥ ८ ॥
पांच हवा एक तरल है, कठिन वस्तु कहु एक ।
धातु जाति और हि कहें, यह चौसठ प्रत्येक ॥ ९ ॥
अल बूमन एक वस्तु है, प्राणी देह मझार ।
वाहु नही तोड़न सके, पर नहि होय शुमार ॥ १० ॥
औक्सीजन एक गैस है, हैड्रोजन एक गैस ।
नाइट्रोजन अरु कारबन, क्लोरिन पंचम गैस ॥ ११ ॥
ब्रोमिन षष्ट हि कहत है, कहते द्रव हि पदार्थ ।
और नाम कहना वृथा, भाषा नहि शब्दार्थ ॥ १२ ॥
जानित इतने नाम है, गन्धक संखिय जान ।
रांगा जस्ता शीस कहु, लोहा सुरमा मान ॥ १३ ॥
तामा पारा कहत है, सोना रूपा जान ।
प्लाटीनम एक धातु है, अति भारी तेहि मान ॥ १४ ॥
कहते जग में द्रव्य जो, देखत है सब लोग ।
यह चौसठ या और हूं, तेहि रुपान्तर योग ॥ १५ ॥
मूल मिश्र ही होय कर, बदलत है कोइ रूप ।
कोई गुण कोइ रूप गुण, शक्ती वस्तु अनूप ॥ १६ ॥
वस्तु न की है शक्ति है, स्वाभाविक है एक ।
अन्य कहें रासायनिक, दोऊ करहु विवेक ॥ १७ ॥
नेचुरल केमिकल कहत है, नेचुरल तीन प्रकार ।
उत्ताप-अरु बल वीजली, अरु आकर्षण कार ॥ १८ ॥
ताप दिये धातू गले, रूप बदल हो जाय ।
फिर ठंढा करि देखिये, ज्यों की त्यों बनिजाय ॥ १९ ॥

पहु वस्त्र लाही घसी, बदलत है नहि रूप।
आकर्षण लघु वस्तु ही, बिजली श्रोत स्वरूप ॥ २० ॥
सूई लोहे में अगर, चुम्बक जो घस देय।
उत्तर को मुख ही करे, आकर्षण गुण देय ॥ २१ ॥
पारा गन्धक तापदे, रूप-अरु गुन बदलाय।
यह शक्ती रासायनिक, नई वस्तु हो जाय ॥ २२ ॥
तामा जस्ता मेलसे, पीतल जैसे होय।
बदलत गुण अरु रूप हूं, फेर अलग हू होय ॥ २३ ॥
मूल वस्तु चुद्रांस को, कहते हैं परमाणु।
ऐटम अंगरेज़ी कहें, मिश्र चुद्र ही आणु ॥ २४ ॥
मौली क्यूल्स कह उसे, भार दोउ ही ज्ञान।
सबसे हलका कहत है, हैड्रोजन ही मान ॥ २५ ॥
वज़न एक गुण याहिको, संकेत हि कर मान।
हैड्रो जन हि हिसाब पर, भारहि को परिमान ॥ २६
औक्सीजन कहते वज़न, सोलह संख्या जान।
सोलह गुण भारी अधिक, हैड्रोजन से मान ॥ २७ ॥
नाइट्रोजन या विध कहे, संख्या चौदह मान।
चौदह गुण भारी अधिक, हैड्रोजन से मान ॥ २८ ॥
कार्बन बारह जानिये क्लोरिन छत्तिस मान।
ब्रोमिन अस्सी कहत है, गन्धक बत्तिस मान ॥ २९ ॥
फ़स् फ़रास् एकतिस कहे, जस्ता चौसठ जान।
चोहत्तर है आर्स्निक, लोहा पचपन मान ॥ ३० ॥
एक सौ सतरह कहत है, रांगा भारी जान।
एक सो बादश सूरमा, तिरसठ तांबा मान ॥ ३१ ॥

सीसा दो सौ छः कहें, दो सौ पारा जान।
रूपा भारी कहत है, सौ अरु आठ बखान॥ ३२॥
सोना भारी कहत है, सौ छियानवे मान।
प्लाटीनम को कहत है, सौ सतानवे जान॥ ३३॥
चौसठ मूल पदार्थ के, नाम ग्रन्थ से जान।
गुण अरु वजन हु जानलो, अल्पहि यहां बखान॥ ३४॥
भारत यह विद्या न थी, नहीं रहा कुछ काम।
द्रव्य भेद भारत सुलभ, पंच तत्व में जाम॥ ३५॥
सूक्ष्महि इतना ही न हो, पर पूरा विज्ञान।
अन्तर भेद हि ज्ञान को, न ही प्रयोजन जान॥ ३६॥
परमाणू में गिनत हैं जितने मूल पदार्थ।
चौसठ हों वा अधिक हों, पूरे ही एकार्थ॥ ३७॥
द्रव्यों के कारण कहें, उपादान ही मूल।
चौसठ परमाणु हि कहें, करते नहीं कबूल॥ ३८॥
गृह के कारण ईंट है, मिट्टी सुरखी जान।
लोहा काठ हु कहत है, उपादान ही मान॥ ३९॥
यहि विध कारण जगत के, पंच भूत है जान।
पंच भूत ही शब्द में, सब का होना मान॥ ४०॥
गैस भुक्त जल वायु हो, पृथिवी सब हि पदार्थ।
व्योम तेज ही कहत है, स्पेस हीट शब्दार्थ॥ ४१॥
हीट भेद ही कहत है, बिजली बल को जान।
चुम्बुक शक्ती एक है, और हु कहते प्रान॥ ४२॥
अब जितनी बातें नई, निकली निकले और।
इनको अन्तर्गत करहि, कर लेते करि गौर॥ ४३॥

सब में सब ही मूल है, जिस दिन ही यह ज्ञान।
तब हि केमिस्ट्री जानिये, हुआ पूर्ण विज्ञान ॥ ४४ ॥
फरक पड़त इतनाहि है, हम से उनसे जान।
पांच तत्त्व ही हम कहैं, सब बस्तुन परधान ॥ ४५ ॥
अंगरेज़ी मत "मूल" सब, सब में सब नहि होय।
मनुष देह में कहत है, चौदह मूल हि सोय ॥ ४६ ॥
सोना पारा है नहीं, कहत मनुष में जान।
पर भारत औषध यही, मानत है परधान ॥ ४७ ॥
मनुष देह जब यह नहो, क्यों करता गुन जान।
आंख हि देखी दूर कर, भलमानुस का मान ॥ ४८ ॥
यौगिक द्रव्य हि उन्नती, यहि विद्या बल होय।
देखत हैं अतिशय नहीं, होय तजरिबा सोय ॥ ४९ ॥
ताज महल है आगरा, एक काल दिया बनाय।
दीप एक जलता रहा, गर्म जल हि हो जाय ॥ ५० ॥
जहांगीर के अमल से, अब तक जलता दीप।
ठंढा जल जा गरम हो, नहर हि निकट प्रदीप ॥ ५१ ॥
अंगरेज़ों ने खोद कर, देखा दीप हि जाय।
क्या गड़ बड़ ही कर दिया, दीया गया बुझाय ॥ ५२ ॥
कितना हू पटके सिर हु, फिर नहि सके बनाय।
कहत केमिस्ट्री शास्त्र पर, धूलो दियो उड़ाय ॥ ५३ ॥
नहि मेडिकल विज्ञान को, करता यही सहाय।
दो तिन गुण की औषधी, डॉकटर देय मिलाय ॥ ५४ ॥
केमिस्टरी यह योग गुण, कभी सकारत नाय।
एसिड गैसादिक कहैं, हवा लगत बदलाय ॥ ५५ ॥

जिसका गुण थिर है नहीं, कौन काम ही आय ।
चीज स्वभाविक यौगिक हि, तोड़ि फल हि क्या पाय॥ ५६ ॥
एक तमाशा देखना, अरु पैसा बरबाद ।
कल कांटा में बरतना, और नहीं कुछ याद ॥ ५७ ॥
ईश्वर ने जो वस्तु रचि, वहि आवत है काम ।
मनुष सधारन ज्ञान ही, देता है आराम ॥ ५८ ॥
पांच तत्त्व छः रसन से, गुण बीस हि से जान ।
तीन दोष अरु द्रव्य से, आयुर्वेद विज्ञान ॥ ५९ ॥
मूल वस्तु एक ब्रह्म है, अरु सब मिश्र हि जान ।
यह ज्ञान हि जब तक न हो, न हो पूर्ण विज्ञान ॥ ६० ॥
बिन होट अरु इस्पेस के, कोई वस्तु न होय ।
जोड़ जगत एलिमिन्ट है, जीव देह सब सोय ॥ ६१ ॥
तेज और आकाश को, कहते नहीं पदार्थ ।
भार नहीं यामें कहें, पर लेते भावार्थ ॥ ६२ ॥
इन के बिन वस्तु नहीं, कहत जगत कोइ चीज ।
याही ते दोउ वस्तु को, कहते द्रव्य हिं बीज ॥ ६३ ॥
पंच भूत जंह देखिये, जीव वहां ही होय ।
जड़ चेतन दोउ वस्तु हूं, जीव धारि सब कोय ॥ ६४ ॥
जो जीवहि उन्नत भये, चेतन कहते वाहि ।
उन्नत अब तक हों न जों, जढ़ हि नाम हो ताहि ॥ ६५ ॥
कहते इच्छा जीव है, जढ़ को इच्छा नाहि ।
दोनों में यहि भेद है, जढ़ को अलग हि राहि ॥ ६६ ॥
रोगी पत्थर एकसा, और मनुष बे होस ।
जंगली मानुस सम पशू, शिक्षित जन्तु हि पोस ॥ ६७ ॥

वृक्ष हु जन्तू खात हैं, सुख दुख करते बोध।
तारतम्य ही फरक है, डूबि कर हु अति शोध ॥ ६८ ॥
इच्छा है तो सब हि है, नहीं तो काहू नाहि।
जाकी जैसी ढंग है, तैसहि शक्ती वाहि ॥ ६९ ॥
जाको शिक्षा ज्यों मिल्यो, ताहि जीव त्यों साफ।
जनम जनम ही उन्नती, दिन दिन ही शफ़्फ़ाफ़ ॥ ७० ॥
एक कलहि की पूतली, चलती एक हि राह।
बहु प्रकार कल जोड़ दो, चाल बहू रंग वाह ॥ ७१ ॥
जड़ वस्तन स्वर शब्द हो, व्यंजन न ही उचार।
फ़ोन ग्राफ़ व्यंजन कहत, वह चेतन क्या कार ॥ ७२ ॥
तारतम्य जड़ शक्ति को, नाम धरी चैतन्य।
तब यामें कुछ नहि उजर, होत एक ही अन्य ॥ ७३ ॥
जंगली सभ्य हो दोय जन, पाते सम जब ज्ञान।
तब महिमा इस जीव की, चैतन्य हि कर मान ॥ ७४ ।
खूब समझ कर देख लो, मनुष जीव जड़ जान।
कुछ शक्ति नहि याहि में, जड़ से बढ़ कर मान ॥ ७५ ॥
इच्छा वामें कुछ नहीं, बंधी बात सब मान।
दैवी शक्ती एक भी, जड़ अतिरिक्त न मान ॥ ७६ ॥
याते जग की वस्तु सब, जड़ चैतन्य हि एक।
सब मे जीव विराजता, मूल हि सब सब एक ॥ ७७ ॥
पांच तत्त्व सब वस्तु में, जीव सबन के माहि।
तारतम्य के भेद से, जड़ चैतन्य कहाहि ॥ ७८ ॥

संगीत सार ॥ ४९१ ॥

गत अरु गीत हि जानना, अरु लिखने की रीत ।
जिस विद्या से होत है, कहत शास्त्र संगीत ॥ १ ॥
गीत गतहु सुन कर लिखे, लेख देख गा गीत ।
सुर लिपि याकी कहत हैं, शेष फल हि संगीत ॥ २ ॥
मात्रा अरु सुर दोय जड़, संगीत हि के माहि ।
सा, रि, ग, म, प, ध, नी सातसुर, तीन ग्राम है ताहि ॥ ३ ॥
सहज ग्राम के नीच एक, एक और तेहि ऊंच ।
सप्तक ताको हूं कहें, भेद नींच अरु ऊंच ॥ ४ ॥
प्रकृत सात यह सुर कहे, और बिकृत ही पांच ।
रे, ग, म, ध, नि यह विकृत है, बारह मिलि यह सांच ॥ ५ ॥
सहज ग्राम कुछ चिन्ह नहि, नीच तले विंदु देय ।
ऊंचे ऊपर बिन्दु हो, विकृत सिघाड़ा लेय ॥ ६ ॥
काल नाप मात्रा कहें, सोलह चिन्ह हि वाहि ।
सुरके सिर सोलह पड़े, एक हि मात्रा याहि ॥ ७ ॥
आठ हि आधी जानिये, चार हि सूकी जान ।
ठेर काल के भाग की, मात्रा लेहु पछान ॥ ८ ॥
एक एक चोट हि हाथ दे, काल सम हि कर लेय ।
एक एक मात्रा चोट हो, नही बेश कम देय । ९ ॥
सोलह में जो बोल है, कर पूरा एक चोट ।
मात्रा जानन हो गयो, इस में नहि कुछ खोट ॥ १० ॥
सुर साधन अब कहत हैं, तंबूरा एक तार ।
छेड़ उसी के साथ सुर, गल से दो ओंकार ॥ ११ ॥

ओंकार हु की साधना, है ईश्वर का नाम।
सुर के साथ हि मिलन की, वृत्ती है यह आम ॥ १२ ॥
साधत साधत मिलहिगी, गला तार के साथ।
मिलंत सुरों की साधि कर, करो गले को हाथ ॥ १३ ॥
साध साध कर दे बढ़ा, दम हि मिनिट वा आध।
तब सातो सुर देख लो, हरमनियम में साध ॥ १४ ॥
यह साधन है योग को, कहते प्राणायाम।
काया निर्मल होत है, कफ रहता नहि नाम ॥ १५ ॥
अहर बिहर को दोष गुण, सूझत आप हि आय।
तप साधन की साधना, स्वयं देत बतलाय ॥ १६ ॥
या बिध उपजे ज्ञान जब, पुस्तक लो मंगवाय।
लिखे गीत को देखकर, आप हि सकते गाय ॥ १७ ॥
अथवा गायक गान सुनि, मात्रा सुर लिखि लेय।
वाही से फिर याद करि, सहज गीत को गेय ॥ १८ ॥
मात्रा जोड़ हि छन्द रचि, कहते वाको ताल।
चौताले को मात्रा, कहते छ हैं काल ॥ १९ ॥
पहिली तीजी पांचवी, अरु छट्ठे पर ताल।
दोय लघु गुरु दोय है, चौताले को ताल ॥ २० ॥
ते ताले की मात्रा, कहते है सब चार।
दूजे तीजे प्रथम पर, देते है सब तार ॥ २१ ॥
झप ताले की पांच है, अड्डी दस है काल।
पहिली तीजी आठवी, पर देते है ताल ॥ २२ ॥
मात्रा सात धमार की, चौदह अडी काल।
प्रथम छठी अरु ग्यारवी, पर देते है ताल ॥ २३ ॥

सुर के सिर पर मात्रा, मात्रा के सिर ताल।
ताल हु का चिन्ह अंक है,या विध भयो कमाल ॥ १४ ॥
समकी फूल-अरु ताल की, अंक लिखन की रीत।
खाली को शुन्य हि लिखे, याही विध परतीत ॥ २५ ॥

तंत्र शास्त्र ॥ ८९२ ॥

नीच प्रवृत्तिन मार कर, साधन योग अपार।
तंत्र शास्त्र उल्टी कियो, राह विरुद्ध प्रचार ॥ १ ॥
नीच प्रवृत्तिन तृप्ति करि, देवि प्रत्यचाकार।
अल्प ध्यान से सिद्ध हो, तंत्र हि कियो प्रचार ॥ २ ॥
तंत्र शास्त्र अति श्रेष्ट है, महिमा कही न जाय।
सिद्ध पुरुष होते गये, अब सब गया बिलाय ॥ ३ ॥
और सब हि अब नष्ट हो, भ्रष्ट भयो बरबादि।
पंच मकार हि साधना, मदिरा मांस हि आदि ॥ ४ ॥
बंगाला मिथिलादि में, यह मत की बहु चाल।
अब निन्दा ही होत है, तुहमत हू हर हाल ॥ ५ ॥
तंत्र शास्त्र में कहत हैं, श्रेष्ट रसायन बात।
जा को कहत प्रताप है, यमराज हु फिर जात ॥ ६ ॥
जग में दामी बस्तु है, सब से बढ़ कर स्वारथ।
यह न होय तो सब वृथा, इस पर सब की आरथ ॥ ७ ॥
कोई रोग शरीर हो, तुरत करे आराम।
रसही उस को कहत हैं, इस ही का है काम ॥ ८ ॥

रस हैं बहुत प्रकार के, पर पारा यह ताल।
महिमा इसकी है बड़ी, बचा देत है काल ॥ ९ ॥
बावन तोला पाव रति, स्वर्ण रौप्य की बात।
अर्थ करे सो ठीक नहिं, सिद्दत हि धन करामात ॥ १० ॥
सोना रूपा खान बहु, प्रगटे जो जग माहि।
मुफ़्त मिले तो फल कहा, भयो रसायन माहि ॥ ११ ॥
एक धातु एक ही नहीं, ठीक हि ही यह बात।
तौभी यह सब बूझ ले, ईश्वर की करमात ॥ १२ ॥
अणु व्यापक जग रहत है, रौप्य स्वर्ण सब तत्त्व।
जगमें सब ही मानते, द्रव्य गुणों का स्वत्त्व ॥ १३ ॥
बूंटी का गुण मान लो, रांगा देय उड़ाय।
जगत अणू के ढेर से, रूपा लेय बुलाय ॥ १४ ॥
जिहि बिध वृक्ष हि बाढ़ते, कंकड़ भूमी माहि।
खान जिही बिध बाढ़ती, वही रीत है याहि ॥ १५ ॥
वह बूटी जहं जामती, मिलती भूमी साथ।
सब धातुन को दूर करि, निज धातू करे हाथ ॥ १६ ॥
यह विद्या जो सत्य हो, जानन हू कोइ पाय।
महा पाप तेहि करन यह, पंडित कहत बुझाय ॥ १७ ॥
केवल श्रम के द्वार से, धन होता जग माहि।
धन उस ही को कहत हैं, नहीं तो धन पन नाहि ॥ १८ ॥
रस फूकन की जो बिधी, लिखी है पोथिन माहि।
वह खादक ही कहत है, बेधक है वह नाहि ॥ १९ ॥
जग की माया जान कर, पायो है जिन ज्ञान।
भेद रसायन को वही, पात्र होय तब दान ॥ २० ॥

पन्द्रह पल हूं देर नहि, पैसे खर्च न एक।
लावा लेहु बटोरि के, वजन न होय विशेक॥ २१॥
गोरख नाथ-आदिक कहें, तांत्रिक मत अवधूत।
यह विद्या परकाश नहि, पूछत रहत सकूत॥ २२॥

व्याकरण॥ ४९३॥

भाषा का जेहि ज्ञान है, सकता भाव बुझाय।
वियाकरण पढ़ि धान तजि, भूसा कूटन जाय॥ १॥
पहिले भाषा सीख कर, पीछे सीखन ताहि।
या बिध चतुरन कहत हैं, काटी काल न वाहि॥ २॥
कर्त्ता कर्म क्रिया कहे, और विशेषण जान।
साधन रूप हि कहत हैं, संज्ञा क्रिया बखान॥ ३॥
सन्धी और समास हू, प्रत्यय कारक जान।
साहित्य हि के साथ ही, गुरु सुख सुन सन्धान॥ ४॥
पुंक्लीव स्त्रीलिंग हूं, भू कृ धातु हि रूप।
पद अरु अव्यय जान लो, गण को पाठ स्वरूप॥ ५॥
तद्धित और कृदन्त हूं, और प्रक्रिया जान।
उपसर्ग हु गण कहत हैं, भेद सब हि पहचान॥ ६॥
व्याकरण हि को कहत है, जब तक होय न ज्ञान।
जानित शब्दों के विना, निज कृत शब्द न मान॥ ७॥
भाषा ज्ञान हि होय ले, तब व्याकरण हि सीख।
भाषा की पटुता कभी, बिना याहि नहि दीख॥ ८॥

दाय भाग ॥ ४६४ ॥

सब से बढ़कर आपना, भाई है जग माह।
वाको शत्रु हि करत है, दाय भाग की राह ॥ १ ॥
भगनी को जो भाग नहि, वासे होती प्रीत।
या विध दाये भाग की, ज्ञानी कहे कुरीत ॥ २ ॥
राजा के घर भाग नहि, परजा के घर भाग।
परजा क्यों नहि बूझती, राज नीत की लाग ॥ ३ ॥
पुरुषारथ जब होयगो, भागहि धन हो नीच।
दाय भाग उठ जायगो, सड़े अदालत बीच ॥ ४ ॥
बेटे पोते कहत हैं, पर पोते हू जान।
असली दत्तक दोउ सम, अधोगामि धन मान ॥ ५ ॥
इजमाली परिवार नहि, यह तीनों नहि होय।
जोरू वारिस होयगी, हीन हियातहि सोय ॥ ६ ॥
फिर बेटी वारिस कहे, हीन हियातहु सोय।
बेटिन हों जब कइकही, या विध हक ही होय ॥ ७ ॥
कहत कुमारी हक प्रथम, फिर दरिद्र जेहि ब्याह।
पीछे धनी बिबाहिता, तिस पीछे यह राह ॥ ८ ॥
पुत्र हि आसा जाहि है, अरु आसा जेहि नाह।
विधवा वन्ध्या कहत हैं, हक समान ही राह ॥ ९ ॥
सब बेटिन के बाद हो, नातिन हक सम सोय।
नाति,न हो फिर जड़ हो, फिर गुतियन हक होय ॥ १० ॥
तीन पुश्त वारिस न हों, या गुतिये सब साथ।
जोरू बेटी नाति नहि, तब धने मांके हाथ ॥ ११ ॥

इजमाली परिवार हो, जोरुन खीर हि पीस ।
अलग हि जब परिवार हो, जोरु लेती खीस ॥ १२ ॥
माता हीन हियात हो, कहे जोरु के न्याय ।
ताहि मरन पर कहत हैं, धन बाप हि तब पाय ॥ १३ ॥
मां बापहि के पर कहें, भाई को अधिकार ।
पहिले इजमाली कहे, पीछे फरकहि कार ॥ १४ ॥
सौतेला इजमालि तब, तब सौतेल फराक ।
सौतेला जो साथ हो, अपना होय फराक ॥ १५ ॥
दोनों का हक सम कहें, हक बहिनहि कुछ नाय ।
ससुरालय में पावती, जो भाग्य हो वाय ॥ १६ ॥
भाई जब कोइ हो नहीं, सब भतीज सम पाय ।
बापहि पर हो भेद नहि, सब सम ही बटजाय ॥ १७ ॥
किसी भाइ के जीवते, मरै अगर कोइ भाइ ।
जीते का बेटा सभी, अन्य भतीजे नाइ ॥ १८ ॥
न हो भतीजे जाहिके, भाइ पौत्र नहि पाय ।
ऊर्द्ध गामि धन होय के, दादी को वर्ताय ॥ १९ ॥
भांजे का कुछ हक नहीं, उनकी नहि कुछ बात ।
दादि हि पर, दादा कहे, चचा सगे फिर पात ॥ २० ॥
सौतेले चाचा कहें, सगे चचेरै भाइ ।
और चचेरै भाइ हू, सौतेले कहलाइ ॥ २१ ॥
पर दादी फिर कहत है, परदादा फिर जान ।
उनके बेटे फेर तब, तब पोते तेहि मान ॥ २२ ॥
छर दादी फिर कहत है, छर दादा पर जान ।
पर दादा के भाइ हूं, फेर भतीजे मान ॥ २३ ॥

इसके पर कहे गोतिया, सात पुरुष ही जान।
क्रम क्रम ऊपर तैसही, सापिण्ड हि को मान॥ २४॥
समानोदक हि हक्क तब, नहि सपिंड जब होय।
ऊपर चौदह पुश्त हो, जल सम्बन्ध हि सोय॥ २५॥
जल वाले हू जब न हों, बंधू ही तब पाय।
बंधू तीन प्रकार के, वर्णन शास्त्र हि पाय॥ २६॥
एक फुफेरे भाइ है, अरु मौसेरे भाइ।
एक ममेरे कहत हैं, निज बंधु कहलाइ॥ २७॥
फिर बंन्धु त्रय बापके, फिर बन्धु त्रय माय।
क्रम क्रम हीं वारिस यही, गुतिया है जेहि नाय॥ २८॥
बन्धू हू नहि होय जेहि, आचार्य्यहि तेहि जान।
आचार्य्यहु नहि होय जेहि, वारिस शिष्य हि मान॥ २९॥
फिर कहते ब्रह्मचारि जो, बेद पढ़े है साथ।
फिर बिदुवा, ही ब्राह्मण, ब्राह्मण ही धन हाथ॥ ३०॥
और जात ब्राह्मन न हो, लावारिस तेहि राह।
राजा वारिस ताहिको, जब कोइ है नहि राह॥ ३१॥
इस्त्री धनही दाय क्रम, कहत और ही तौर।
एक पुश्त ही क्रम रहे, फिर साधारन गौर॥ ३२॥
ब्याह हि में जो धन मिले, जात मिले ससुरार।
मुह दिखाइ अरु प्रीत धन, इस्त्री धन हि करार॥ ३३॥
कहत कुमारी प्रीत धन, भ्राता पित अरु माय।
पितृ कुलहि का होव हक, क्रम से हक को पाय॥ ३४॥
इस्त्री धन जो ब्याह का, कन्या है हकदार।
कन्याओं का भेद वहि, जो साधारण कार॥ ३५॥

फिर वारिस ही पुत्र हो, जब कन्या नहि होय।
फिर नातिन ही कहत हैं, पौत्र परहि तब सोय॥ २६॥
यह सब हू नहि होय जब, ब्राह्म विवाह हि होय।
स्वामी पहिले भाइ पर, वारिस या पित्र होय॥ २७॥
नीच रीत से व्याह हो, स्वामी कुछ नहि पाय।
भ्राता पितु माता कहे, वारिस यों वरताय॥ २८॥

समाप्त।

अथ आयुर्वेद विज्ञान ॥ ४९५ ॥

बहु दरशी बहु जांच कर, काढ़त नियम हि छान।
घटत नियम सर्वत्र ही, ताहि कहत विज्ञान ॥ १ ॥

अथ आयुर्वेद विज्ञान मूल आधार।

रस(१)गुण(२)दोष(३)स्पर्शहू(४),वीर्य्य(५)विपाक(६)प्रभाव(७)।
और द्रव्य (८)इन आठ पर,आयुवेद वरताव ॥ २ ॥

(१) अथ रस प्रकरण।

स्पर्श होत हो जीभ से, जिस का अनुभव होय।
रस हु टेस्ट अरु ज़ायका, स्वाद मज़ा हूं सोय ॥ ३ ॥
जग में जितनी वस्तु हैं, सब में है इक स्वाद।
स्वाद गुण हि जो जान ले,सब औषध हों याद ॥ ४ ॥
मीठा खट्टा लवन है, कटु कसैल अरु तीत।
छः प्रकार के स्वाद हैं, कहते जग मानीत ॥ ५ ॥
व्यक्त रस हि को रस कहैं, फीका कहे अव्यक्त।
फीका सब रस होत है, वाको चीन्हन सक्त ॥ ६ ॥
छः रस मिश्र जु होय सम, होते तिरसठ जान।
बत्तिस मीठे, सोल ही, खट्टे की गण मान ॥ ७ ॥

आठ लवन कटु चार ही, दो तिक्त-एक कषाय।
वज़न भेद जो पै गिने, गिनती कही न जाय ॥ ८ ॥
कोइ बूटि अस होत है, छूवत ही मर जाय।
अन जानी बूटी कभी, बिन जाने नहि खाय ॥ ९ ॥
सतरह भेद हि रस कहत, सब वरणन नहि कीन्ह।
नकशा महि बूझी सभी, यहां स्वल्प कह दीन्ह ॥ १० ॥
रसकेनाम(१)अरुगुण(२)कहे,गुण विरोधि हूं और (३)।
वर्द्धक(४)नाशक(५)दोष हूं, वीर्य्य(६)स्पर्श(७)हु तौर ॥ ११ ॥
और बिपाक(८)प्रभाव(९)है, तुल्य(१०)विरोधी(११)बात।
जन्म काल(१२)अरु भेद हूं,मिश्र(१३)कहेअरुजात(१४)॥१२॥
गणना(१५)अरुसेवनफलहु(१६),अति सेवन(१७)फल और।
या विध सतरह भेद के, चक्रहि पर कर ग़ौर ॥ १३ ॥

मधुर रस। १।

कफ़ वर्द्धक मिष्ट हि कहें, गुण स्निग्ध गुरु शीत।
बायू पित नाशक कहें, मीठे की यह रीत ॥ १४ ॥

अम्ल रस।२।

पित कफ़ वर्द्धक अम्ल है, वायू नाशक जान।
गुण लघु उष्ण स्निग्ध है, खट्टा रस यों मान ॥ १५ ॥

लवण रस । ३ ।

पित कफ वर्द्धक लवन है, वायू नाशक जान ।
गुण गुरु उष्ण स्निग्ध है, लवन हि कियो बखान ॥ १६ ॥

कटु रस । ४ ।

वायू पित वर्द्धक कहें, कफ नाशक कटु जान ।
ऊष्ण रुच लघु गुण कहे, कटु रस वर्णन मान ॥ १७ ॥

तिक्त रस । ५ ।

वायू वर्द्धक तिक्त है, पित कफ नाशक जान ।
गुण शीतल लघु रुच है, तिक्त रस हि यह जान ॥ १८ ॥

कषाय रस । ६ ।

रस कषाय है वायु कर, पित कफ नाशक जान ।
गुण शीतल गुरु रुच है, कषा प्रभाव हि मान ॥ १९ ॥

रस वीर्य्य ।

अम्ल लवन कटु तीन रस, ऊष्ण वीर्य्य ये जान ।
मिष्ट-अरु तिक्त कषाय रस, शीत वीर्य्य पहचान ॥ २० ॥

पित कर नाशक वायु कफ, ऊष्ण वीर्य्य ही जान ।
पित नाशक कफ वायु कर, शीत वीर्य्य पहचान ॥ २१ ॥

रस विपाक ।

कइ वस्तुन की होत है, रसना में एक स्वाद ।
पाक भये पर पेट में, बदल जात है स्वाद ॥ २२ ॥
पाक भये जो स्वाद हो, कहत उसे रस पाक ।
पाक मधुर मधुर हि रहत, जान हु भेद विपाक ॥ २३ ॥
अम्ल अम्ल लवन हि मधुर, कटू कटू कह दीन ।
तिक्त कषाहूं कटु बनत, रस विपाक है तीन ॥ २४ ॥
रस विपाक पर भेद मत, देखत शास्त्र मझार ।
मिश्र रस हि के द्रब्य में, भेद विपाक हि कार ॥ २५ ॥
बदलत जाहि विपाक रस, वह रस मिश्र हि जान ।
यह युक्ती खोटी नहीं, हो जाता समधान ॥ २६ ॥
कफ कर मधुर विपाक है, नाशक है पित वाय ।
पित कर अम्ल विपाक है, कफ नाशक अरु वाय ॥ २७ ॥
वायू नाशक कटु कहे, कफ पित कर है जोय ।
गुण विपाक या विध कहे, नियम सधारण सोय ॥ २८ ॥
जोई रस को द्रव्य हो, जब नहि जीरन होय ।
अम्ल होय रस पेट में, रस विपाक नहि सोय ॥ २९ ॥

प्रभाव शाली रस ।

• (जो इस नियम से बाहर अन्य नियम में गयय है ।)

रस ही में जो गुण कहे, बदल जु गुण की होय ।
दोष फल हु बदले तभी, नियम विशेष हु सोय ॥ ३० ॥
साधारन रस नियम में, द्रव्य सधारन जान ।
नीयम बाहर औषधी, चमत्कार तेहि मान ॥ ३१ ॥

मधुर रस के गुण भेद ।

गुरु स्निग्ध शीतल कहें, जोइ मधुर गुण आम ।
बदले यह गुण मधुर के, बदले फल तेहि काम ॥ ३२ ॥
मधुर रस हि लघुता रहे, और रुक्षता जान ।
शीतलता वामें रहे, वायु नाश मत मान ॥ ३३ ॥
तीक्ष्ण ऊष्ण लघु होय जो, पित नाशक मत मान ।
आम नियम के पलट से, गुण प्रभाव यह जान ॥ ३४ ॥
शुद्ध मधुर रस आम गुण, मिश्र मधुर बत्तीस ।
अन्य रसों के योग से, गुण ही छन्निस बीस ॥ ३५ ॥
कफ बर्द्धक सब मधुर रस, पर इन में वह नाहि ।
कहे प्रभाव इस शक्ति की, लघुता कारण जाहि ॥ ३६ ॥
चावल कहत पुरान है, गहूं मूंग यव जान ।
मधु चीनी मिसरी कहें, गुरुतो याहि न मान ॥ ३७ ॥

मीठो विषहू कहत हैं, वाहु नियम यह नाहि ।
उष्ण होय बदल्यो गुणहु, शीतलता तेहि नाहि ।। ३८ ।।

अम्ल रस के गुण भेद ।

लघु स्निग्ध अरु ऊष्ण है, गुण अम्ल हि की आम ।
बदले यह गुण द्रव्य में, बदले फल अरु काम ।। ३९ ।।
शुद्ध अम्ल रस आम गुण, मिश्र अम्ल रस और ।
सोलह मिश्र हि अम्ल है, मिश्र द्रव्य गुण तौर ।। ४० ।।
पित वर्द्धक अम्ल हि कहें, पित वर्द्धक यह नाहि ।
ओला और अनार हूं, कारण शीतल वाहि ।। ४१ ।।

लवण रस के गुण भेद ।

स्निग्ध ऊष्ण अरु गुरु कहे, गुण साधारण लोन ।
बदले गुण फल ताहि हो, जो गुण वदल्यो तौन ।। ४२
सब हि लवन गुण ऊष्ण है, हित कर नहि सब लोन ।
सैन्धव शीतल कहत हैं, हित कर है यह नोन ।। ४३ ।।
सैन्धव में है मिष्टता, मिष्ट शीत गुण होय ।
मिष्ट गण हि के बीच यह, केवल लवन न सोय ।। ४४ ।।
मिष्ट लवन गण आठ है, सैन्धव वामें नाहि ।
तीजो सैन्धव जानिये, बत्तिस मिष्ट हि माहि ।। ४५ ।।

कटु रस के गुण भेद ।

कटु के गुण जो कहत हे, रुच ऊष्ण लघु तीन ।
इन के गड़ बड़ होन ते, नियम वाह्य कर दीन ॥ ४६ ॥
दूजी गुण जोई मिले, फल उनके तब होंय ।
नहीं तो नीयम जो कहे, ठीक हि रहते सोय ॥ ४७ ॥
कफ नाशक कटु गुण कहे, मूली में वह नाहि ।
कफ वर्द्धक गुण याहि को, शीतल कारण वाहि ॥ ४८ ॥
नाशक शुक्र हि कटु कहे, पर लहसुन अरु प्याज ।
धातु पुष्ट ही करत है, पीपल सोठ हु आज ॥ ४९ ॥
स्निग्ध गुण हि इन को भयो, मधुर रस हु मिल जाय ।
ताते फल बदल्यो कहें, गुण प्रभाव बतलाय ॥ ५० ॥
मिश्र कटू गुण चार है, यह सब उन में नाहि ।
अन्य रसों के मेल से, गुण प्रभाव दिखलाहि ॥ ५१ ॥

तिक्त रस के गुण भेद ।

गुण लघु शीतल रुच है, तिक्त हि को गुण आम ।
पलवल और गुलंच को, बदल्यो सब ही काम ॥ ५२ ॥
स्निग्ध ऊष्ण पलवल कहे, मिश्र मधुर कटु जान ।
ऊष्ण हि कहत गुलंच हूं, बहु रस मिश्रित मान ॥ ५३ ॥
मिश्र तिक्त दो जात है, यह नहि तिक्तन माहि ।
इन की गणना होत है, मधुर मिश्र के माहि ॥ ५४ ॥

कषाय रस के गुण भेद ।

काविज़ कहत कषाय सब, रेचक हर्रे जान ।
पांच रस हि यामें बसि, एक लवन नहि मान ॥ ५५ ॥
गणना मिश्र कषाय की, एक कषाही जान ।
रस प्रधान मे जा मिल्यो, भिन्न रस हि कहलान ॥ ५६ ॥
मधुर रस हि के बीच मे, हड उन्तिसवां जान ।
हरीतकी गणना हुई, नहि कषाय बिच मान ॥ ५७ ॥

अज्ञात नियम प्रभाव ।

उत्तम बस्तू दर्शन हु, अरु सुगन्ध आघ्रान ।
मिष्ट शब्द की श्रवण ही, स्पर्श हि को गुण जान ॥ ५८ ॥
वस्त्र अलंकार हि कहे, स्वर्ण रौप्य रत्न-और ।
गुण प्रफुल्लता कहत है, कहत प्रभावहि तौर ॥ ५९ ॥
हौलदिला दी पत्थर हु, सहदेवी जड़ि आद ।
बांधि देह फल होत है, फल प्रभाव रख याद ॥ ६० ॥
अस्तुत निन्दा शब्द हूं, भक्ति द्वेष हु जान ।
मंत्र योग को शक्ति हूं, गुण प्रभाव ही मान ॥ ६१ ॥
कहे प्रभाव दय भांत हीं, बदल नियम एक जान ।
जाको जानत नियम नहि, दूजी वह पहचान ॥ ६२ ॥
जानत नहि जाको नियम, फल निश्चय हो जाय ।
ज्यों अदृष्ट जग काम में, त्यों प्रभाव बदलाय ॥ ६३ ॥

रसों का वर्द्धक नाशक।

(फल स्मरणार्थ एकत्रित संग्रह।)

वर्द्धक वायू नाश कफ, कटु अरु तिक्त कषाय।
मिष्ट अम्ल लवनहि कहें, कफ कर नाशक वाय॥ ६४।
पितकर अम्लहि लवन कटु, इनका गुण कहलाय।
पित नाशक कहते यही, मिष्ट अरु तिक्त कषाय॥ ६५॥

इति रस प्रकरण।

---

(१) अथ गुण प्रकरण।

जगमें जितनी वस्तु हैं, सबमें है गुण कोइ।
उनकी संख्या बीस है, आयुर्वेद हि जोइ॥ ६६॥
गुर (१) लघु (२) शीतल (३) ऊष्ण हूं (४),
स्निग्ध (५) रूच (६) अरु मन्द (७)।
तीक्ष्ण (८) स्थिर (९) सर (१०) मृदु (११) कठिन (१२),
पिच्छिल (१३) विशद (१४) हि चन्द॥ ६७॥
खर (१५) श्लक्ष्ण (१६) स्थुल (१७) सूक्ष्म (१८) है,
सान्द्र [१९] द्रव [२९] हि यह जान।
उल्टे पुल्टे गुण कहे, नाम बीस यह मान॥ ६८॥
इनमें दोही गुण कहे, ऊष्ण शीत परधान।
और अठारह गुणन की, उप गुण ही कर मान॥ ६९॥

दोऊ गुण परधान हीं, बीर्य्य हि नाम धराय।
और गुणों के योग से, द्रव्य हि भेद बनाय॥ ७० ॥
आदि छ गुण वरतत बहू, छः रस के आधार।
भेद योग सब गुणन से, द्रव्य भेद विस्तार॥ ७१ ॥
ग्यारह भेद हि गुण कहे, सब वरणन नहीं कीन्ह।
नकशा महि बूझो सभी, यहां स्वल्प कह दीन्ह॥ ७२ ॥

नाम [१] अर्थ [२] अरु दोष का,
वर्द्धक [३] नाशक [४] जान।
कौन श्रेणि रस में बसे [५],
गुण विरुद्ध हू मान॥ ७३ ॥
तत्व जात [७] अरु काल हूं [८],
कार्य्य [९] द्रव्य [१०] हू जान।
सेवन फल गुण ग्यारवां [११],
चक्र हि कियो बखान॥ ७४ ॥

गुरु गुण। १।

प्रथम गुण हि गुरु को कहें, भाषा भारी जान।
कफ वर्द्धक गुण याहि को, वायू नाशक मान॥ ७५ ॥

लघु गुण। २।

दूजे गुण को लघु कहें, भाषा हलका जान।
वायू वर्द्धक लघु कहें, कफ को नाशक मान॥ ७६ ॥

शीतल गुण। ३।

तीजो गुण शीतल कहें, ठंढा सर्द हु जान।
वायू कफ वर्द्धक कहें, नाशक पित हु मान॥ ७७॥

ऊष्ण। ४।

चौथा ऊष्ण हि कहत है, भाषा गर्म कहाय।
पित वर्द्धक ऊष्ण हि कहें, नाश करत कफ वाय॥ ७८॥

स्निग्ध। ५।

पंचम कहत स्निग्ध गुण, तर भाषा कह जान।
पित कफ वर्द्धक कहत है, नाशक वायू मान॥ ७९॥

रुच। ६।

छट्ठां रुच हि कहत है, रूखा खुश्क हु जान।
वायू वर्द्धक कहत है, नाशक कफ पित मान॥ ८०॥

मन्द। ७।

सप्तम मन्द हि कहत है, भाषा धीमा जान।
वायू वर्द्धक कहत है, नाशक कफ पित मान॥ ८१॥

तीक्ष्ण । ८ ।

तीक्ष्ण हि अष्टम गुण कहें, भाषा तेज़ कहाय ।
पित वर्द्धक तिक्ष्ण हि कहें, नाशक कहते वाय ।। ८२ ।।

स्थिर । ९ ।

नवम स्थिर गुण कहत हैं, थिर क़ायम कहलाय ।
स्थिर गुण कफ़ वर्द्धक कहें, नाश करत पित वाय ।। ८३ ।।

सर । १० ।

दसवें गुण को सर कहें, चालक सारक जान ।
वायू पित वर्द्धक कहें, कफ़ को नाशक मान ।। ८४ ।।

मृदु । ११ ।

एकादस मृदु गुण कहे, कोमल नरम कहाय ।
कफ़ वर्द्धक मृदु गुण कहे, नाशक कहु पित वाय ।। ८५ ।।

कठिन । १२ ।

बारहवां गुण कठिन है, कर्कश सख़्त कड़ाहि ।
ग्रन्थन में नहिं देखते, दोष वर्णना ताहि ।। ८६ ।।

मृदु गुण कफ़ वर्द्धक कह्यो, कठिन विरोधी वाहि।
याते वर्द्धक वायु पित, कफ़ नाशक कहे ताहि॥ ८७॥

पिच्छिल। १३।

तेरहवां पिच्छिल कहें, चट चट लावहि दार।
कफ़ वर्द्धक गुण कहत हैं, वायू नाशक कार॥ ८८॥

विशद। १४।

चौदह वां गुण विशद है, सादा साफ़ हि जान।
वायू वर्द्धक कहत है, कफ़ नाशक तेहि मान॥ ८९॥

खर। १५।

पन्द्रहवां खर गुण कहें, खर खर ही आकार।
आशु गुण हि वाकी कहें, अती शीघ्र ही कार॥ ९०॥
जल विच जैसे तेल ही, झट ऊपर छा जाय।
यह गुण तैस हि देह में, पहुचत ही फैलाय॥ ९१॥
खर गुण वर्द्धक वायु है, नाशक लिखते नाहि।
याही ते अनुमान करि, ज्ञाता ही बुझि जाहि॥ ९२॥

श्लक्ष्ण गुण । १६ ।

सोलहवां गुण श्लक्ष्ण है, स्नेह शून्य तेहि जान ।
कठिन वस्तु चिकनी रहे, चमकीली हू मान ॥ ८३ ॥
जैसे बुकनी कांच की, खर खर लगे न हाथ ।
चिकनई हूं वामें न ही, स्पर्श चीकना साथ ॥ ८४ ॥
वर्णन दोष हु याहि गुण, लिख्यो नहीं है जान ।
खर हि विरोधी जान कर, वायू नाशक मान ॥ ८५ ॥

स्थूल गुण । १७ ।

स्थूल हि सतरहवां कहैं, मोटा भाषा जान ।
स्थूल विरोधी सूक्ष्म से, वायू नाशक ज्ञान ॥ ८६ ॥

सूक्ष्म गुण । १८ ।

कहे अठारह सूक्ष्म गुण, बारीक-और महीन ।
वायू वर्द्धक गुण कहे, वर्णन नाश न कीन ॥ ८७ ॥

सान्द्र गुण । १९ ।

उन्निसवां है सान्द्र गुण, सूखा ठोस हु जान ।
सान्द्र विरोधी द्रव हि से, पित नाशक अनुमान ॥ ८८ ॥

द्रव। २०।

कहत बीसवां द्रव गुण हि, बहने वाली चीज।
पित वर्द्धक गुण कहत है, नाशक नहि तजबीज ॥ ९९ ॥

चरक मत हि गुण बीस यह, है मत भेद हि याहि।
संख्या बीस हि कहत है, फरक नाम है ताहि ॥ १०० ॥
एक व्यवायी गुण कहे, और विकाशी एक।
एक सुगन्ध हि तीसरा, अरु दुर्गन्ध हु एक ॥ १०१ ॥
नये बढ़े यह चार ही, और घटाए चार।
या विध पूरी कर दियी, गनती बीस मझार ॥ १०२ ॥
श्लक्ष्ण हि में पिच्छिल धरे, कर्कश विशद हि माह।
स्थूल सान्द्र एक हि करे, स्थिर ही मन्द गिनाहि ॥ १०३ ॥
आशू कारी खर कहे, या विध मेल मिलाय।
नहीं तो चौविस गुण बने, बहु झगड़ा लग जाय ॥ १०४ ॥

इति गुण प्रकरण समाप्त।

(२) अथ दोष प्रकरण।

पांच तत्त्व की देह जड़, धरती और अकास।
जड़ वस्तू होती नहीं, इनके बिना प्रकास ॥ १०५ ॥
अंगरेजी इस्पेस ही, कहते नाम अकास।
न हो जमावट वस्तु की, बिन इस्पेस हि खास ॥ १०६ ॥

पालत है जढ़ देह की, अग्नी जल अरु वाय ।
बढ़त घटत अरु मरत है, इनही से कहलाय ॥ १०७ ॥
ठीक रहत जब तीन यह, स्वास्थ रहे तब गाय ।
दूषित हो दोष हि कहे, कहे कफ़ पित अरु वाय ॥ १०८ ॥
जीव शक्ति को ह्रास हो, कहत दोष है बाय ।
रूह रोह को भेद हो, यूनानी बतलाय ॥ १०९ ॥
दुर्बलता जिस शक्ति से, शिरा हो समरथ हीन ।
नरवस डिसीज़ हि वायु को, अंगरेज़ी कह दीन ॥ ११० ॥
एनिमल हीट हि पित्त है, जलिय भाग जो देह ।
कफ़ वाही को कहत हैं, इस में नहि सन्देह ॥ १११ ॥
सारे रोगहि जगत के, तीन दोष के माहि ।
औषध सारे कहत है, तीन हि फल हो ताहि ॥ ११२ ॥
कोइ दोष की क्षीणता, कोई वर्द्धित होय ।
नाशक दोष-औषध कोइ, वर्द्धक दोष हु कोय ॥ ११३ ॥
दोष वढ़न आरम्भ हो, संचय वाको नाम ।
कहे प्रकोप जब प्रबल हो, दिखलावे निज काम ॥ ११४ ॥
समता जब हो दोष को, कहें उपशम वा शान्त ।
स्वाभाविक से न्यून हो, क्षीण दोष नामान्त ॥ ११५ ॥
वायू पित कफ़ तीन यह, दो दो मिल हो तीन ।
वात श्लेष्महु वात पित, श्लेष्म पित्त कह दीन ॥ ११६ ॥
तीनों मिल करि एक हों, कहत त्रिदोष हु ताय ।
इन्हो सात के भेद में, रोग-औषध जगमाय ॥ ११७ ॥
और सूक्ष्म कर लो अगर, बासठ भाग हु दोष ।
एक स्वास्थ मिल तिरसठहि, कहत दोष को कोष ॥ ११८ ॥

तिरसठ भाग जु है इधर, भेद छ रस की जान ।
औषध रोग समान ही, सृष्टि कियो भगवान ॥ ११९ ॥
बीस भेद दोष हु कहे, सब वर्णन नहि कीन्ह ।
चक्र माहि बूझो सभी, स्वल्प यहां कह दीन्ह ॥ १२० ॥
दोषन की नाम हु कहे(१), और कहे गुण ताहि (२) ।
और बिरोधी गुण कहे (३),बाह्य गुण हु कहे वाहि(४)॥ १२१॥
दोष बिरोधी हू कहे (५), सम गुण दोष हु जान ६ ।
वर्द्धक(७)नाशक,रस,कहे[८],वीर्य्य हु कियो बखान(९)॥ १२२ ॥
देश(१०) कहे अरु कालहूं,अयन ऋतू दिन रात ।
कहे वयक्रम भोजन हुं, समय समयकी बात(११) ॥ १२३ ॥
मनुष प्रकृति(१२)अरुदेहमें,कहते वास स्थान (१३)
स्वाभाविक लक्षणकहे(१४),हेतु प्रकोप हि मान(१५) ॥ १२४ ॥
लक्षण क्षीणहुदोषकी(१६),लक्षण पूर्वहि रोग (१७)
रोगहुकी लक्षण कहे(१८),अरु उपशय की भोग[१९]॥ १२५॥
बीस,कहत,अनुपानही[२०],दोषन चक्र दिखाय ।
ग्रन्थ बढ़न भय हेतु सें, नक़शा दियो बनाय ॥ १२६ ॥

वायु वर्द्धक गुण । १ ।

रुक्ष लघू खर विशद है, शीत सूक्ष्म सर और ।
मन्द आठवां कहत हैं, गुण वायू कर ग़ौर ॥ १२७ ॥

वायु नाशक गुण । २ ।

गुरु स्निग्ध अरु ऊष्ण है, पिच्छिल श्लक्ष्ण स्थूल ।
स्थिर अरु तीक्ष्णहि कहत है, वायू नाशक मूल ॥ १२८ ॥

पित्त वर्द्धक गुण । ३ ।

ऊष्ण तीक्ष्ण द्रव सर कहैं, स्निग्ध हि पंचम जान ।
पित वर्द्धक गुण पांच यह, आयुर्वेद बखान ॥ १२८ ॥

पित्त नाशक गुण । ४ ।

शीत मन्द अरु सान्द्र है, रुक्ष स्थिर यह पांच ।
पित नाशक गुण पांच यह, करहु ठीक जिय आंच ॥ १३० ॥

कफ वर्द्धक गुण । ५ ।

मृदू गुरु स्थिर शीत है, पिच्छिल स्निग्ध हु जान ।
कफ वर्द्धक यह षष्ठ गुण, बहु करि राखौ ध्यान ॥ १३१ ॥

कफ नाशक गुण । ६ ।

विशद लघू सर कठिन है, ऊष्ण रुक्ष ही जान ।
कफ नाशक यह षष्ठ गुण, आयुर्वेद बखान ॥ १३२ ॥

देश वर्णन । ७ ।

तीन प्रकार हि देश हैं, भारत वर्षहि माह ।
जांगल और अनूप है, एक सधारन राह ॥ १३३ ॥

जांगल देश लक्षण । ८ ।

धरती में जल दूर हो, झरना कूप तड़ाग ।
अल्प होय वृक्ष हु जहां ग्रीष्म गरम हो आग ॥ १३४ ॥
वृक्ष होय फलवान पर, शमि बकवन झड़बेर ।
बरषा कम बरखे वहां, नहीं जगह हो सैर ॥ १३५ ॥
ऊष्ण रूक्ष वायू प्रबल, जन कृष पर बलवान ।
हरिन भालु आदी पशू, जन्मत जांगल जान ॥ १३६ ॥

अनूप देश लक्षण । ९ ।

नीच ऊंच जल बहुत हो, नदी जलाशय बाह ।
पर्वत भी रमणीय है, बरखा दुर्गम राह ॥ १३७ ॥
जनमत जहां मनुष्य है, देह मृदू सुकुमार ।
चकवा सारस हंस हूं, जहां लेय औतार ॥ १३८ ॥
शूकर शशक अरु महिष हूं, हस्त्यादी पशु होय ।
लघु विशाल बहु वृक्ष हों, फल फूलहु बहु होय ॥ १३९ ॥
उपजत केला ऊंख है, धान बहू बिध होय ।
मृदु शीतल वायू बहे, देश अनूप हि सोय ॥ १४० ॥

साधारण देश लक्षण । १० ।

दोऊ लक्षण हो जहां, साधारण वहि देश ।
उत्तम गिनती वाहि की, यही अति श्रेष्ट प्रदेश ॥ १४१ ॥

देश दोष । ११ ।

वात पित्त वर्द्धक कहें, जांगल देश हि मान ।
वात श्लेष्मिक देश है, कहत अनूप हि जान ॥ १४२ ॥
मिले जुले जो देश दोउ, मिले जुले गुण होय ।
तारतम्य जो देश गुण, जांचहि निश्चय होय ॥ १४३ ॥
याते निश्चय होयगो, भूगोल हि के बीच ।
कौन हि डिगरी देश है, कौन दोष के बीच ॥ १४४ ॥
कफ प्रकृती कफ रोग को, जांगल हो शुभ देश ।
पौत्तिक कहें अनूप हो, उपयोगी हि प्रदेश ॥ १४५ ॥
उपयोगी सब लोग को, देश सधारण होय ।
साधारण उत्तम गिने, श्रेष्ठ सकल हो सोय ॥ १४६ ॥

काल वर्णन । १२ ।

समय व्यतीत हि होय जो, कहते उसको काल ।
सूर्य चन्द्र गति हेतु हो, भाग मास अरु साल ॥ १४७ ॥
जग विराट जो रूप है, रोग ताहि हो काल ।
पित कफ वायू दोष के, तार तम्य हो हाल ॥ १४८ ॥

जिस ऋतु में जो रोग हो, उत्पति औषध सोय।
सोइ ऋतुन में जनम करि, उपशम साधन होय ॥ १४९ ॥
जोइ विराट स्वरूप है, जन जन हूं है सोय।
वही रोग वहि औषधी, ठहरायी है जोय ॥ १५० ॥
नियम जगत व्यभिचार हो, औषध हो व्यभिचार।
नियम तोड़ि परभाव से, धातु विष हि अवतार ॥ १५१ ॥
भिन्न देश की औषधी, तुल्य वीर्य्य नहि होय।
या को उचित विचारना, अति कर्तव्य हि सोय ॥ १५२ ॥
अयन ऋतु अरु मास हूं, अहनिश भोजन काल।
और वयक्रम गिननकी, आयुर्वेद हि चाल ॥ १५३ ॥

अयन । १३ ।

कर्क आदि धनु तक कहें, दखिणायण को काल।
छः संक्रान्ती मास हो, क्रम से शीत रसाल ॥ १५४ ॥
स्निग्ध गुण हि क्रमक्रमबढ़े, तारतम्य पहचान।
पित कफ वर्द्धक जानिये, वायू नाशक मान ॥ १५५ ॥
मकरहि से ले मिथुन तक, उतरायण को काल।
क्रम क्रम रुचहि बढ़त है, यह छ मास हरसाल ॥ १५६ ॥
वायू वर्द्धक कहत हैं, कफ पित नाशक जान।
तारतम्य के क्रम हि पर, रखना पूरा ध्यान ॥ १५७ ॥

छः ऋतु। १४।

हर सन छः ऋतु होत हैं, भारत वर्ष मझार।
गंगा दच्छिण वाम ही, ऋतु हैं दोय प्रकार॥ १५८॥
दच्छिण बरखा ही बहू, जाड़ा बामहि पार।
याही ते ऋतु भेद हो, दोऊ देश मझार॥ १५९॥
बैद्य शास्त्र नोयम नही, दोउ कियो व्यवहार।
याते गड़ बड़ होत है, ऋतु बूझन को सार॥ १६०।

गंगा के दच्छिणस्थ देश ऋतु। १५।

मेष वृषहि संक्रान्ति में, ऋत ग्रीष्म हि को जान।
वैसाख हि अरु जेठ ही, बंगला मास पछान॥ १६१॥
मिथुन कर्क प्रावृट कहैं, बरखा सिंह कन्याय।
तुल वृश्चिक शरद हि कहै, धनु मकरहि हिम पाय॥ १६२॥
कुम्भ मीन संक्रान्तिमें, कहते ऋतू बसन्त।
या बिध दच्छिण सुर नदी, होत ऋतुन को अन्त॥ १६३॥
प्रावृट बरखा कहत है, बरखा बरखा जान।
दो ऋतु बरषा के हुए, गंगा पार हि मान॥ १६४॥

गंगा के वाम भागस्थ देश ऋतु। १६।

मकर कुम्भ है शिशिर ऋतु, मीन हि मेष बसन्त।
वृष मिथुन हि ग्रीषम कहैं, कर्क सिंह बरखन्त। १६५॥

कन्या तुलहा शरद है, वृश्चिक धनु हेमन्त।
या विध गंगा वाम हो, शीत ऋतुन की अन्त। १६६॥

गंगाकी वामभागस्थ देशोंमें छः ऋतु की दोष। १७।

ग्रीष्म हि संचय वायु हो, पित्त प्रकोप हि होय।
उपशम कफ तब जानिये, ऋतु ग्रीष्महि फलसोय॥१६७॥
बरखा संचय पित्त हो, हो प्रकोप तब वाय।
शरद हि पित्त प्रकोप हो, उपशम होता वाय॥ १६८॥
उपशम पित्त हेमन्त हो, संचय कफ अरु वाय।
शिशिरहु संचय होय कफ, हो प्रकोप हूं वाय॥ १६९॥
कह ऋतुराज बसन्त में, श्लेष्म प्रकोप हि होय।
लंघन विधि यहि काल हो, जानत हैं सब कोय॥ १७०॥

गंगा की दक्षिण भागस्थ देशों मे छः ऋतु की दोष। १८।

ग्रीष्म हि संचय वायु हो, प्राविट कोप हि वाय।
कफ उपशम तब होत है, प्राविट में कहलाय॥ १७१॥
वर्षा संचय पित्त हो, शरद प्रकोप हि पित्त।
उपशम वायू शरद में, राखहु बहु कर चित्त॥ १७२॥
संचय कफ हेमन्त हो, कहत प्रकोप वसन्त।
उपशम पित्त वसन्त हो, दोष ऋतुन की अन्त॥ १७३॥

वायु दोष की ऋतु । १९ ।

ग्रीष्म ऋतू वृष मिथुन में, संचय वायू होय ।
कर्क सिंह वरखा कहें, हो प्रकोप हूं सोय ॥ १७४ ॥
मकर कुम्भ हु कहत है, शिशिर प्रकोप हि वाय ।
कन्या तुल हो शरद में, उपशम वायु कराय ॥ १७५ ॥

पित्त दोष की ऋतु । २० ।

कर्क सिंह वरखा ऋतू, संचय पित्त हि होय ।
शरद ऋतू कन्या तुला, पित प्रकोप तब होय ॥ १७६ ॥
पित्त प्रकोप हु ग्रीष्म में, वृष अरु मिथुन हि जान ।
वृश्चिक धनु हेंमन्त में, उपशम पित हो मान ॥ १७७ ॥

कफ़ दोष की ऋतु । २१ ।

मकर कुम्भ है शिशिर ऋत, संचय तब कफ़ जोय ।
मीन अरु मेष बसन्त है, कफ़ प्रकोप तब होय ॥ १७८ ॥
वृष मिथुन हि ऋतु ग्रीष्म है, उपशम कफ़ तब जान ।
या विध कफ़ के काल को, आयुर्वेद बखान ॥ १७९ ॥

दिन । २२ ।

दिन की तीन हि भाग करि, अन्त भाग ही जान ।
अन्त भाग अपरान्ह है, वायु प्रकोप हि मान ॥ १८० ॥
दिन की तीन हि भाग करि, मध्य भाग ही जान ।
मध्य भाग मध्याह्न है, पित्त प्रकोप हि मान ॥ १८१ ॥
दिन की तीन हि भाग करि, आद भाग ही जान ।
भोर बसन्त हि भोग है, कफ, वर्द्धक तेहि मान ॥ १८२ ॥
सु श्रुत और हु कहत हैं, भोग ऋतू दिन रात ।
भोर बसन्त ही भोगता, दुपहर ग्रिष्म हि ख्यात ॥ १८३ ॥
अपरान्ह हि प्रावृट कहैं, सन्ध्या बर्षा जान ।
अर्द्ध राव ही शरद गुण, हिम पिछली परमान ॥ १८४ ॥

राव । २३ ।

तीन भाग ही रात करि, अन्त भाग ही जान ।
हेमन्त हि सम काल वह, वायु प्रकोप हि मान ॥ १८५ ॥
तीन भाग ही रात करि, मध्य भाग ही जान ।
शरद ऋतुहु गुण बाढि की, पित्त प्रकोप हि मान ॥ १८६ ॥
तीन भाग ही राव करि, प्रथम भाग ही जान ।
सन्ध्या वर्षा भोग है, कफ, वर्द्धक ही मान ॥ १८७ ॥

वयक्रम ६० वर्ष पर। २४।

वय को तीन हि भाग करि, अन्त तिहाई जान।
वायु प्रकोप हि काल यह, चालिस ऊपर मान॥ १८८॥
वय की तीन हि भाग करि, मध्य भाग ही जान।
बीस ऊर्द्ध चालिस कहे, पित्त प्रकोप हि मान॥ १८९॥
वय की तीन हि भाग करि, प्रथम तिहाई जान।
प्रथम बीस के काल की, कफ़ कारक ही मान॥ १९०॥

भोजन काल। २५।

भोजन पचने अन्त में, वायु प्रबलता जान।
पाक हीन के काल में, पित्त प्रकोप हि मान॥ १९१॥
आदि काल भोजन कहे, कफ़ बर्द्धक है जान।
या बिध निर्णय काल की, आयुर्वेद बखान॥ १९२॥

साधारण काल। २६।

बदली अरु ठंठी हवा, बन्द घम जेहि काल।
वायू वर्द्धक जानिये, कोइ समय यह हाल॥ १९३॥
मेघ हि जब खुलि जात है, उष्ण काल जब होय।
तब तब पित्त प्रकोप हो, जानि लेहु सब कोय॥ १९४॥
ऋतु बसन्त के काल सम, जब जब देखो काल।
कफ़ वर्द्धक वह काल हो, जानत बूढ़े बाल॥ १९५॥

ग्रह चालन की फेर से, अयनहु फेर लगाव ।
ऋतु दरशी एक मास ही, कहे ऋतु आगे धाव । १९६ ॥
ऋतु लक्षण जो कह गये, जब वह लक्षण होय ।
गुण हूं वहि जानी तभी, कोइ मांस हू होय ॥ १९७ ।

देह में दोष के बास स्थान । २७ ।

यों तो सारे देह में, कहते दोष स्थान ।
निचले धड़ नाभी तले, निज घर वायू जान ॥ १९८ ॥
यों तो सारे देह में, पित का रहता बास ।
हृदय नाभि के मध्य में, बासा है यह खास ॥ १९९ ॥
आमाशय हू कहत है, पक्वाशय घर ताहि ।
यकृत प्लीह त्वक हृदय हूं, दृष्टि स्थान हि वाहि ॥ २०० ॥
यों तो सारे देह में, कफ का वास स्थान ।
हृदय से ऊपर सीस तक, कहत विशेष स्थान ॥ २०१ ॥
आमा शय पित के तले, हृदय कंठ हू जान ।
जिह्वा मूल-अरु सिर कहे, अरु सब सन्धि स्थान ॥ २०२ ॥

वायु प्रकृति के लक्षण । २८ ।

वायू प्रकृति मनुष्य के, अल्प केश ही देहि ।
हस्त पद स्फूटित रहे, कृष दीर्घाकृति जेहि ॥ २०३ ॥
द्रुत गामी हू होत है, बातन की बहु कील ।
दुष्ट स्वभाव हि जानिये, होय जागरण शील ॥ २०४ ॥

दोषोद्भव रोगों के लक्षण। ३२।

जगमें जितने रोग हैं, तीन दोष के माहि।
उनके जो जो गुण कहे, वहि लक्षण है वाहि। २२४॥
नाम रोग कोई कहो, लक्षण यहि जग माहि।
नये रोग हूं हो प्रगट, सब इस ही के माहि॥ २२५॥
तोन रोग मुख्य हि कहे, मिश्रहु लक्षण होय।
मिश्रहु मिलकर सात हो, जानहु लक्षण सोय॥ २२६॥

वायु रोग के लक्षण। ३३।

रुक्ष लघू खर विषद है, शीत सूक्ष्म सर और।
मन्द आठवा कहत है, गुण वायू कर गौर॥ २२७॥
बहू-शीघ्र लक्षण कहे, सब नहि सकते बूझ।
इसी मूल पर साफ करि, कहत हि होवे सूझ॥ २२८॥
आध्मान कहे फूलना, पेट दर्द वा नाहि।
स्तम्भ कहें मुड़ता नहीं, देह जोड़ तन जाहि॥ २२९॥
रौक्ष्य कहे रूखा बदन, स्वेद न नहि चिकनाइ।
स्फुटन कहत हैं आप से, हड्डी बोलत जाइ॥ २३०॥
विमथन वह पीड़ा कहे, आंटा गूंदत जोइ।
क्षोभ कहत नैरासता, बेदिल सा हो सोइ॥ २३१॥
कंप कहत है कापना, लरज़ा जाको नाम।
कहे प्रतोद पीड़ा वही, सूई गोभन काम॥ २३२॥

कंठोद्ध्वंस हि भंग स्वर, गला जात जो बैठ।
अवसाद हि अवसन्नता, देह सुन्न हो पैठ॥ २३३॥
श्रमंक, श्रान्तिबोध हि कहे, वे श्रम ज्यों थकि जान।
विलपन बकना कहत है, बेहोशी का मान॥ २३४॥
संश शूल वह दर्द है, काटन छुरि से जौन।
कहे प्रभेद उस दर्द को चिमटी चिमटत तौन॥ २३५॥
पारुष्य हि मल कठिनता, और अल्पता होय।
कर्णनाद कान हि स्वतः, ज्यों शब्द हि हो सोय। २३६॥
विषय परिणति हि कहत है, बिन चेतन बेहोश।
भ्रंश दृष्टि धुंधला कहे, आखों पर सरपोश॥ २३७॥
कहे प्रमोह तंद्रा उसे, भेर गड़प कहे जान।
निस्पन्दन कहे फड़कना, बदनो का ही मान॥ २३८॥
उद्घट्टन, विश्लेष संधि, जोड़ बदन खुलि जान।
ग्लपन ग्लानि बोध हि कहें, हाल ज़लील हि मान॥ २३९॥
अशयन बेचयनी कहे, और विकल पहचान।
ताड़न है वह पीड़ ही, ज्यों मारत कोड़ तान॥ २४०॥
वा मारन पर के लिये, रोगी को उठ जान।
पीड़न, कहे उस दर्द को, पेंच कसत ज्यों मान॥ २४१॥
नाम, कहत झुक जान को, पीछे को रुख जान।
उन्नाम, हि झुकना कहे, सन्मुख ओर हि मान॥ २४२॥
कहत विषाद, विषण्णता, मन सन्नाटा होन।
बुरी खबर ज्यों सुननते, मन जो होता तौन॥ २४३॥
भ्रम परिसदन, हि कहत है, घूमने की ही ज्ञान।
अपने को पर वस्तु को, दोऊ घुमड़ी जान॥ २४४॥

जृम्भन, जमुवाई कहे, और बकासा नाम ।
रोमहर्ष, कहे रोंगटे, खड़े होन को काम ॥ २४५ ॥
विक्षेप,हि हथ पैर की, फेकन झाड़न नाम ।
आक्षेप, हु बकना कहें, पागलका सा काम ॥ २४६ ॥
शोष, कहे जो शुष्क हो, दुर्बल शीरण देह ।
क्षय होना हू कहत है, या मे नहि सन्देह ॥ २४७ ॥
ग्रहण, कहे उस दर्द को, देहन में ही जान ।
सारा देहहि वा कहीं, ग्रहण उसीका नाम ॥ २४८ ॥
कहत शुषिरता, वाहि को, गढ़े देह ही जान ।
छिद्र कहो वा वाहिको, कहत सुषिरता मान ॥ २४९ ॥
वेष्टन, है वह दर्द जो, रस्सी कसत हि देह ।
जैसी पीड़ा होत है, वेष्टन निस्सन्देह ॥ २५० ॥
छेदन, है वह दर्द ही, काट छुरी ले मास ।
या विध जोही दर्द ही, छेदन नाम हि तास ॥ २५१ ॥
रंग वायु की श्याम ही, और रंग ही लाल ।
महति तृषा अनिवार्य्यहो, बुझत न कोऊ काल ॥ २५२ ॥
शाप विश्लेष, यह कहे, निद्रा होती नाहि ।
भंग, कहे टुटत बदन, कुबजादिक हो जाहि ॥ २५३ ॥
रस कषाय ही कहत है, स्वाद हु जोइ निहार ।
और हु लक्षण दो कहे, संकोचन विस्तार ॥ २५४ ॥
या विध लक्षण वायु के, छयालिस कह्यो विचार ।
मूल दस हि लक्षण कह्यो,बाकी यह विस्तार ॥ २५५ ॥

पित्त रोगों के लक्षण । ३४ ।

उष्ण तीक्ष्ण द्रव सर कहे, स्निग्ध हि पंचम जान।
अम्ल कटु लक्षण कहे, पित रोग हि के मान ॥ २५६ ॥
मूल हि लक्षण सात पर, सब नहि सकते बूझ।
लक्षण एक इस हि कह्यो, तब ही होवे सूझ ॥ २५७ ॥
विस्फोट, हि वह घाव है, बरें आदि जो छोट।
घाव हु नहि कहते उसे, यहि बूझो बिस्फोट ॥ २५८ ॥
अम्लक धूमक, कहत है, धूमैधाहि डकार।
प्रलपन, कहते अर्थ बिन, बहु बक बक को तार ॥ २५९ ॥
स्वेदस्रुति, कहते उसे, चलत पसीना घाम।
मूर्छन, वाको कहत हैं, मूर्छा कहते आम ॥ २६० ॥
दौरगंध, बदबू कहे, मुह अरु देह हि जान।
दरण, कहे पड़े दाग जो, चिरा चिरा हो मान ॥ २६१ ॥
मद कहते है मत्तता, मतवाला सम जान।
विसरण, दस्त हि साफ हो, और अधिक परिमान ॥ २६२ ॥
पाक, कहत हैं हो पका, नाक नोक पर लाल।
अरति, कहे चंचलपना, अरु व्याकुलता हाल ॥ २६३ ॥
तृड़, कहे तृष्णा प्यास हूं, पर शीतल जल जाय।
भ्रम, कहते हैं भूल को, भूलि बात कह जाय ॥ २६४ ॥
ऊष्मा, गरमी को कहे, बोध ऊष्ण हो वाहि।
अतृप्त मन, हि कहते उसे, जेहि आसूदगि नाहि ॥ २६५ ॥
प्रवेश, कहे यह ज्ञान ज्यों, अंधियाले ढुकि जांय।
दहन, कहत हैं जलन ज्यों, देहि दाह जरि जांय ॥ २६६ ॥

और अम्ल कटु तिक्त हूं, स्वाद पित्त को जान।
पांडु रंग को छोड़ कर, सब रंग पित्त हु मान ॥ २६७ ॥

कफ के रोगों के लक्षण । ३५ ।

तृप्ति, कहत आसूदगी, बनी रहत हर काल।
तंद्रा, कहते भेर को, गफ़लत ही हर हाल ॥ २६८ ॥
कहे गुरुत्व, हि भारपन, देह भार ही ज्ञान।
मलाधिक्य अरु कठिनता, मल सख्त-अरु बहु मान ॥ २६९
स्नेह, कहत स्निग्धता, चिकनाहट पहचान।
कहें अपक्ति अजीर्णता, बदहज़मी को जान ॥ २७० ॥
उपलेप, हि कहे जीभ में, कफ़ लपटे बहु जान।
शैत्य, कहत हैं शीत को, शीतलता पहचान ॥ २७१ ॥
कंडु कहत हैं खाज को, खारिश देह हि होय।
कहत प्रसेक, हि जल बहे, नाक आंख मुह सोय ॥ २७२ ॥
चिरकारतृत्व, हि कहत हैं, दीर्घ सूत्रता होय।
धीरेपन हो काम में, अति विलम्ब ही सोय ॥ २७३ ॥
शोथ, कहे सूजन हि को, वर्म हु कहते ताहि।
निद्राधिक्य, हु कहत है, नीद बहुत ही जाहि ॥ २७४ ॥
मधुर कटु द्वय स्वाद ही, कफ़ के कहते लोग।
स्वेत वर्ण रंग हि कहे, सादा रंग हि भोग । २७५ ॥
अलसत्व, हि वाको कहे, काम करन नहि चाह।
सतरह लक्षण कफ़ कहें, आयुर्वेद हि माहि ॥ २७६ ॥

मृदू गुरु स्थिर शीत है, पिच्छिल स्निग्ध हि जान।
मधुर रस हि लक्षण कहे, कफ़ रोग हि को मान ॥ २७७ ॥
मूल हि लक्षण सात पर, सब नहि सकते बूझ।
इसी मूल पर साफ़ करि, कहत हि होवे सूझ ॥ २७८ ॥

जिह्वा लक्षण । ३६ ।

वायु प्रकोप हि होय जब, जीभ रंग हो पीत।
स्पर्श खर स्फूटित रहे, वायु प्रकोप हि रीत ॥ २७९ ॥
लाल स्याम हो पित्त में, जिह्वा को रंग जान।
कफ़ में मोटी जीभि हो, रंग सुपेद हि मान ॥ २८० ॥

आंख के लक्षण । ३७ ।

लाल धुमैली कहत है, आंख धूम रंग वाय।
चंचल हो भीतर कहे, थोड़ा दाह हु पाय ॥ २८१ ॥
हलदी सी पीली कहे, लाल नील हू और।
दीप देषि संताप हूं, चक्षु पित्त का तौर ॥ २८२ ॥
डबडबानि जल कफ़ रहे, रंग हु होय सुपेद।
ज्योति हीन चंचल रहे, दृष्टि मन्द हो कैद ॥ २८३ ॥

मूत्र लक्षण । ३८ ।

पाण्डु रंग हो वाय में, फेन सहित कफ़ रोग।
लाल रंग हो पित्त में, श्याम त्रिदोष हि भोग ॥ २८४ ॥

बाह्य वायु विवरण। ३९।

ऋतु बसन्त दखिना कहे, पछिमा वर्षा काल।
शरद हवा-उत्तर कहैं, हिम शिशिरहि पुर्वाल ॥ २८५ ॥
दक्षिण की गुण कहत हैं, छः रस उक्त हि जान।
बल बर्द्धक अरु चक्षु हित, शमन रक्त पित मान ॥ २८६ ॥
गुण पछिया की तीक्ष्ण है, मेद कफ हि ले सोख।
दुखकारी मानव कहे, सद्य प्राण हर दोख ॥ २८७ ॥
गुण उत्तर की कहत है, स्निग्ध शीत मृदु जान।
मधुर कषाय हि रस कहैं, दोष प्रकोपक मान ॥ २८८ ॥
पुर्वा गुरु कटु स्निग्ध है, रस मधुर-खीर रसाल।
पित नाशक अरु वायुकर, दाह शमन कर हाल ॥ २८९ ॥

इति दोष प्रकरण।

(४) अथ द्रव्य प्रकरण।

द्रव्य शब्द ही नाम सुन, पंच भूत ही जान।
पर प्रधान ही भूत की, करते नाम बखान ॥ २९० ॥
आप्य पार्थिव कहत है, अरु वायव्यहि जान।
तैजस आकाशिय कहे, पांच जात ही मान ॥ २९१ ॥

द्रव्य गुण संज्ञा । १ ।

द्रव्य गुण हि के कहत है, कितने ही संकेत ।
संज्ञा जाने बिन कहें, बहु अड़चन ही देत ॥ २८२ ॥

लंघन । २ ।

लघु करता जो देह की, लंघन कहते सोय ।
लघू ऊष्ण अरु तीक्ष्ण हूं, विशद रुक्ष खर होय ॥ २८३ ॥
सर कहते अरु कठिन हूं, गुण विशिष्ट जो चीज ।
और क्रिया हू कहत है, लंघन गुण ही बीज ॥ २८४ ॥
प्यास हवा अरु धूप है, पाचन अरु उपवास ।
श्रम साधन व्यायाम हूं, लंघन कहते तास ॥ २८५ ॥
संशुद्धी कारक कहे, वमन विरेचन काज ।
निरूहन पिचकारी कहे, अनुवासन वहि आज ॥ २८६ ॥

बृंहण । ३ ।

पुष्ट करत जो देह की, बृंहण कहते सोय ।
मृदु स्निग्ध गुरु शीत है, मन्द स्थूल हि होय ॥ २८७ ॥
पिच्छिल और स्थिर कहें, श्लक्ष्ण गुण हि की चीज ।
और काम उन गुणन की, कहते बृंहण बीज ॥ २८८ ॥

रूचण । ४ ।

रूच करत जो देह को, रूचण कहते सोय ।
ऊष्ण तीच्ण लघु रूच हूं, विशद स्थिर हू होय ॥ २९९ ॥
और कठिन गुण विशिष्ट हु,कहते द्रव्य अरु काम ।
रूच फल हि जाको बने, रूचण वाको नाम ॥ ३०० ॥

स्नेहन । ५ ।

द्रव स्निग्ध सर सूक्ष्म गुरु, पिच्छिल शीतल होय ।
मन्द मृदू गुण द्रव्य को, स्नेहन कहते सोय ॥ ३०१ ॥

स्वेदन । ६ ।

सर स्निग्ध तिच्ण ऊष्ण हूं,रूच गुरू द्रव होय ।
सूक्ष्म स्थिर गुण द्रव्य को, स्वेदन अर्क हि जोय ॥ ३०२ ॥

स्तम्भन । ७ ।

शीत मन्द मृदु रूच हूं, सूक्ष्म स्थिर द्रव होय ।
शलच्ण गुणन को द्रव्य ही,स्तम्भन कहते सोय ॥ ३०३ ॥

दीपन। ८।

पचे नहीं पर भूख हो, दीपन कहते ताहि।
दीपक सौंफ हि कहत है, आयुर्वेद हि माहि ॥ ३०४ ॥

पाचन। ९।

आम पचे पर भूख नहि, पाचन कहते ताहि।
द्रव्य हि नागेश्वर कहें, पाचक गुण है वाहि ॥ ३०५ ॥

दीपन पाचन। १०।

दोउ गुण धारी कहत है, चीता को परधान।

शमन। ११।

दस्त न हो कैदू न हो, न हो डकार हु जान ॥ ३०६ ॥
दोष नाश करता गुड़िच, कहते शमन हि सार।

अनुलोमन। १२।

दोष पचा कर दस्त हो, हड़ अनुलोमन कार ॥ ३०७ ॥

स्रंसन । १३ ।

कच्चे मल को दस्त ही, स्रंसन गुण कृतमाल ।
अमलतास भाषा कहैं, याही करहु खियाल ॥ ३०८ ॥

भेदन । १४ ।

गाढ़े पतले दस्त हो सुद्दे हूं भी होंय ।
भेदक वाको कहत है, कटुकी गुण है सोय ॥ ३०९ ॥

रेचन । १५ ।

कच्चे पक्के जोइ हो, दस्त हि लावे जोय ।
रेचक वाको कहत है, कहत बिधारा सोय ॥ ३१० ॥

वमन । १६ ।

भच द्रव्य कफ पित्त हूं, कै करवाये जीय ।
वमनक वाको कहत हैं, कहत मैनफल सीय ॥ ३११ ॥

संशोधन । १७ ।

संचित मल की काढि दै, कै वा दस्त हि राह ।
संशोधक वाको कहे, देवदालि फल चाह ॥ ३१२ ॥

ग्राही । १८ ।

दीपक पाचक दोउ हो, द्रवशोषक हू होय ।
संग्राही कहै वाहि को, जीरा सोंठ हु सोय ॥ ३१३ ॥

स्तम्भन कारी । १९ ।

अधोगामि मल आदि को, करि प्रतिलोमहि वाय ।
ऊर्द्ध गामि करि रोक दे, स्तम्भन वही कहाय ॥ ३१४ ॥
जैसे कूटज कहत हैं, श्योनाक हु गुण सोय ।

छेदन । २० ।

लिपटे हों कफ आदि जो, दोष उखाड़ हि जोय ॥ ३१५ ॥
मरिच कहै यवचार हूं, छेदक गुण है सोय ।

लेखन । २१ ।

दैहिक धातु मलादिको, शोषण करता जोय ॥ ३१६ ॥
छील हि दुबला ज्यों करे, लेखन गुण है सोय ।
शहद गरम जल बचहु है, इन्द्रयव हु है जोय ॥ ३१७ ॥

बाजी करण। २२।

इखिन पर जो प्रीत है, कूवत देता वाह।
बाजी करण हि तेहि कहें, अश्वगन्ध गुण ताह ॥ २१८ ॥
तालमूलि मिसरी कहें, और सतावर आदि।

शुक्रल। २३

धातु बढ़ावन हार हो, नाग वला इत्यादि ॥ २१९ ॥
बीज कंवांच हु कहत हैं, शुक्रल गुण है ताय।

शुक्र जनक और रेचक। २४।

अपने गुण परभाव से, रस को देय बढ़ाय ॥ २२० ॥
अधिक धातु पैदा करहि, रेचक करता जाय।
दूध उर्द भेंला कहे, मज्जा औंला खाय ॥ २२१ ॥

शुक्र रेचक। २५।

कंटकारि वृहती कहे, इखिन निज गुन जान।
रेचक शुक्र हि कहत हैं, गुण इनकी ही मान ॥ २२२ ॥

शुक्र स्तम्भन । २६ ।

शुक्र स्तम्भन गुण कहे, कहत जायफल आदि ।

शुक्र क्षय कारक । २७ ।

फल कहते कालिन्द की, शुक्र करत बरबादि ॥ ३२३ ॥

रसायन । २८ ।

रोग सबल जेहि दूर हो, बुड्ढा होय जवान ।
कहन्ति हर्रे गुग्गुलहि, शिलाजतू हू मान ॥ ३२४ ॥

व्यवायी । २९ ।

पूर्व कहत परिपाक की, गुण दिखलावे जीय ।
गांजा भांग अफ़ीम हूं, कहत व्यवायी सोय ॥ ३२५ ॥

विकाशी । ३० ।

देह रस हि को शोष करि, शिथिल जोड़ हो गाय ।
कोदो और गुवाक फल, गुण विकाशि कहलाय ॥ ३२६ ॥

मादक । ३१ ।

बुद्धी करत विलोप जो, मदकारी कहें वाहि ।
सुरा आदि द्रव्य हि कहें, मादकता गुण जाहि ॥ ३२७ ॥

विष । ३२ ।

होय व्यवायी गुणहु जेहि, और विकाशी होय ।
मादकता गुण हू रहे, कफ नाशक हू होय ॥ ३२८ ॥
आग्नेय जेहि बीर्य्य हो, जीवन नाशक और ।
योगवाहि गुण होय जेहि, विष गुण हो यहि तौर ॥ ३२९ ॥
विष कहते बछनाभ को, शक्तुक आदी और ।
अम्मृत हूं वाको कहें, मीठा स्वाद हि तौर ॥ ३३० ॥

प्रमाथी । ३३ ।

अपने गुण से साफ करि, दूर करे सब दोष ।
स्रोत शुद्धकर मिर्च बच, कहत प्रमाथी कोष ॥ ३३१ ॥

अभिष्यन्दी । ३४ ।

गुरु पिच्छिलता हेतु से, स्रोत रगन हो बन्द ।
गुरुता होती देह की, कहत दही अभिष्यन्द । ३३२ ॥

विदाही। ३५

खट्टे होय डकार जेहि, होय प्यास अरु दाह।
देर हज़म जो वस्तु हो, कहत विदाही ताह॥ २३३॥

योगवाही । ३६ ।

अन्य वस्तु से मिलत ही, गुण वाकी ले लेय।
योगवाहि गुण है यही, पर गुण हू धर लेय॥ २३४॥
जल मधु तैल अरु घृत कहे, पारा लोहा जान।
विष हू को यहि गुण कहे, योग वाहि गुण मान॥ २३५॥

द्रव्य भेद।

स्थावर जंगम भेद से, औषध दोय प्रकार।
जीव आदि जंगम कहे, स्थावर तीन प्रकार॥ २३६॥
धातुज कहिये खनिज को, पारा सोना आद।
पार्थिव पत्थर आदि है, मिट्टी रेती आद॥ २३७॥
और तीसरा औद्भिज, इन के भेद हि चार।
यों तो बहुत हि भेद है, जो कोइ करे विचार॥ २३८॥
बिना फूल फल जाहि हो, वनस्पती कहे ताहि।
फूले पर फल होत जेहि, वानस्पत्य हि वाहि॥ २३९॥
फल पकने पर नाश हो, ऐसे जो सब गाछ।
नाम औषधी कहत है, आयुर्वेद हि बाछ॥ २४०॥

लत्तर के जो जात है कहत विरुध तेहि नाम।
उद्भिद औषधि चार है आयुर्वेद बखान ॥ ३४१ ॥
उष्ण वीर्य्यं की वस्तु सब, उत्तम विन्ध्य हि मान।
सर्द हिमालय ही कहे, उत्तम जनमत जान ॥ ३४२ ॥
बरखा पत्र हि लीजिये, काल शरद ऋतु जान।
दूध हिमन्त हि कहत है, सार वसन्त हि मान ॥ ३४३ ॥
फल ग्रीष्म हि में लीजिये, प्रावृट मूल बखान।
या विध औषध ग्रहण की, उत्तम काल हि जान ॥ ३४४ ॥
हरी दवा रस काढ़ ले, स्वरस कहत है ताहि।
दवा पीस पिठ्ठी करे, कहत कल्क है वाहि ॥ ३४५ ॥
जल हि औंट करि सिद्ध हो, कहते शटत ही वाहि।
सर्द जल हि धरि ओस में, छानि शीत कह वाहि ॥ ३४६ ॥
गरम जल हि में औषधी, छानि फान्ट कहे ताहि।
क्रम से बल होता कम हि, एक एक से जाहि ॥ ३४७ ॥

विष भेद।

स्थावर जंगम भेद ही, विष के दो है जान।
जंगम सर्पादिक विष हि, विषधर जीव हि मान ॥ ३४८ ॥
स्थावर के है भेद दो, उद्भिज धातुज मान।
बछनाभादिक औद्भिज, संखिय धातुज मान ॥ ३४९ ॥
फिनाश्म भस्म हि कहते है, नाम संखिया जान।
स्वेत ताल हू नाम तेहि, हरिताल हुं पहचान ॥ ३५० ॥

जंगम विष गति नीम्न है, स्थावर जड़ हि जान।
गुण विरुद्ध के कारणे, विष विष औषध मान॥ २५१॥
अति अपकारी विष कहे, पर जो लेवे शोध।
योग-अरु मात्रा उचित हो, एक दवा सब बोध॥ २५२॥
मांस मद्य लहसुन कहे, और जो खाय पियाज।
अहर विहर जेहि ठीक नहि, विष धातू तेहि काज॥ २५३॥

त्रिदोष नाशक द्रव्य।

धान महीन हि होय जो, साठी हो वा लाल।
गहूं पुराना जानिये, छह होय एक साल॥ २५४॥
रोटी, फुलका कहत है, होलहा भूना जान।
तिल, तीसी हू जानिये, उलटा मूंग हि मान॥ २५५॥
बड़ा, मूंग का कहत है, मट्ठा देहु भिजाय।
लघु भोजन जो होय यह, जो चाहे सो खाय॥ २५६॥
परवल तरकारी कहे, अरु बथुवा को साग।
कटहल बीज हु जानिये, मूली हूं की साग॥ २५७॥
मूलि बड़ी घृत भूंज करि, छोटी मूली यौंहि।
अगस्ति फूल हू जानिये, शिम्बी हू फिर त्यौं हि॥ २५८॥
कहत मसाला सोठ हूं, आदी हूं को जान।
धनियां उत्तम कहत है, लवन हि सैन्धव मान॥ २५९॥
खट्टा नीबू कागजी, मुखशुध कर हि सुपारि।
छोहाड़ा केशर कहैं, नशपाती हुं अनारि॥ २६०॥

कहत बकेनू गाय की, अरु बकरी को दूध।
गाय दूध धारोष्ण ही, फेन भरा हो दूध ॥ ३६१ ॥
धारोष्ण हि नहि लाभ हो, मन्थन करि कर फेन।
मिसरी दूध हि जानिये, है परमेश्वर देन ॥ ३६२ ॥
वृष्टि हि जल उत्तम कहे, अरु साधारण देश।
मीठा जल जो कूप हो, अंशूदक हूं शेष ॥ ३६३ ॥
पूस माघ में कहत हैं, उत्तम जल हि तड़ाग।
फागुन और असाढ़ मे, वादी कूप हि लाग ॥ ३६४ ॥
चूंआं चैत हि में कहें, और हु आसिन हेठ।
झरना वैसाख हि कहें, भूशीत हि कहे जेठ ॥ ३६५ ॥
बरखा जल श्रावन कहे, कातिक अगहन माह।
यह सब जल उत्तम कहे, श्रेष्ट जल हि यह राह ॥ ३६६ ॥
अंशूदक श्रेष्ट हि सदा, ओस धूप दिन रात।
खाता है जो जल सदा, पूछ न उसकी बात ॥ ३६७ ॥
औषधि यही कहत है, अमलतास हू जान।
चक्रमर्द अरु तगर है, पृश्निपर्णि हू मान ॥ ३६८ ॥
स्वेत तृवृत जुल्लाब है, अनन्त मूल हु जान।
फूल कहत है माधवी, हर्रे औंला मान ॥ ३६९ ॥
पीपल जो सूखी न हो, चित्रक और हु जान।
पत्थर भेद अरु इन्द्रयव, भेला गुग्गुल मान ॥ ३७० ॥
जटामसी धूना कहें, स्थौनेयक हू जान।
लामज्जक पृक्का कहें, साग अनूठी मान ॥ ३७१ ॥
गुड़िच कहे गम्भारि हू, और पाटली जान।
शालिपर्णि श्योनाक हूं, दश मूलक हू मान ॥ ३७२ ॥

मुद्गपर्णी हूं कहत है, जीवन्ती हू जान।
कहत कपिच्छू एक है, मांस रोहणी मान ॥ ३७३ ॥
अंकोटक फल कहत है, स्वर्णवल्लि पहचान।
सुत दायक है लक्ष्मणा, घीकुमारि हू मान ॥ ३७४ ॥
सरपत कुश अरु काश है, मुर्वा हूं को जान।
काकमांचि एक औषधी, सोमलता पहचान ॥ ३७५ ॥
शंखपुष्पि शतपुष्पि हूं, कहत निवारी फूल।
दौना कहत अशोक है, बेलि चमेली फूल ॥ ३७६ ॥
सिरिस वृक्ष कुब्जक कहे, रीठा हू को जान।
जल सिरिशिका कहत है, पानीयाम्लक मान ॥ ३७७ ॥
वीकंकत एक वस्तु है, कहत चकौड़ा पत्र।
कलाय शाकहु जानिये, और गुड़िच की पत्र ॥ ३७८ ॥
शुद्ध भस्म ही कहत है, सोना हू को जान।
सोना मक्खी जानिये, तारमच्छि पहचान ॥ ३७९ ॥
पारा अभ्र हि फिटकिरी, शिरियारी हू जान।
वील कहें एक वस्तु है, औषध यह पहचान ॥ ३८० ॥
सब से खोटी वस्तु है, सब से बढ़कर मान।
बिष वाही को कहत है, अमृत नाम तिहि जान ॥ ३८१ ॥

त्रिदोष वर्द्धक द्रव्य।

वर्द्धक वायू पित्त कफ, बड़हल, लकुचहि जान।
कच्चा कहत कपित्थ हूं, कारक दोष हि मान ॥ ३८२ ॥

वायू नाशक द्रव्य।

चिवड़ा अरु उई हि कहें, लिट्टी,रोटी जान।
बड़ा उहँका कहत है, बड़ा हु कांजी मान॥ ३८३॥
कोमल वैगन कहत हैं, खट्टी पालं जान।
गव्य दही अरु गुड़ दही, मेथी दूध हू मान॥ ३८४॥
वंस हु लोचन कहत है, नाशक वायू जान।
इन वस्तुन व्यवहार के, समय काल पहचान॥ ३८५॥
बरखाग्रीष्मअरुशिशिरऋतु,अपरान्ह हि को काल।
वायू नाशक द्रव्य को, भोजन की रख चाल॥ ३८६॥

वायू वर्द्धक द्रव्य।

यव मूंग हि बोड़ा कहे, रहड़ मसूर हि जान।
चना खिसारी कहत है, कौनी चीना मान॥ ३८७॥
शामा कोदो कहत है, शहद हु की वहि जान।
लाल रंग मीठा कहें, और चिरैता जान॥ ३८८॥
कुसुम फूल हू कहत है, वायू वर्द्धक मान।
वायू वर्द्धक काल मे, इनसे डर जिय जान॥ ३८९॥
इन दालन में डारिदे, दो एक औंला जोय।
वायू वर्द्धक दोष तब, जा अति शुद्ध हि होय॥ ३९०॥

पित नाशक द्रव्य।

खेत धान इक कहत हैं, ओरीतिन्नी जान।
तोरइ तरकारी कहे, जमीकन्द सब मान ॥ ३८१ ॥
और सिंघाड़ा कहत है, कच्चा खीरा जान।
और कसेरू कहत है, ककड़ी हू की मान ॥ ३८२ ॥
कमल बीज हूं कहत है, और मखाना जान।
मक्खन निकल्यो दूध से, अरु भैंस हु की मान ॥ ३८३ ॥
चन्दन रक्त हु कहत है, जूही फूल पछान।
पित नाशक यह वस्तु सब, समय काल हू जान ॥ ३८४ ॥
बरखा शरद अरु ग्रीष्म ही, मध्यान्ह हि की काल।
पित नाशक द्रव्य हि सदा, भोजन को रख चाल ॥ ३८५ ॥

पित वर्द्धक द्रव्य।

काली मिर्च-अरु जायफल, अजवाइन हू जान।
हींग पान हूं कहत है, कच्चा बेल हु मान ॥ ३८६ ॥
सोहजना तरबूज हूं, इमली कुरथी जान।
तिल अरु सरसो तेल हूं, और दही पहचान ॥ ३८७ ॥
कस्तूरी अरु अगरु है, जीरा कहत सुपेद।
हड़जोड़ हु को कहत है, अरु एरंड हि भेद ॥ ३८८ ॥
छिकनी तुलशी जानिये, अम्लवेत हू जान।
पित वर्द्धक यह वस्त सब, व्यवहार हि में मान ॥ ३८९ ॥

पित वर्द्धक ही काल में, इन से डर जिय जान ।
स्निग्ध शीत ही वस्तु से, उचित शोध कर खान ।। ४०० ।।

कफ नाशक द्रव्य ।

कौनी चीना कहत हैं, बांस बीज हू मान ।
शील अरुइ अरु केतकी, जाविकी पहचान ।। ४०१ ।।
और कहत अफ़यून हैं, मंजीठा हू जान ।
और सुहागा कहत हैं, गुम्मा की पहचान ।। ४०२ ।।
कहते शिशिर बंसत हैं, पुर्वान्ह हि की काल ।
कफ नाशक द्रव्य हि सदा, भोजन की रख चाल ।। ४०३ ।।

कफ वर्द्धक द्रव्य ।

कर्षित भूमी धान ही, गहूं नया ही जान ।
लिट्टी आटे की कहें, बड़ा उर्द्द की मान ।। ४०४ ।।
और बड़ा कांजी कहें, चिवड़ा हू की जान ।
मोहन भोग हु कहत हैं, बादाम हु पहचान ।। ४०५ ।।
पोई साग हु कहत हैं, भैस दूध घी होय ।
सेमल बहुआर हि कहें, कफ वर्द्धक हैं जोय ।। ४०६ ।।
कफ वर्द्धक ही काल में, इन से डर जिय जान ।
कच्च ऊष्ण ही वस्तु में, उचित शोध कर खान ।। ४०७ ।।

वात पित नाशक द्रव्य ।

जौता खेतन धान ही, नया गहूं ही जान ।
मोहन भोग हु कहत है, गौ दुग्ध हि पहचान ॥ ४०७ ॥
भैंस दही घी कहत है, गौ मक्खन हू जान ।
तरकारी कोंहड़ा कहे, निनुवां हू पहचान ॥ ४०८ ॥
चीचिंडा पोई कहे, फालसा तूत बदाम ।
नरियल खरबूजा कहें, दारु चीनि हु नाम ॥ ४१० ॥
फूल मल्लिका कहत है, अरु चंपा हू जान ।
कहत सतावर जेठि मधु, अरु सेमल पहचान ॥ ४११ ॥
गुड़ हि पुराना जानिये, चांदी धातु हि मान ।
वात पित्त के नाश कर, इन द्रव्यों को मान ॥ ४१२ ॥

वात पित्त वर्द्धक द्रव्य ।

एक अफीम हु कहत है, और सुहागा जान ।
गुम्मा हूं एक द्रव्य है, बांस बीज हू मान ॥ ४१३ ॥

वात श्लेष्म नाशक द्रव्त ।

कुरथी सरसो कहत है, ओरीतिन्नी जान ।
तिल सरसी इयतेल हू, मीठा लाल पक्वान ॥ ४१४ ॥
मेथी चनसुर सुहजना, तरबुज,गाजर जान ।
अमलबेत इमली कहें, चुक हूं को पहचान ॥ ४१५ ॥

वात श्लेष्म हि नाश कर, इन द्रव्यों की मान ।
काली मर्च हि कहत है, कस्तूरी हू जान ॥ ४१६ ॥
अजवाइन अरु हींग है, जीरा कहत सुपेद ।
तेज पात तुलशी कहें, जूही फूल हि भेद ॥ ४१७ ॥
गुजराती लाची कहें, जाफल है अरु पान ।
तुम्बुर, अगरु, कचूर है, बेल, रेंड़ हू जान ॥ ४१८ ॥
अपामार्ग हू कहत हैं, असगन्ध हु को जान ।
नकछिकनी हू कहत हैं, हड़जोड़हि पहचान ॥ ४१९ ॥
पितौंजिया एक द्रव्य है, नाम यही तेहि जान ।
वात श्लेष्महि नाशकर, इन द्रभ्यों की मान ॥ ४२० ॥

वात श्लेष्म वर्द्धक द्रव्य ।

श्वेत धानहू कहत है, और कदम्ब हु जान ।
कमल बीजहू जानिये, जमीकन्द पहचान ॥ ४२१ ॥
कसेरू सिंघाड़ा कहे, और मखाना जान ।
तरकारी तोरई कहे, मक्खन भैसहि मान ॥ ४२२ ॥

पित कफ नाशक द्रव्य ।

मूंग मसुर अरु रहड़ है, यब अरु चना खिसारि ।
शामा कोदो कहत है, और राइ है कारि ॥ ४२३ ॥
लावा धानहि कहत है, और कदू तरकारि ।
एक करैला और है, और कहत कचनारि ॥४२४ ॥

अगस्त फूलहू कहत है, नागेश्वर की फूल।
मौलसरी औरो कहें, और कुसुम है फूल ॥ ४२५ ॥
कमल, चिरौजी कहत है, मधु चन्दन हू जान।
बड़ी लायची लौंग है, हल्दी हू पहचान ॥ ४२६ ॥
खस कपूर हू कहत है, लाह लोध हू जान।
और बहेड़ा कहत है, चीरैता पहचान ॥ ४२७ ॥
तामा फूका धातु ही, अरु शोधा ही जान।
इन द्रब्यों के नाम है, पित कफ नाशक मान ॥४२८॥

पित कफ वर्द्धक द्रव्य।

कोमल बैगन कहत है, रुई दही हू जान।
खट्टी पालं साग है, मेथी दुग्धहि मान ॥ ४२९ ॥

उत्कृष्ट और निकृष्ट गुणकारी खाद्य औषध और कामो में जो प्रधान हैं उन के नाम।

श्रेष्ट जाति अरु सभ्य वह, उत्तम अहर बिहार।
हाइजन अंगरेजी कहे, बूझ हु याकी कार ॥ ४३० ॥
अहर बिहर यों है उचित, उत्कट रोग न होय।
निर आमिष आहार जेहि, श्रेष्ट जाति है सोय ॥ ४३१ ॥
घर घर जाकर देख लो, हस्पताल हूं देख।
पारस देखो अरबं हूं, अरु यूरप हूं पेख ॥ ४३२ ॥

भारत हूं देखो ज़रा, गनित रोग हर जात।
निर आमिष जेहि खाद्य है, रोग उत्कट नहि बात ॥ ४३३ ॥
धर्म शास्त्र जिन ही कियो, आयुर्वेद तिन कीन्ह।
धर्म हि या विध तिन कियो, जगत रोग हर लीन्ह ॥ ४३४ ॥
स्थावर जंगम भेद से, दोय प्रकार अहार।
और हिताहित भेद दो, रोत भोज्य है चार ॥ ४३५ ॥
चव्य, चोष्य, लिह्य, पेय है, यह प्रयोग ही चार।
फिर छः रस के भेद से, स्वाद छही आधार ॥ ४३६ ॥
छः रसधारी वस्तु सब, गुण रखते हैं बीस।
गुरुवादी गुण भेद से, क्या महिमा जगदीस ॥ ४३७ ॥
स्वाभाविक हित जोइ है, कहते जो आहार।
वरणन उनका करत है, थोड़ा अरु विस्तार ॥ ४३८ ॥

खाद्य श्रेष्ट।

रक्त शालि, सब धान मे, दाल मूंगही जान।
जल वृष्टी ही कहत है, सैन्धव लवनहि मान ॥ ४३९ ॥
गो घृत दूधहि कहत है, तैलहि तिल को जान।
मूल जाति अदरख कहें, द्राक्षा फलही मान ॥ ४४० ॥
जीवन्ती कहें शाक में, पलवल हूं तरकारि।
मीठे में सबसे सिरे, मिसरी की है बारि ॥ ४४१ ॥
भोजन में अन्नहि कहें, श्रमनाशक जल पान।
आयुष्कर दूधहि कहें, रोचक अम्लहि जान ॥ ४४२ ॥

खाद्य निकृष्ट।

धान्नों मे यवं कहत है, उर्द दाल के माहि।
बरखा ऋतु नदि जल कहें, खारी लवनहि माहि ॥ ४४३ ॥
सरसीं शाकन में कहें, मेष दूध घृत जान।
तेलन में कोसुम कहे, मूलन मूली मान ॥ ४४४ ॥
फल जातिन में लकुचही, भाषा बड़हल जान।
मीठन में छोआ कहें, अति निकष्ट ही मान ॥ ४४५ ॥

औषध श्रेष्ट और निकृष्ट।

पित कफ वर्द्धक द्रव्यमे, श्रेष्ट कहत यह दोय।
भेड़ी को दूधहि कहे, और उर्द ही होय ॥ ४४६ ॥
वायू नाशक द्रव्य मे, बला रासना जान।
वायू नाशक काम मे, बसती ही परधान ॥ ४४७ ॥
कहत बिरेचन कर्म को, पितनाशक परधान।
कफ नाशक में वमनही, श्रेष्ट कर्म पहचान ॥ ४४८ ॥
बायू पितनाशक गुणहि, श्रेष्ट घृतहि को जान।
बायू कफ नाशक कहें, श्रेष्ट तैल पहचान ॥ ४४९ ॥
पित कफ नाशक द्रव्य में, मधू श्रेष्ट ही जान।
दुरालभा हू कहत है, नाम यवासा मान ॥ ४५० ॥
रक्त पित्तनाशक कहे, गन्ध,प्रियंगू मान।
बर्द्धक नाशक दोष को, श्रेष्टहि कियो बखान ॥ ४५१ ॥

मृदुता कारक कर्म में, स्वेदन श्रेष्टहि जान।
दृढ़ता कारक श्रमकहे, व्यायामहि पहचान॥ ४५२॥
कृषताकारक गुणहि मे, श्रेष्ट गेवधुक धान।
गाजां भांग अफीम हूं, सभी व्यवायी मान॥ ४५३॥
इस्त्री भोगहू कहत है, कम भोजन हू जान।
• चिन्ता शोक हु कहत है, देह सुखावत मान॥ ४५४॥
निद्रा कारक श्रेष्ट ही, दुध भैस को जान।
मूत्र जनक रस ऊखको, ताड़ी हूं को मान॥ ४५५॥
मल बर्द्धक यवको कहें, श्रेष्ट गुणहि पहचान।
बस्ती बमनहि श्रेष्ट गुण, कहत मयनफल जान॥ ४५६॥
सुख जुलाब तिरबृत कहे, श्रेष्ट बिधारा मान।
मृदु जुलाब जो श्रेष्ट है अमलतास पहचान॥ ४५७॥
तीव्र जुलाबहि श्रेष्ट जो सीज दूध को मान।
शिरो विरेचन श्रेष्ट जो, अपामार्ग ही जान॥ ४६८॥
वायविड़ंग हि श्रेष्ट अति, क्रिमि नाशक गुण ताहि।
कहत सिरिस अति श्रेष्टही, विष नाशक गुण वाहि॥ ४६९॥
नाशक कुष्ट हि खैर है, जिल्द रोग ही जाहि।
शास्त्र कहें जाको खदिर, कथ भाषा के माहि॥ ४७०॥
पथ्यो में श्रेष्ट हि कहे, हर्रे वाकी नाम।
औला श्रेष्ट हि कहत है, वयस्थापना काम॥ ४७१॥
नाशक ही पुरुषत्व को, चार द्रव्य ही नाम।
शुक्र वेग धारण कहें, क्लीव होन को काम॥ ४६२॥
अरुची कारक श्रेष्ट ही, तेंद फल हि को जान।
मेष घृत हु को कहत है, अरुचि कार पहचान॥ ४६३॥

स्वर नाशक में श्रेष्ट है, कच्चा ही कठबेल ।
अभिष्यान्द कारिन कहें, श्रेष्ट दही की खेल ॥ ४६४ ॥
रुचणीय गुण श्रेष्ट है, कीदी नया हि जान ।
श्रेष्ट रसायन कहत है, घृत दूध हि पहचान ॥ ४६५ ॥
दाह निवारक श्रेष्ट ही, चन्दन गूलर जान ।
शीत निवारक श्रेष्ट ही, अगर रासना मान ॥ ४६६ ॥
प्राण बचावन हार में, वायू है परधान ।
स्तम्भनीय गुण श्रेष्ट ही, कहते जल परमान ॥ ४६७ ॥
कहत वृष्य अरु वातहर, मूल एरंड हि जान ।
सँग्राहक गुण रक्त पित्त, नाशक गुण हि प्रधान ॥ ४६८ ॥
अनन्तमूल ही कहत है, फल गम्भार हु मान ।
नील पद्म कोंई कमल, केशर तेहि पहचान ॥ ४६९ ॥
वृष्य कहें सब दोष हर, गन्ध विदारी नाम ।
भूमी कुष्माण्ड हु कहें, श्रेष्ट दवा पहचान ॥ ४७० ॥
मूत्र कृच्छ्र अरु वातहर, गो छुरक हि पहचान ।
अति उत्तम याको कहें, श्रेष्ट दवा यह जान ॥ ४७१ ॥
दीपक पाचक नाशक हु, बद्ध मूत्र मल जान ।
पीपल मूल हि श्रेष्ट है, इन्ही गुणन में मान ॥ ४७२ ॥
दीपनीय में श्रेष्ट है, गुदा शोथ अरु शूल ।
श्रेष्ट कहे इन गुणन में, कहते चित्रक मूल ॥ ४७३ ॥
दीपक पाचक में कहे, संग्राहक हू जान ।
मोथा श्रेष्ट हि कहत है, कटु त्वङ्ग हु पहचान ॥ ४७४ ॥
संग्राहक दीपक कहें, वात कफ हु हर जान ।
कच्चा बेल हि श्रेष्ट है, इन्ही गुणन में मान ॥ ४७५ ॥

संग्राहक अरु बल्य हूं, नाशक श्रेष्ट हि वाय ।
बला कहत है वाहि को, बरियारा कहलाय ॥ ४७६ ॥
स्रंसनीय अरु पाचक हु, अर्शोघ्न हि अति वीर ।
यवाखार नाम हि कहें, दूर करत बवसीर ॥ ४७७ ॥
ग्रहणी दोष अरु अर्श हूं, घृत व्यापत कर नास ।
अर्श कहत बवसीर को, श्रेष्ट तक्र अभ्यास ॥ ४७८ ॥
दाह नाश त्वग्दोष हू, स्वेद-अपनयन प्रलेप ।
लामज्जक अरु खस कहे, कहत श्रेष्ट यह लेप ॥ ४७९ ॥
ग्रहणी दोष अरु शोष हूं, अर्श रोग कर नास ।
क्रव्याद हि को कहत है, श्रेष्ट मांस अभ्यास ॥ ४८० ॥
स्तन्य-अरु शोषघ्न हि कहे, रक्त पित्त कर नास ।
रक्त हि संग्राहिक कहे, बकरी दूध हि खास ॥ ४८१ ॥
हिक्का कास अरु श्वास हूं, और पार्श्व हू शूल ।
इन्ही गुणन मे श्रेष्ट है, कहते पुष्कर मूल ॥ ४८२ ॥
दीपन पाचन में कहैं, संग्राहक में जान ।
सर्व दोषहर वस्तु में, कहत अतीस हि मान ॥ ४८३ ॥
संग्राहक अरु वातहर, दीपक वृष्य हु जान ।
पृष्णी परणी कहत है, चकरीता पहचान ॥ ४८४ ॥
छेदनीय अरु दीपनिय, अनुलोमिक हू जान ।
नाशक श्रेष्ट हि वाय कफ, हींगहि की पहचान ॥ ४८५ ॥
भेदनीय अरु दीपनिय, अनुलोमिक में जान ।
नाशक श्रेष्ट हि वाय कफ, अमल बेत पहचान ॥ ४८६ ॥
निर्वापण दीपन कहे, पाचन हू गुण और ।
अतीसार कहीं हरण, श्रेष्ट उदीच्य हि तौर ॥ ४८७ ॥

चक्षु सुधारत केश हूं, सुर दे कंठ सुधारि।
स्वाद मधुर अरु देह में, रंग हु लावन हार॥ ४८८॥
ज़खम भरावत शीघ्र ही, वृष्य गुण हु है ताहि।
इन सब गुण में श्रेष्ट हैं, जेठी मधु कहें वाहि॥ ४८९॥
श्राम स्तम्भ अरु शीत हूं, शूल-उद्वेपन जान।
दश वैद्य हि सम फल मिले, एक हि अग्नी मान॥ ४९०॥

इति द्रव्य प्रकरण

रोगसंख्या और उत्पत्ति के कारण।

रोगन भेद असंख्य है, पर मोटे है तीन।
दोषज आगंतुज कहें, कर्मज भी कह दीन॥ ४९१॥
जोइ उचित सो नहि कियो, उचित कियो वा ढेर।
अथवा पड़िकर भूलमे कर्तव्यहि भय फेर॥ ४९२॥
याते दोष प्रकोपहो, उपजत है बहु रोग।
सात प्रकारहि ताहि हो, नहि छुट्टी बिन भोग॥ ४९३॥
एकेक तीनो दोष है, द्वंदज होते तीन।
एक त्रिदोष हि कहत है, यही सात कह दीन॥ ४९४॥
दूजो आगंतुज कहें, चोट आदि आ जाय।
बिन दोष हि कारन भयो, फिर दोषहि हो जाय॥ ४९५॥
कर्मज तीजो कहत हैं, कहत पूर्विले दोष।
लगत न कोई औषधी, दिन दिन होता शोष॥ ४९६॥

निदान और चिकित्सा प्रणाली ।

जेहि कारण से रोग हो, कहते वाहि निदान ।
हेतु हु वाको कहत है, कारण निमित हु जान ॥ ४९७ ॥
रोग होन के प्रथम ही, जो लक्षण दिखलाय ।
पूर्व रूप वाको कहे, पीछे रोग हि आय ॥ ४९८ ॥
आ पहुच्यो जब रोग भी, तब जो लक्षण होय ।
लिंग कहत अरु आकृती, रूप-अरु चिन्ह हु सोय ॥ ४९९ ॥
"संप्राप्ती" कहते उसे, रोग जन्म जो होय ।
"आगति" हूं तेहि कहत है, "जन्म रोग" हू सोय ॥ ५०० ॥
सम्प्राप्ती में रख सदा, छ बातन पर ख्याल ।
संख्या अरु प्राधान्यता, विधि विकल्प बल काल ॥ ५०१ ॥
संख्या लक्षण एक ही, रोग हि कई प्रकार ।
गणना कितनी होत है, यह है कौन मझार ॥ ५०२ ॥
लक्षण जो कुछ देखते, वह लक्षण कय रोग ।
सब रोगन की नाम धरि, जानो निश्चय रोग ॥ ५०३ ॥
प्राधान्य हि जानो यही, दोष हि तीन मझार ।
वायू अथवा पित्त कफ, कौन प्रधान हि कार । ५०४ ॥
द्विविध त्रिविध अरु चतुर्विध, विधि रोग हि की तीन ।
दोषज आगन्तुज द्विविध, त्रिविध त्रिदोष हि कीन ॥ ५०५ ॥
साध्य असाध्य दारुण, मृदु, यही चतुर्विध ज्ञान ।
विधि तीनों को जानना, अती उचित ही मान ॥ ५०६ ॥
चौथा कहत विकल्प हैं, निश्चय करना भाग ।
मिश्र दोष के अंश को, यह विकल्प है लाग ॥ ५०७ ॥

ऋतु से, दिन से, रात से, और अहार हि काल ।
रोग बल हि को चीन्हना, और वयक्रम हाल ॥ ५०८ ॥
उपशय वाको कहत है, दुःख हि नष्ट उपाय ।
भेद अठारह ताहि को, आयुर्वेद बताय ॥ ५०९ ॥
हेतु कहत अरु रोग एक, रोग हेतु मिलि तीन ।
औषध और अहार से, अरु विहार कह दीन ॥ ५१० ॥
तीन तियां नौ यह भए, कहे उपाय दो भांत ।
नौ दूने ठारह भये, उपशम की करमात ॥ ५११ ॥
बिपरीतारथ कारि एक, अरु बिपरीत उपाय ।
गरम रोग ठंढी दवा, यह बिपरीत कहाय ॥ ५१२ ॥
चढ़ढ्यो बिषहि बिष देय जो, बिपरीतारथ कारि ।
कहते दोऊ रीत ही, आयुर्वेद मझारि ॥ ५१३ ॥
विष विष एक हि वस्तु है, विष विष नाशक होय ।
विपरीतारथ कारि यह, फल विपरीत हि सोय ॥ ५१४ ॥
आग जले ठंढा करे, आग हि मे दे सेक ।
दोउ रीत उपशय बने, यामें नही विशेक ॥ ५१५ ॥
राह चले थकनी हुई, निद्रा थकनी जाय ।
अथवा टहल हि स्वस्थ हो, दोउ बिहार उपाय ॥ ५१६ ॥
औषध से, आहार से, और बिहार उपाय ।
सम हो वा विपरीत हो, जो विध बने बनाय ॥ ५१७ ॥
समहिचिकित्सा, कहतनहि, आयुर्वेद मझार ।
विपरीत हि व्योरा कह्यो, बिपरीतारथ कार ॥ ५१८ ॥
होम्योपैथिक कहत जेहि, सम हि चिकित्सा जान ।
विपरीतारथ कारि तेहि, आयुर्वेद बखान ॥ ५१९ ॥

विष रोग हि में विषहिसे, उपशम जो करदेत ।
विष में विषनाशक गुणहि, विपरीतारथ लेत ॥ ५२० ॥
विपरीतारथ कारि वस्तु, सब द्रव्य हि नहि होय ।
प्रभाव शालि जो द्रव्य हैं, उनही में वह होय ॥ ५२१ ॥
कहत रसायन औषधी, बाजी करण हु जान ।
पुष्टीकर गुण स्वस्थ को, दुर्बल करत न मान ॥ ५२२ ॥
तीन उपायहि से करे, नाश हेतु अरु रोग ।
हेतु रोग दोउ मिलहि इक, तीन नाश सुख भोग ॥ ५२३ ॥
उपशय संख्या ध्यान हो, वाको होय न चूक ।
कच्चे वैद हि भूलते, पक्के नही कछूक ॥ ५२४ ॥
होत चिकित्सा रोग है, जिसका कह्यो निदान ।
बहुतर रोग हि देखते, नही निदान बयान ॥ ५२५ ॥
वहां चिकित्सा दोष की, करते वैद्य प्रवीन ।
आयुर्वेद इस ज्ञान को, बहुत उपाय हि कीन ॥ ५२६ ॥
देश काल अरु पात्र से, गुण रस लक्षण पेख ।
नाड़ी अरु मल मूत्र से, पूछ छूय अरु देख ॥ ५२७ ॥
या विध निश्चय दोष को, संचय और प्रकोप ।
औषध नाशक दोष दे, रोग हि करते लोप ॥ ५२८ ॥
सावधान अति होय के, ध्यान धरहु यह बात ।
केवल दोष प्रकोप ही, ज्ञान नहीं बनि जात ॥ ५२९ ॥
वायु प्रकोपित होय कर, जाय जो पित्त स्थान ।
कहत चिकित्सा चाहिये, तब पित नाशक जान ॥ ५३० ॥
पित्त प्रकोप हि होय कर, कफ स्थान हो जाय ।
कहत चिकित्सा तब उचित, कफ ही को बतलाय ॥ ५३१ ॥

कफ हु प्रकोपित होयकर, वायू के घर जाय।
कहत चिकित्सा तब उचित, वायू ही बरताय ॥ ५३२ ॥

समाप्त।

भकलू लाल ने छाप कर प्रकाश किया बिहार-बन्धु छापाखाना बांकीपुर।



विज्ञापन।

बांकीपुर बिहार बन्धु छापेखाने में द्रव्यार्थ गुण चन्द्रिका नामक एक पुस्तक अलग अलग दो भागों में छपने वाली है उसका नमूना इसके साथ दिया जाता है।

पहिले भाग में अकारादि क्रम से द्रव्यों के नाम और संख्या का अंक दिया गया है फिर संस्कृत यूनानी और डाकटरी भाषा के पर्य्याय शब्द और उनके पीछे हिन्दी बंगला गुजराती और महाराष्ट्री आदि भाषा के नाम जहां तक मिले हैं दिये गये हैं और फिर वही पर्य्याय शब्द अकारादि क्रमसे प्रधान शब्दों के क्रमानुसार लिखे गये हैं परन्तु वहां पर उनका व्योरा या स्वतंत्र संख्या नहीं दी गई उनके साथ केवल वही संख्या दी गई जो प्रधान शब्दों की है और प्रधान शब्दों के नाम। फल यह होगा कि किसी भाषा का कोई शब्द जो इसमें आया है, देखना हो तो

हिले अकारादि क्रमसे उस शब्द को निकालना चाहिये गर वह पर्य्याय शब्द होगा तो उसकी संख्या और नाम देख- र प्रधान शब्द को निकालना चाहिये वहां उसका पूरा हाल ात होगा। यह पुस्तक औषध विक्रेता के लिये विशेष प्रयो- नीय होगी प्रधान औषधियों की संख्यानुसार औषधि पात्रों पर ख्या लिख दी जाये तो अंजान आदमी भी पुस्तक द्वारा औषधि ीन्ह सकता है और ग्राहक की अजानित भाषा से अनायास ौषधि का नाम ज्ञात हो सकता है। इस पुस्तकका पृथक भाग रने का यह भी प्रयोजन है कि जिनको केवल औषधि का ाम मात्र जानना ही प्रयोजन है उनको पूरी पुस्तक के दाम ा भार न सहना पड़े।

दूसरे भाग में प्रत्येक द्रव्य के एकइस एकइस विषय लिखे गये हैं।—

सिरे पर द्रव्य का नाम और उसके क्रम की संख्या लिखी- गई है। इनके पर्य्याय शब्द जानना हो तो प्रहिले भाग से उसी संख्या का द्रव्य निकालना होगा

१।—जाति।—इससे यह जाना जायेगा कि वह वस्तु प्राणी, उद्भिद्, पत्थर, मिट्टी या धातु आदि कौन जाति की है।

२।—प्रकार और उपयोग भेद।—इससे यह जाना जायेगा कि यह द्रव्य कितने तरह के होते हैं। और उपयोग में भेद है या नही।

१।—लक्षण।—अर्थात पंचज्ञानेन्द्रिय—आंख, जीभ, नाक, त्वचा और कान द्वारा जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के जो विषय अनुभव होते हैं वह लिखे हैं। और उस का थोड़ा वृत्तान्त।

३।—उत्पत्ति स्थान।—इससे यह तात्पर्य्य है कि देश गुण से द्रव्य के दोष गुण का विचार हो सके और वह स्थान औषध मंगवा लेनेका जानित रहे।

।—उत्पत्ति काल।—इससे यह तात्पर्य्य है कि ऋतु काल के अनुयायि दोष नाशक और वर्द्धक शक्ति उस द्रव्य में है या साधारण नियम वर्ज्जित प्रभाव नियम में है यह जाना जाय।

।—उत्कृष्ट और श्रेष्ट फल दायक द्रव्य की पहचान।

७।—रस।—आयुर्वेद शास्त्र में जो रस जिस द्रव्य का निश्चय किया है जिससे द्रव्यों के दोष नाशक और दोष वर्द्धक गुण जाने जांय और यह भी मालूम हो कि वह द्रव्य इसी रस नियम में है कि विपरक प्रभाव नियम के अन्तर्गत है वह लिखा गया है।

८।—गुण।—जो गुरु आदि २० बीस गुण द्रव्यों का शास्त्र में वर्णन हुआ है इस से यह निश्चय होगा कि उस द्रव्य का वर्द्धक नाशक दोष गुण के अनुयायी ठीक है या नहीं।

।—वीर्य्य।—प्रत्येक द्रव्यों के मूल गुण दो वीर्य्य जो शीत और उष्ण होते हैं शास्त्रानुयायि वह लिखे गये हैं।

।—विपाका रस।—कोई द्रव्यों का स्वाद जिह्वा द्वारा जिस प्रकार का ज्ञान होता है पाक होने पर वह नहीं रहता उस का फल दूसरे रस का देखा जाता है मिश्र रसों के कारण यह बात होती है इस का विषय जो शास्त्र में लिखा है वही दिया गया है।

११।—दोष नाशक दोष वर्द्धक क्रिया।—अर्थात वायु पित कफ यह तीन दोषों में वह द्रव्य किसका नाश करने वाला और किस का बढ़ाने वाला है यह बात शास्त्रानुयायि लिखी गई है।—

१२।—रोग नाशक क्रिया।—शास्त्रानुयायि लिखा है।

१३।—अंग क्रिया।—अर्थात् यह द्रव्य कौन अंगों पर कैसी क्रिया करता है।

१४।—साधारण क्रिया।—जो सारे अंगों पर या मानसिक वृत्तियों पर प्रकाश होती है।

१५।—सेवन प्रकार के भेद से फल भेद।

१६।—प्रयोजनीय अंश व्यवहार और मात्रा परिमाण।

१७।—अभावे तुल्य गुण विशिष्ट अन्य औषध। अर्थात वह द्रव्य न मिले तो उस की जगह दूसरी कौन वस्तु होगी।

१८।—प्रयोग निषेध—अनिष्ट कारक फल और उसका मारक द्रव्य।

१९।—शोधन वस्तु और उपाय।

२०।—रासायनिक भेद।—अर्थात् केमिस्ट्री के मत से उस द्रव्य में कौन कौन पदार्थ मिश्रित है।

२१।—इस के गुण का असर कितने दिन तक बना रहता है यह बात इस में रहेगा।

इतनी बातों के लिखने की चेष्टा की गई है और सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की कृपा और विद्वज्जनों की सहायता से आशातिरिक्त कृतकार्य्यता भी लाभ हुई तौ भी पूरे पूरे सब द्रव्यों के सब विषय लाभ न हुए जो विषय नहीं मिले प्रत्येक प्रकर्ण में उनकी जगह खाली छोड़ दी गई है कि वह शून्य स्थान देखकर अवश्य ही महात्मा वैद्य गण शास्त्र या अपनी पाण्डित्य और बहुदर्शिता के द्वारा उस अभाव की पूर्णं करके जगत का महत उपकार करेंगे।

इस पुस्तक की पांच सौ कापी छापने की इच्छा थी और तदनुयायि कागज़ भी ख़रीद हो चुका है अब तक इस का बिज्ञापन भी प्रचार न हुआ था कि प्राय: डेढ़ सौ प्रति के क्रेता ओं के नाम रजिष्टर भुक्त हो चुके इस लिये नये सम्बत तक इसका छापना बंद रख कर यह विज्ञापन सर्व साधारन में प्रचार किया कि इस अवसर में यह सिद्धान्त हो जाये कि कितनी प्रति लगेगी, जिन महाशयों को यह पुस्तक लेना हो इसी सम्बत में अपना नाम और ठिकाना लिख भेजें जब पूरी पुस्तक छप जायेगी तब इसकी खबर देवेंगे।

मूल्य इसका अभी तक स्थिर नहीं हुआ है प्राय: चार हज़ार पृष्ठ से कम ही में दोनो भाग समाप्त होना सम्भव है।

तारीख़ २० जनवरी
१८८८ ई०

श्री लक्ष्मी नाथ शर्म्मा
मनेजर बिहार बन्धु प्रेस,
बांकीपुर।

नमूना पहला भाग।

द्रव्यार्थ गुण चन्द्रिका।

ीतकी।—संस्कृत नाम।—

७२ अभया, अमृता, अव्यथा, कायस्था, चेतकी, जीवन्ती, पथ्या, पूतना, विजया, वयस्था, हैमवती, रोहिणी, शिवा, श्रेयसी (भाव प्रकाश) अमोघा, अवस्था, जीवप्रिया, नन्दिनी प्रमथा, बृन्तना, (मदन पाल) जया, चेतनिका, प्रमथ्या, जीवप्रिया, जीवनिका, भिषग्वरा, भिषक्प्रिया प्राणदा, जीव्या, देवी, दिव्या, (राज निघण्ट) रसायनफला, (द्रव्यगुण दर्पण) कालिका (राज वल्लभ)

यूनानी।—इह्लीलज्, हलैल:।

डाक्टरी।—चिब्युलिक माइरी बिलम्।

हिन्दी।—हड़, हर्डा, हर्रे, हर्रा, बड़ी हड़, छोटी हड़, जंगी हड़।

बंगला।—हत्तकी, छोटी हत्तकी।

गुजराती।—हरड़े, मोटी हरड़े, सुरवारी हरड़े।

महाराष्ट्री।—हरडे, हिरडा, बाल हिरडे।

कर्नाटकी।—अणिले।

नमूना दूसरा भाग।

हरीतकी। २६७२

१।—जाति।—

संस्कृत।—उद्भिज्ज—वनज वृक्ष फल विशेष।

युनानी।—नबातात।—(उद्भिद)

डाक्टरी।—कम्ब्रिटेसी जातीय टर्मिनेलिया चिब्युल नामक वृक्ष का फल।

२।—प्रकार और उपयोग भेद।

सर्व रोग पर

संस्कृत।—सात प्रकार—यथा—१।—विजया २।—

व्रणपर प्रलेप में संशोधन में

रोहिणी। ३।—पूतना। ४।—अमृता। ५।—

चक्षु रोग पर सर्व रोग पर चूर्ण मे

अभया। ६।—जीवन्ती। ७।—चेतकी इस के दो भेद हैं। १।—स्वेत चेतकी और २।—कृष्ण चेतकी॥

यूनानी।—१।—काबुली। २।—ज़र्द। ३।—चीनाई। ४।—सियाह (श्याम)। ५।—जौविया, छौगीं। ६।—ज़ीरः। एक ही दरख़्त के इतने प्रकार फल के भेद होते हैं।

डाक्टरी।—बड़ी हर्रें और छोटी। एक ही दरख़्त के दो प्रकार फल हैं, कच्चे फल को सुखाते हैं वह छोटी और पके को बड़ी कहते हैं।

२।—लक्षण—

संस्कृत।

आकार और रंग।—१।—विजया।—अलाबु (कद्दू) सदृश शिरा विहीन (बेरीश:) गोलाकार। रंग।————

२।—रोहिणी।—गोलाकार। कपिल वर्ण।

३।—पूतना।—सूक्ष्म (पतली) बृहद्बीज (बड़ी गुठ्ठी) स्वल्प त्वक् (गूदा कम)। रंग।—

४।—अमृता।—स्थूल त्वचा (मोटा गूदा) क्षुद्र बीज (छोटी बीज)। रंग।—

५।—अभया।—पंचरेखा युक्त आकार—रंग।—

६।—जीवन्ती।—आकार——सुवर्ण वर्ण।

७।—चेतकी।—त्रिरेखा युक्त

(क) श्वेत चेतकी छ: अंगुल लम्बी श्वेत रंग।

(ख) कृष्ण चेतकी एक अंगुल लम्बी श्याम रंग।

आस्वादन।————कषाय—रंगान—

प्राघ्राण ।————————दुर्गन्ध।—पुष्प अति दु

पर्श ।———————— खरस्पर्श

वृत्तान्त।————————इन्द्र अमृत पान कर

उस में से एक बिन्दु भूमि पर गिरा उ

इसकी उत्पत्ति हुई।

शब्द।————

यूनानी।————

आकार—रंग——पत्ते पतले और लम्बे और

गुच्छेदार।—

१।—काबुली।—फल मोटा और ब

रंग ज़र्द सुरखी लिये।

२।—ज़र्द—फल मझोला-गूदा बहुत-रं

कम-छोटी गुट्ठी-रंग ज़र्द।

३।—चीनियां—उससे छोटा, रंग स

(हरा)।

४।—स्याह।—उससे छोटा मुनक्के

रंग काला।

५।—जौवीं—जौगीं।—उससे छोटा जौ के

बराबर, रंग—

६।—ज़ीरः।—उससे भी छोटा ज़ीरः

सा- रंग——

डाक्टरी ————————

४।—उत्पति स्थान।—

संस्कृत

१।—विजया—विन्ध्याचले

२।—रोहिणी-प्रतिस्थानके

३।—पूतना—सिन्धु देशे

४।—अमृता—चंपा प्रदेशे भागलपुर

५।—अभया।—भागलपुर

६।—जीवन्ती।—सौराष्ट्रे-सूरत गुजरात

७।—चेतकी।—हिमालये,

यूनानी——गुजरात-श्रेष्ट। बनारस-मध्यम वीर भूम-निकृष्ट।

डाक्टरी।—कुमारी अन्तरीप से हिमालय तक सब जंगलों में पैदा होती है और अब बंगाले में भी होने लगी।—

५।—उत्पत्ति काल।—

संस्कृत।—वसन्त ऋतु के अन्त में पुष्प और हिमन्त के अन्त में फल पकता है।

यूनानी।——————

डाक्टरी।—गरमी में फूलता और नवम्बर डिसेम्बर में पकता है।

६।—उत्कृष्ट और श्रेष्ट फल दायक की पहचान।—

संस्कृत—नवीन, स्निग्ध कठिन, गोल, भारी, और जल में डूबने वाली।

यूनानी।——————

डाक्टरी।——————

७।—रस।——

संस्कृत।—कषाय, मधुर, अम्ल, कटु और तिक्त पंच रस युक्ता।

८।—गुण——

संस्कृत।—रूक्ष—लघु

यूनानी।—ज़र्द और स्याह।—शीतल—पहिला दरजा। रूक्ष-दूसरा।

काबुली।—शीतल और रूक्ष पहिला दरजा कोई गर्म शीतदिल कहते हैं।

डाक्टरी।——

९।—वीर्य्य।——

संस्कृत।—ऊष्ण।—

।—विपाक रस।——

संस्कृत।—मधुर

।—दोष नाशक और वर्द्धक।——

संस्कृत।—त्रिदोष नाशक।

यूनानी।—सौदा—बल्ग़म—और सफ़रा (पित) नाशक।

।—रोग नाशक

संस्कृत।—श्वास, कास, प्रमेह, कुष्ट, शोथ, उदर, कृमी ग्रहणी, विबन्ध, ज्वर, गुल्म, आध्मान, पिपासा, वमी, हिक्का, कण्डु, हृद रोग, कामला, शूल, अनाह प्लीहा, यकृत, अश्मरी, मूत्र कृच्छ्र, मूत्राघात।

यूनानी ।—शिर पीड़ा, (सुदाय्) उन्माद बिना उपद्रव, (माली खोलिया) शुद्ध उन्माद, (खफ़कान) दिल बिगड़ना, (गसियान) उदरी, (इस्तिस्क़ाय) अर्श, (बवासीर) खूनी और बादी, मिश्र ज्वर, (हमीयात मुरक्कबः) भ्रम (निसियान) सिर की घूमड़ी से जो आखों तले अंधियाली आ जाती है (सदर) और तृषा ॥

डाक्टरी ।—पित्तातिसार, रक्तातिसार, प्लीहा, अर्श, प्रदर ।

१३ ।—अंग क्रिया ।—

संस्कृत ।—चक्षु हितकर ।

यूनानी ।—दन्त हितकर, नाभि और दिमाग़ के आगन्तुक बुखारात को ऊपर उठनेसे रोकने वाला अंतड़ियां मिरोड़ने वाला ।

डाक्टरी ।—

१४ ।—साधारण क्रिया ।—

संस्कृत ।—दीपक, मेधा जनक, रसायन, आयुष्कर अनुलोमक, वृंहण कारक ।

यूनानी ।—मेधा जनक, स्मरण शक्ति वर्द्धक, श्लेष्म पित दोष घटित मलनिःसारक, सौन्दर्य्य कारक, मूत्र कारक, पैत्तिक सौदा नाशक, सुहागिरानेवाला, काबुली ।—मूत्र कारक पंचेन्द्रिय बल कारक, स्याह ।—रक्त शोधक (मुसफ्फी खून) और गुर्दा मूत्र कारक है ।